इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

BHDC-108

भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा

भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा

खंड 1

भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा–1

खंड 2

भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा–2

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. कुलदीप चंद अग्निहोत्री
कुलपति, केन्द्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश
धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)

प्रो. महेन्द्रपाल शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

प्रो. चंदन कुमार
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. अनिल राय
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. सत्यकाम, समकुलपति
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. स्मिता चतुर्वेदी (पाठ्यक्रम संयोजक)
प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. स्मिता चतुर्वेदी
हिंदी संकाय, मानविकी विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या
प्रो. रमानाथ सहाय	1
प्रो. वी. रा. जगन्नाथन प्रोफसर (सेवानिवृत्त), हिंदी संकाय, इग्नू, नई दिल्ली	2, 12, 13, एवं 14
प्रो. श्रद्धा सिंह प्रोफेसर, हिंदी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	3, 4, 5, 6, 7 एवं 10
प्रो. एस. वी. सिंह	8
डॉ. ऊषा शर्मा	9
प्रो. वी. रा. जगन्नाथन डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय	11
डॉ. रवि प्रकाश	15
डॉ. बीना श्रीवास्तव	16

खंड संयोजक एवं संपादक

प्रो. स्मिता चतुर्वेदी
हिंदी संकाय, मानविकी विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

संपादन सहयोग

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय
परामर्शदाता, हिंदी संकाय, इग्नू,
नई दिल्ली

सचिवालयीय सहयोग

श्री नवल कुमार
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी

जुलाई, 2021

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित नहीं किया जा सकता, अनुलिपिक या किसी अन्य साधन द्वारा, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बिना किसी लिखित आदेश व पुनः इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के कोर्स की सूचना विश्वविद्यालय के मैदान गढ़ी कार्यालय, नई दिल्ली–110068 के द्वारा प्राप्त की जा सकती है अथवा विश्वविद्यालय की वेबसाइट http://www.ignou.ac.in देखें

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली की ओर से कुलसचिव सा. नि. वि. प्र. द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रित : ऐजुकेशनल स्टोर्स, एस–5, बुलंदशहर रोड इंडस्ट्रीयल एरिया, साईट–1, गाजियाबाद (उ.प्र.)–201009

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

बी.ए. हिंदी (ऑनर्स) के विद्यार्थियों के लिए 'भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा' (BHDC-108) शीर्षक यह अनिवार्य पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा और भाषा विज्ञान का मूलभूत परिचय दिया गया है। भाषा को स्थायित्व प्रदान करने के लिए लिपि का उद्भव और विकास हुआ। लिपि का सबसे बड़ा उपयोग यही है कि हम भाषा के उच्चरित रूप को लिपिबद्ध करके स्थायी बना सकते हैं। हिंदी भाषा के विकास को समझाने के क्रम में प्रस्तुत पाठ्यक्रम में हमने देवनागरी लिपि और उसके मानकीकरण का विस्तृत परिचय दिया है। भाषा क्या है? यह स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ दी हैं। इसी क्रम में हिंदी की प्रमुख बोलियों तथा हिंदी भाषा के स्वरूप और भूमिकाओं का भी उल्लेख किया है। भारतीय संविधान में हिंदी संबंधी अनेक उपबंध हैं जिनका प्रस्तुत पाठ्यक्रम में यथोचित विवेचन–विश्लेषण किया गया है।

किसी भी भाषा के चार प्रमुख अंग माने जाते हैं। 1. ध्वनि, 2. पद या शब्द 3. वाक्य और 4. अर्थ। इन सभी अंगों के अलग–अलग विशेष अध्ययन के कारण ही भाषा–विज्ञान के चार प्रमुख अंग विकसित हुए।

1. ध्वनि विज्ञान (Phonology)
2. पद विज्ञान या रूप विज्ञान (Morphology)
3. वाक्य विज्ञान (Syntax)
4. अर्थविज्ञान (Semantics)

इस पाठ्यक्रम में हम विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी भाषा विज्ञान की परिभाषाओं के साथ भाषा विज्ञान के उपर्युक्त अंगों का विस्तृत और सूक्ष्म परिचय दे रहे हैं जो विद्यार्थियों के भाषा और भाषा विज्ञान विषयक बोध को स्पष्ट करेगा। 6 क्रेडिट के इस पाठ्यक्रम में हम कुल सोलह इकाइयाँ दे रहे हैं जिन्हें विद्यार्थियों के अध्ययन की सुविधा के अनुसार दो खंडों में विभाजित किया गया है। पहले खंड में सात इकाइयाँ हैं जबकि दूसरे खंड में नौ इकाइयाँ। विद्यार्थी इस पाठ्यक्रम का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके हिंदी भाषा और भाषा विज्ञान संबंधी आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने में सफल होंगे। ऐसा हमें विश्वास है।

शुभकामनाओं के साथ!

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 5 8/18/2021 12:21:32 PM

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 6 8/18/2021 12:21:32 PM

BHDC-108

भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा

खंड

1

भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा–1

इकाई 1 भाषा : परिभाषा तथा विशेषताएँ	9
इकाई 2 हिंदी भाषा का विकास	25
इकाई 3 भाषा विज्ञान तथा उसके अंग	46
इकाई 4 स्वन विज्ञान	59
इकाई 5 स्वनिम विज्ञान	76
इकाई 6 रूप विज्ञान	92
इकाई 7 रूपिम विज्ञान	113

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 का परिचय

बी.ए. हिंदी (ऑनर्स) के विद्यार्थियों के लिए 'भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा' (BHDC-108) पाठ्यक्रम का यह पहला खंड है। इस खंड में कुल सात इकाइयाँ हैं; जो इस प्रकार हैं–

इकाई 1 भाषा : परिभाषा तथा विशेषताएँ

इकाई 2 हिंदी भाषा का विकास

इकाई 3 भाषा विज्ञान तथा उसके अंग

इकाई 4 स्वन विज्ञान

इकाई 5 स्वनिम विज्ञान

इकाई 6 रूप विज्ञान

इकाई 7 रूपिम विज्ञान

'भाषा : परिभाषा तथा विशेषताएँ' शीर्षक पहली इकाई में विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई भाषा की परिभाषाओं के आलोक में भाषा की प्रमुख विशेषताओं का परिचय दिया गया है। 'हिंदी भाषा का विकास' शीर्षक दूसरी इकाई में आदिकाल से अब तक की हिंदी की विकास यात्रा का खाका खींचा गया है। इस इकाई का उद्देश्य आपको हिंदी साहित्य के क्षेत्र में प्रारंभ से लेकर अब तक की हिंदी के विविध रूपों से परिचित कराना है। हिंदी भाषा की विविध शैलियों और उसके विविध आयामों का आप इकाई 11 से 16 तक में अध्ययन करेंगे। 'भाषा विज्ञान तथा उसके अंग' खंड की तीसरी इकाई है। इसके अंतर्गत विद्वानों द्वारा दी गयी भाषा विज्ञान की परिभाषाओं के दृष्टिगत उसके प्रमुख अंगों का विवेचन किया गया है। इस इकाई में भाषा विज्ञान का ज्ञान के अन्य अनुशासनों से संबंध भी स्पष्ट किया गया है। 'स्वन विज्ञान' खंड की चौथी इकाई है। इस इकाई में ध्वनि का अर्थ, ध्वनि के भेद, ध्वनि उत्पादन के अवयव और स्वर–व्यंजन की परिभाषा तथा अंतर, स्वर–व्यंजन के उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर होने वाले वर्गीकरण आदि को समझाया गया है। 'स्वनिम विज्ञान' शीर्षक खंड की पाँचवीं इकाई में स्वनिम की परिभाषा, विशेषताएँ तथा भेदों का विश्लेषण किया गया है। स्वन, स्वनिम और संस्वन का अंतर स्पष्ट करने के साथ ही इस इकाई में स्वन परिवर्तन के बाह्य और आभ्यन्तर कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। खंड की छठवीं इकाई 'रूप विज्ञान' है। इस इकाई में रूप या पद का शब्द और वाक्य से संबंध बताया गया है। शब्द और पद के भेदों पर भी इकाई में चर्चा की गयी है। संबंध तत्व और अर्थतत्व के प्रकार, उनके कार्य और हिंदी में पाए जाने वाले संबंध तत्वों की जानकारी भी इकाई में दी गई है। खंड की सातवीं इकाई 'रूपिम विज्ञान' है। इस इकाई में स्वनिम और शब्द का रूपिम से संबंध बताते हुए रूपिम का अर्थ, परिभाषाएँ तथा स्वरूप का परिचय दिया गया है। विभिन्न आधारों पर उत्पन्न होने वाले रूपिम के भेदों और रूपिम के संरूप का विवेचन भी इस इकाई में मिलता है। प्रत्येक इकाई के अंत में इकाई से संबंधित उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गयी है। इन पुस्तकों का अध्ययन कर आप अपनी 'भाषा और भाषा विज्ञान' विषयक जानकारी को और विस्तार दे सकते हैं। इकाइयों के भीतर आवश्यकतानुसार बोध प्रश्न और अभ्यास दिए गए हैं जिन्हें हल करके आप अपनी विषयगत प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

आपके भावी जीवन की शुभकामनाओं के साथ!

इकाई 1 : भाषा : परिभाषा तथा विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भाषा की परिभाषा
1.3 भाषा– संप्रेषण के रूप में
 1.3.1 संप्रेषण का स्वरूप
 1.3.2 प्रतीक व्यवस्था
1.4 भाषा– सामाजिक व्यवहार के रूप में
 1.4.1 मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है
 1.4.2 भाषा सामाजिक व्यवहार है
 1.4.3 समाज में भाषा
 1.4.4 भाषा में परिवर्तन
1.5 भाषा– संरचना के रूप में
 1.5.1 संरचना का तात्पर्य
 1.5.2 भाषा की संरचना
 1.5.3 भाषिक संरचनाएँ
1.6 भाषा और बोली
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भाषा क्या है और विभिन्न विद्वानों ने भाषा की क्या परिभाषा दी है, यह बता सकेंगें;
- संप्रेषण क्या है और 'भाषा' किस तरह एक विशेष प्रकार का संप्रेषण है, की जानकारी दे सकेंगे;
- मानव भाषा और पशु–पक्षियों की भाषा का अंतर बता सकेंगे;
- संरचना के संरचकों की क्या भूमिका होती है, यह समझ सकेंगे; और
- भाषा किस प्रकार अन्य संरचनाओं से भिन्न है, इसकी चर्चा कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'। इस कथन को कुछ सुधार कर यह कहा जाए कि 'मनुष्य एक भाषाई प्राणी है' तो कुछ अनुचित नहीं होगा, क्योंकि मनुष्य इसी कारण अन्य जीव–जंतुओं और पशु–पक्षियों से भिन्न है कि उसके पास भाषा की शक्ति है

और इसी भाषाई शक्ति के आधार पर वह सामाजिक प्राणी बन सका है। हम बचपन से बुढ़ापे तक भाषा से घिरे रहते हैं–हम उसी में सोचते हैं, उसी से बोलते हैं, उसी से सामाजिक संपर्क बनाते हैं। अतएव आप के हृदय में यह कुतूहल अवश्य उत्पन्न होगा कि चारों ओर छाई हुई भाषा स्वयं में क्या है। यह इकाई इस कुतूहल को ही शांत करने का एक छोटा सा प्रयास है। यहाँ हम भाषा को i) संप्रेषण, ii) सामाजिक व्यवहार और iii) संरचनागत विशेषताओं की दृष्टि से देखेंगे। किंतु उससे पहले हम आपको देश–विदेश के विभिन्न विद्वानों द्वार दी गई भाषा की परिभाषाओं से अवगत कराएँगे। भाषा के संबंध में विद्वानों द्वारा दी गई ये परिभाषाएँ 'भाषा' के स्वरूप को समझने में आपकी मदद करेंगी, तो आइए सबसे पहले हम भाषा की परिभाषा पर विचार करते हुए भाषा की विशेषताओं पर केंद्रित इस इकाई की शुरूआत करते हैं।

1.2 भाषा की परिभाषा

भाषा की परिभाषा पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि 'भाषा' शब्द की निर्मिति कैसे हुई है। 'भाषा' शब्द संस्कृत 'भाष्' धातु से बना है। संस्कृत में 'भाष' का अर्थ होता है बोलना। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिसे हम बोलते हैं, वह भाषा है। हम जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसे निरंतर विचारों का आदान–प्रदान करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए वह भाषा का सहारा लेता है। अतः कह सकते हैं कि 'भाषा विचार विनिमय का साधन है। भाषा के संबंध में विचार करते हुए अनेक भारतीय और विदेशी भाषाविदों ने भाषा को परिभाषित करने का प्रयास किया है। आपकी जानकारी के लिए हम कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ नीचे दे रहे हैं–

''व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः'' अर्थात जो वाणी वर्णों में व्यक्त हो उसे भाषा कहते हैं। –महर्षि पतंजलि

भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भलीभाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टता से समझ सकता है।

–कामता प्रसाद गुरु

विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है जिसके द्वारा हम अपने मनोभाव दूसरों के प्रति सरलता से व्यक्त कर सकते हैं। –आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और गति का आदान–प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं। –डॉ. श्याम सुंदर दास

भाषा मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं। –डॉ. मंगलदेव शास्त्री

जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं। –बाबू राम सक्सेना

अर्थवान, कण्ठोद्गीर्ण ध्वनि–समष्टि ही भाषा है। –सुकुमार सेन

भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से निःसृत वह सार्थक ध्वनि समष्टि है, जिसका विश्लेषण और अध्ययन हो सके। –डॉ. भोलानाथ तिवारी

भाषा यादृच्छिक, रूढ़ उच्चारित संकेत की वह प्रणाली है जिसके माध्यम से मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय सहयोग अथवा भावाभिव्यक्ति करते हैं। –आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 10 8/18/2021 12:21:33 PM

ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।
–डॉ. पांडुरंग दामोदर गुणे।

भाषा और कुछ नहीं है, केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत एक ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपना विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और जो चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है। –मैक्समूलर

Language may be defined as the expression of thought by mean of speech sound (ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।) –हेनरी स्वीट

भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को कहते हैं जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है। –बेनेदितो क्रोचे

A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group cooperates. (भाषा यादृच्छिक ध्वनि–संकेतों की वह प्रणाली है जिसके माध्यम से मानव परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करता है)। –ब्लॉख तथा ट्रेगर

विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते हैं। –ए.एच. गार्डिनर

A Language is a system of arbitrary vocal symbols by mean of which members of social group cooperate and Interact.

(भाषा यादृच्छिक ध्वनि–संकेतों की वह पद्धति है जिसके द्वारा मानव समुदाय परस्पर सहयोग एवं विचार–विनिमय करते हैं)। –स्त्रुत्वाँ

Language is a purely Human and non-instinctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of a system of voluntarily produced symbols.
–Sapir

I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finite set of elements. –Noam Chomsky

Language may be defined as an arbitrary system of cocal system by means of which, human being as members of a social group and participants in culture interact and communicate. –Encyclopedia Britannica.

1.3 भाषा– संप्रेषण के रूप में

संप्रेषण शब्द का अर्थ है– सं (ठीक प्रकार से) + प्रेषण (भेजना)। भाषा द्वारा मनुष्य अपनी बात दूसरे के पास ठीक प्रकार से पहुँचाता है। हम प्रायः बोलते हुए बातचीत करते हैं इसलिए भाषा एक मौखिक संप्रेषण है। भाषा वह साधन है जिससे मनुष्य दूसरों से मौखिक रीति से बातचीत (विचारों का आदान–प्रदान) करता है। इस भाग में हम भाषा के माध्यम से संप्रेषण की व्यवस्था और भाषा की संप्रेषण क्षमता के बारे में पढ़ेंगे।

1.3.1 संप्रेषण का स्वरूप

संप्रेषण की प्रक्रिया को समझने के लिए सबसे पहले आप एक प्रयोग करें। कागज, पेंसिल ले लें और पिछले एक घंटे में आपने जो भी बातें किसी से की हों उन्हें नोट कर लें और देखें कि आपने जो कहा उसे क्यों कहा। आप जब अपने कथनों पर विचार करेंगे तो देखेंगे कि या तो आपने किसी से कुछ पूछा है अर्थात् कुछ जानकारी पाना चाहा (जैसे, तुम दिल्ली कब जा रहे हो? साबुन कहाँ रख दिया है? आज तुम

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 11 8/18/2021 12:21:33 PM

परेशान क्यों हो? इत्यादि), या आपने किसी के कुछ पूछे हुए का उत्तर दिया है अर्थात् जो जानकारी पूछने वाला पाना चाहता था वह उसे दी है (जैसे, चिट्ठी आज ही आई है।, चाबी मेज़ के ऊपर रखी है। इत्यादि) या आपने किसी के अनुरोध या आदेश आदि को स्वीकारा है या ठुकराया है या जो काम पूरा कर दिया है उसकी सूचना दी है (जैसे हाँ, स्टेशन ठीक समय पहुँच जाऊँगा। खेद है, स्टेशन मैं नहीं जा पाऊँगा। तुम कह रही थी न मैंने चिट्ठी लिख दी है इत्यादि), या आप किसी को ऐसी जानकारी देना चाहते हैं जिसे आप मानते हैं कि वह नहीं जानता है और जानना उसके हित में है (जैसे, आज बहुत ठंड है। लगता है उसकी तबीयत खराब है, इत्यादि)। इन सबसे स्पष्ट होता है कि आप तभी बोलते हैं जब आपके पास श्रोता के लिए कोई न कोई अभिप्रायपूर्ण संदेश हो। बिना प्रयोजन के कोई भी नहीं बोलता। मनुष्य से भिन्न प्राणियों का संप्रेषण इस दिशा में सीमित होता है–किसी खतरे से आगाह करना, अपने प्रति आकर्षित करना, किसी को पास बुलाना या दूर भगाना, भोजन कहाँ है इसकी सूचना देना, खेल खेलते समय हर्ष प्रकट करना अथवा आनंद प्रकट करना (जैसे, चिड़ियों का चहचहाना) किंतु मनुष्य भाँति–भाँति के प्रयोजनों के लिए संदेश की रचना करते हैं। इसके अतिरिक्त आपने यह भी नोट किया होगा कि संभाषण (बातचीत) की स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब एक से अधिक–कम से कम दो व्यक्ति हों। सामान्य रीति से व्यक्ति तभी बोलता है जब कोई सुनने वाला हो और सुनने के बाद उससे जैसी अनुक्रिया चाहते हैं वैसी अनुक्रिया करता हो। यदि सुनने वाला बीच में उठकर चला जाए अथवा सुनता हुआ दिखाई तो दे किंतु न तो मुँह से कुछ हाँ, हूँ बोले और न सिर आदि हिलाये, तो बोलने वाला थोड़ी देर बाद वार्तालाप अपने–आप बंद कर देता है। बिना श्रोता के वक्ता कुछ उद्‌गार–ओफ़! कितना सुंदर है! बड़ा कष्ट है इस बेचारे को–आदि बोल सकता है, किंतु ऐसी उक्तियाँ (कथन) छोटी होती हैं, लंबी और बिना दूसरे व्यक्ति के बोली जाने वाली उक्तियाँ बड़बड़ाना कहलाती हैं। इस प्रकार संप्रेषण प्रक्रिया में (1) वक्ता और (2) श्रोता, होना चाहिए (3) कुछ संदेश, जिसे वक्ता श्रोता के पास पहुँचा रहा है और इस संदेश को (4) प्रयोजनपूर्ण होना चाहिए।

1.3.2 प्रतीक व्यवस्था

वक्ता–श्रोता–संदेश की स्थिति तो हो गई। किंतु संदेश वक्ता से श्रोता तक पहुँचे कैसे? अतएव एक माध्यम या चैनल की भी आवश्यकता होगी और माध्यम वही होगा जिसे हमारी ज्ञानेंद्रियाँ ग्रहण कर सकें। ऐसे माध्यम पाँच हो सकते हैं–जिह्वा के लिए स्वाद माध्यम और त्वचा के लिए स्पर्श माध्यम। प्राणी इन सब माध्यमों से संप्रेषण करते हैं। वैज्ञानिकों ने जीव–जंतुओं के संप्रेषण के आधार पर पता लगाया है कि चींटियाँ गंध के माध्यम से अर्थ संप्रेषण करती हैं। मधुमक्खियाँ दृश्य माध्यम से अर्थ प्रकट करती हैं। जब कोई मधुमक्खी कहीं शहद मिलने की सूचना प्राप्त करती है, तो अपने छत्ते के बाहर गोल–गोल चक्कर लगाते हुए उड़ती है। चक्कर की आवृत्ति और आकृति के आधार पर दूसरी मधुमक्खियाँ सूचना प्राप्त करती हैं। अन्य प्राणी भी दूसरे प्राणियों के हाव–भाव, चाल–ढाल आदि को देखते हुए स्थिति का जायजा लेते हैं। इस कारण कई प्राणी अपनी आंगिक चेष्टाओं से दूसरे तक अपने अभिप्राय को पहुँचाते हैं। श्रव्य माध्यम शायद प्राणियों के लिए सबसे प्रमुख माध्यम है। स्तनपायी जानवरों का रेंकना, रँभाना, गरजना, गुर्राना, चीखना, चिड़ियों का चहचहाना आदि वागेन्द्रियों से संपन्न होते हैं। कीड़े आदि जीव, जिनकी वागेन्द्रियाँ ध्वनि उत्पादन के लिए उपयुक्त या विकसित नहीं हैं, शरीर के किसी अंग को रगड़ने या पंख फड़फड़ाने आदि क्रियाओं से ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 12 8/18/2021 12:21:33 PM

जहाँ तक मनुष्य का सवाल है उच्चरित माध्यम उसके लिए सबसे प्रमुख माध्यम है, क्योंकि मनुष्य के शरीर की वागेन्द्रियाँ प्राणिजगत में सबसे विकसित अंग है। यों कह सकते हैं कि भाषा की ध्वनियों के उच्चारण की उत्कृष्ट व्यवस्था के कारण मनुष्य में गंध, स्पर्श आदि शक्तियाँ अन्य प्राणियों की तुलना में कम होती गई हैं और उसके संप्रेषण के लिए उच्चरित भाषा सबसे प्रमुख साधन हो गई है। माध्यम (चैनल) तो संदेश को वक्ता के पास से श्रोता के पास ले जाने का काम करता है, किंतु संदेश को तो मन ही उत्पन्न करता है और मन ही ग्रहण करता है। मन आँख–कान–नाक–जिह्वा–त्वचा के समान कोई स्थूल वस्तु नहीं है। वह अमूर्त है, अतएव संदेश को स्वयं अमूर्त होना होगा। यह अमूर्त होने की शर्त कोड को जन्म देती है क्योंकि अमूर्त विचारों को मूर्त रूप देने के लिए हमें प्रतीकों की आवश्यकता पड़ती है। चौराहे पर लाल–पीली–हरी (लाल–हरी) बत्तियाँ होती हैं। वे एक प्रतीक व्यवस्था को प्रदर्शित करती हैं– 'लाल' का तात्पर्य होता है कि यातायात रुक जाए, 'हरे' का तात्पर्य होता है कि यातायात चल दे और पीले का तात्पर्य होता है कि यातायात चलने या रुकने के लिए तैयार हो जाए। ये स्थूल (मूर्त) प्रतीक स्थूल नेत्र से ग्रहण किये जाते हैं किंतु इस कोड का अर्थ मन निकालता है। यहाँ रंग के 'आयाम' में लाल–पीला–हरा–तीन प्रतीक हैं।

प्राणी भी भाव संप्रेषण के लिए विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। मानव की भाषा कोड के रूप में भिन्न है, अति विकसित है। मनुष्य भी आम तौर पर 40–50 ध्वनियाँ ही बोल पाता है। हर भाषा में 10–15 स्वर और 30–40 व्यंजन ध्वनियाँ होती हैं। मान लें कि हर ध्वनि का एक अर्थ हो तो मनुष्य भी 40–50 शब्दों/उक्तियों से अधिक कुछ उत्पन्न नहीं कर पाता। लेकिन मनुष्य ने विस्तृत कोड व्यवस्था निर्मित की है। दो या तीन या चार ध्वनियों से वह शब्दों का निर्माण करता है और शब्दों में अर्थ का आरोपण करता है। यानी मनुष्य की भाषा में ध्वनियाँ प्रतीक नहीं हैं, ध्वनियों से बने शब्द प्रतीक हैं। यही कारण है कि मनुष्य 40–50 ध्वनियों से लाखों शब्दों का निर्माण करता है, जिससे जटिल से जटिल विचारों की अभिव्यक्ति कर सके।

भाषा के प्रतीक यादृच्छिक (Arbitrary) प्रतीक माने जाते हैं। अर्थात् भाषा के शब्दों का उनके अर्थ के साथ कोई सहज संबंध नहीं है। अन्यथा सारी भाषाओं की शब्दावली एक ही होती। जिसे हम 'आम' कहते हैं, वह अंग्रेजी में Mango है और तमिल में 'माड्गाय'। किस शब्द का अर्थ क्या हो, यह निर्णय भाषा बोलने वाला समुदाय करता है। इसी कारण शब्दों को यादृच्छिक प्रतीक कहते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि संप्रेषण के लिए कोड तैयार करने का दायित्व भाषा बोलने वाले जन समुदाय का है। यानी भाषा उस समुदाय की सृष्टि है।

प्रतीकों के निर्माण का आधार

इसके अनुसार संप्रेषण के लिए आवश्यकता है : (1) वक्ता और (2) श्रोता (दोनों सजीव प्राणी), (3) माध्यम (भौतिक) और (4) माध्यम द्वारा प्रेषित प्रतीकों की कोड व्यवस्था (अमूर्त) ताकि (5) कोड में बँधे संदेश को श्रोता तक पहुँचाया जा सके। मानव संप्रेषण में घटक इस प्रकार है :

1. वक्ता (मनुष्य)/श्रोता (मनुष्य) : बातचीत के दौरान एक व्यक्ति बारी–बारी से वक्ता और श्रोता की भूमिकाएँ निभाता है।
2. माध्यम : (मुँह से निकली, ध्वनि तरंगों द्वारा संचारित, कानों द्वारा ग्रहण की गई ध्वनियाँ)
3. कोड व्यवस्था (हमारी भाषा)
4. संदेश (सामाजिक प्रयोजनों की सिद्धि के लिए)

इस प्रकार भाषा की एक परिभाषा यह भी हो सकती है :

भाषा यादृच्छिक प्रतीकों से निर्मित ऐसी कोड–व्यवस्था है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरे मनुष्यों के मुख से निःसृत ध्वनियों के माध्यम से सामाजिक प्रयोजनों की सिद्धि के लिए संदेशों का परस्पर आदान–प्रदान करता है।

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित में कौन–कौन सी प्रतीक व्यवस्था है ?

क) रेलगाड़ी का सिग्नल ख) दिशासूचक पट्टियाँ

ग) दरवाजे पर लगा नाम पट्ट घ) किसी बच्चे का फोटो

2) निम्नलिखित में से कौन–कौन से कथन सही हैं ?

i) प्राणी ध्वनि प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, लेकिन उनसे और विचारों के लिए कोड का निर्माण नहीं कर पाते।

ii) प्रतीक यादृच्छिक होते हैं (जैसे किसी समाज में 'लाल' मंगल का सूचक है तो किसी में क्रांति का)

iii) संदेश जिस माध्यम से संप्रेषित किया जाता है, उसी को कोड कहते हैं।

iv) जिस भाषा में जितने अधिक स्वर और व्यंजन होंगे उसमें उतने अधिक शब्द भी होंगे।

v) भाषा के स्वरूप का निर्धारण उसे बोलने वाला समुदाय ही करता है।

vi) अन्य प्राणी भी मनुष्य की तरह अपनी भाषा के माध्यम से विचार–विमर्श कर सकते हैं।

3) भाषा के निर्माण में ध्वनियाँ, प्रतीक और कोड व्यवस्था इन तीनों संकल्पनाओं को स्पष्ट कीजिए। अपना उत्तर लगभग 8 पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.4 भाषा– सामाजिक व्यवहार के रूप में

सामाजिक व्यवहार उन व्यवहारों को कहते हैं जो मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में दूसरे सदस्य के प्रति करता है। अध्यापक के आने पर अपनी सीट से खड़े हो जाना एक सामाजिक व्यवहार है। भाषा सामाजिक व्यवहार का एक साधन है, इसके द्वारा मनुष्य दूसरों के साथ संपर्क, सहयोग आदि करता है। समाज ही भाषा की

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 14 8/18/2021 12:21:34 PM

कोड व्यवस्था को जन्म देता है; इस तरह भाषा समाज की वस्तु है। इस भाग में हम समाज में भाषा के महत्व की चर्चा करेंगे।

1.4.1 मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है

यह कथन इस बात पर बल देता है कि मनुष्य के सभी व्यवहारों के मूल में समाज है और सभी व्यवहार समाज पर आश्रित अथवा निर्भर हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए जरा मनुष्य से भिन्न प्राणियों के व्यवहार को देखें। इन प्राणियों की सभी क्रियाएँ मुख्य रूप से जैविक होती हैं और प्रकृति उनके मूल में होती है। उनकी क्रियाओं का उद्‌देश्य है–देहरक्षा और वंशवृद्धि। देहरक्षा के लिए जीवों को कुछ न कुछ आहार ग्रहण करना होता है और शत्रुओं तथा प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियों से बचने के लिए किसी आश्रयस्थल (घोंसला, माँद, बिल आदि) की आवश्यकता होती है। वंशवृद्धि के लिए संगी बनाना होता है और संतान को समर्थ होने तक पालना होता है। अतएव जीवों की सारी सामाजिक व्यवस्था और संप्रेषण व्यवस्था इसी दिशा में कार्य करती है। किंतु मनुष्य का दायरा बड़ा है– वह स्वयं तक अथवा अपने वंश तक सीमित नहीं है। 'वसुधैव कुटुम्बकम'(सारी पृथ्वी ही परिवार है) का आदर्श मनुष्य को देह और वंश से ऊपर उठाकर समाज, राष्ट्र और विश्व के धरातल पर पहुँचा देता है। उसे अपने समाज में रहने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है और इस भाषा को वह अपने समाज से ही अर्जित करता है। इसी भाषा के माध्यम से वह समाज से अपना संबंध जोड़ता है और समाज को गति देता है। इसीलिए मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है और भाषा इस सामाजिक या सामुदायिक जीवन का अत्यंत आवश्यक अंग है।

भाषा जन्मजात गुण नहीं है, न ही पैतृक संपत्ति है। प्राणियों की आवाज़ें जन्मजात प्रवृत्ति है। अगर किसी प्राणी का बच्चा जन्म से ही अलग रखा जाए तो भी वह अपने को अभिव्यक्त करने के लिए वे ही ध्वनियाँ निकालेगा जो उसके वर्ग के लिए सामान्य है। दूसरे शब्दों में कोई भी प्राणी वर्ग अतिरिक्त रूप से प्रतीकों का निर्माण भी नहीं कर सकता, जबकि कई परीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि कोई भी मानव शिशु एकांकी रहकर कोई भाषा नहीं सीख सकता। वह समाज से ही भाषा सीख सकता है। भेड़िया बालक 'रामू' भेड़ियों की ही आवाज निकालता था। भाषा पैतृक भी नहीं है। बच्चा जिस समाज में पलेगा उसी समाज की भाषा सीखेगा। हिंदी भाषी माँ–बाप का बच्चा जन्म से ही किसी जापानी परिवार में पले तो वह जापानी भाषी ही बनेगा। कुछ साल बाद वह अपने माँ–बाप के पास आए और हिंदी भाषा का प्रयोग करे तो जापानी भाषा भूल जाएगा और फिर हिंदी भाषी बन जाएगा। इसका कारण है कि भाषा समाज में बने रहने का साधन है और समाज से ही अर्जित होती है।

1.4.2 भाषा सामाजिक व्यवहार है

मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में जो व्यवहार करता है उसे सामाजिक व्यवहार कहते हैं नमस्ते करना एक सामाजिक व्यवहार है, कपड़े पहनना एक सामाजिक व्यवहार है, खान–पान, रहन–सहन आदि सामाजिक व्यवहार है। पहली बात यह है कि सामाजिक व्यवहार अलग–अलग समाजों में अलग–अलग होते हैं। कहीं हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं, कहीं नाक से नाक मिलाकर। दूसरी बात यह है कि सामाजिक व्यवहार के पीछे कोई तर्क नहीं होता, उनकी तुलना कर के किसी को अच्छा या बुरा नहीं कह सकते। हम क्यों हाथ जोड़ते हैं और अंग्रेज क्यों हाथ मिलाते हैं, इसके पीछे कोई तर्क नहीं होता और हाथ जोड़ना 'अच्छा' है और हाथ मिलाना 'बुरा' इत्यादि भी नहीं कह सकते। हम इसलिए हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं कि हमारे समाज में यही प्रचलन है, हम अपने बड़ों से ऐसा करना ही सीखते हैं,

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 15 8/18/2021 12:21:34 PM

यही हमारे लिए शिष्टाचार है, संक्षेप में यही हमारी सामाजिक परंपरा अथवा रूढ़ि है। इस दृष्टि से सामाजिक व्यवहार भी भाषा के प्रतीकों की तरह यादृच्छिक है। अंग्रेज इसलिए हाथ मिलाकर अभिवादन करते हैं कि उनके समाज में यही प्रचलन है, उन्होंने अपने बड़ों से वैसा करना ही सीखा है, वही उनके लिए शिष्टाचार है, संक्षेप में वही उनकी सामाजिक परंपरा अथवा रूढ़ि है।

भाषा एक सामाजिक व्यवहार है, मनुष्य उसे समाज से सीखता है और समाज में प्रयोग में लाता है। इसलिए अलग–अलग समाजों में अलग–अलग भाषाएँ होती हैं। हमारे यहाँ हिंदी है, अंग्रेजों के यहाँ अंग्रेजी। हिंदी में जिसे 'कुत्ता' कहते हैं, अंग्रेजी में उसे Dog कहते हैं। इसके पीछे कोई तर्क नहीं है, शब्द और वस्तु में कोई प्राकृतिक संबंध नहीं है। सभी शब्दों का, उन शब्दों द्वारा द्योतित वस्तु आदि से जो संबंध है वह यादृच्छिक है। इसी प्रकार फारसी–अरबी में ग़, ज़, फ़, आदि ध्वनियों का होना और हिंदी में न होना इत्यादि सामाजिक परंपरा/रूढ़ि के कारण है, इसके पीछे भी कोई तर्क नहीं है, केवल यादृच्छिकता है। हम वाक्य में कर्ता–कर्म–क्रिया का क्रम रखते हैं तो अंग्रेज कर्ता–क्रिया–कर्म का। इसके पीछे भी कोई तर्क नहीं है, केवल यादृच्छिक संबंध है। इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अन्य सामाजिक व्यवहारों के समान भाषा के तत्वों को निर्धारित करने वाला तत्व सामाजिक परंपरा या रूढ़ि है और भाषाई कोड के मूल में यादृच्छिकता है।

भाषा एक सामाजिक व्यवहार है। यह व्यवहार बिना भाषा के अन्य व्यापारों से भी संभव है। मान लें कि किसी बैठक में कोई वक्ता बोलते–बोलते खाँसने लगता है। अध्यक्ष नज़र घुमाकर किसी की तरफ़ देखते हैं, कोई व्यक्ति दौड़कर जाता है और पानी लेकर आता है, मुस्कराकर पानी लाने वाले को धन्यवाद देते हैं, फिर दूसरी मुस्कराहट से श्रोताओं से माफ़ी माँगकर भाषण शुरू करते हैं। ये सब कार्य व्यापार भाषा के माध्यम से भी हो सकते हैं।

प्रयोजन एक ही है–अर्थ संप्रेषण। शारीरिक व्यापारों की तुलना में भाषा अर्थ संप्रेषण के लिए अधिक उपयुक्त माध्यम है, क्योंकि इससे हम जटिल से जटिल विचारों को अभिव्यक्त कर सकते हैं।

अर्थ संप्रेषण सामाजिक आवश्यकता है। हम अपनी आवश्यकताओं को अभिव्यक्त कर सकते हैं। कुछ माँगने के लिए अनुनय–विनय कर सकते हैं, फुसला–बहला सकते हैं, किसी बात से इनकार या इसरार कर सकते हैं, दूसरों के कार्य की निंदा या प्रशंसा कर सकते हैं तथा सहमति या सुझाव दे सकते हैं। सामाजिक प्राणी होने के नाते ये सब व्यापार आवश्यक होते हैं और इन्हें भाषा के माध्यम से बखूबी निभाया जा सकता है।

जिसे हम चिंतन कहते हैं, वह सामाजिक व्यवहार के लिए व्यक्ति की निजी भूमिका है, अर्थात चिंतन भी भाषा द्वारा संप्रेषण का ही एक रूप है। भाषा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परस्पर आदान–प्रदान का साधन है। इसी से सामाजिक जीवन संपन्न होता है। वर्तमान समाज की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति भाषा द्वारा होती है।

वर्तमान से अतीत की तरफ कदम बढ़ाएँ, तो हम संस्कृति की झलक देख सकते हैं। संस्कृति भाषा के बिना संभव नहीं। उस समाज के धार्मिक विचार, ज्ञान–विज्ञान का भंडार, साहित्य, सभी भाषा के माध्यम से ही पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ते हैं। इस तरह भाषा समाज की सांस्कृतिक धरोहर की वाहक है।

भाषा व्यक्तित्व के विकास का आधार है। भाषा भौतिक संस्कृति के विकास का आधार है। किसी वस्तु के निर्माण में हाथ जितने उपयोगी हैं, उनसे ज्यादा उपयोगी है ऐसे कार्यों को संपन्न करने के लिए अनुभव द्वारा प्राप्त मनुष्य का संचित ज्ञान, जो भाषा

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 16 8/18/2021 12:21:34 PM

के माध्यम से ही समाज को विरासत में मिलता है। भाषा संस्कृति की पोषिका है, क्योंकि भाषा के माध्यम से ही हम विचारों की गहराइयों तक जा पाते हैं। भाषा के इस सामाजिक प्रकार्य को समझने के बाद हम समाज और भाषा के संबंधों की चर्चा आगे करेंगे और देखेंगे कि समाज भाषा का किन संदर्भों में और किस प्रकार उपयोग करता है।

1.4.3 समाज में भाषा

सामाजिक व्यवहार समाज की संरचना पर भी निर्भर होता है। समाज के एक सदस्य की सामाजिक संरचना के अनुसार विविध सामाजिक भूमिकाएँ होती हैं। उदाहरण के लिए यद्यपि आप एक हैं किंतु आप अनेक सामाजिक भूमिकाएँ निभाते हैं—अपने माता—पिता के लिए पुत्र, पत्नी के लिए पति, भाई—बहनों के लिए भाई, बच्चों के लिए पिता, पड़ोसियों के लिए पड़ोसी, मित्रों के लिए मित्र, गुरु के लिए शिष्य, अधिकारी के लिए अधीनस्थ कर्मचारी और अधीनस्थों के लिए अधिकारी आदि। इन भूमिकाओं के अनुसार आपका सामाजिक व्यवहार भिन्न—भिन्न होता है। जैसा सामाजिक व्यवहार आप अपने अधीनस्थ से करते हैं, वैसा अपने अफसर के सामने नहीं। उदाहरण— अभिवादन के लिए कहीं साष्टांग प्रणाम करते हैं, तो कहीं चरण स्पर्श; कहीं हाथ जोड़कर'प्रणाम' या 'नमस्कार' कहते हैं तो कहीं हाथ मिलाकर 'हैलो', कहीं हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं तो कहीं प्यार से सिर पर हाथ फेरते हैं। भाषा में 'तू', 'तुम' अथवा 'आप' सर्वनाम रूपों, 'जा', 'जाओ', 'जाइए' आदि क्रिया रूपों, संबोधन की विविध शैलियों, खाना—भोजन, आहार आदि पर्यायों द्वारा ये भिन्नताएँ प्रकट होती हैं। यह विभिन्नता विविध वार्ता शैलियों द्वारा भी प्रकट होती है:

i) अंतरंग शैली – सुनते हो, जरा इधर आना।

ii) अनौपचारिक – जरा इधर आओ।

iii) सामान्य शैली – कृपया इधर आइए।

iv) औपचारिक – यदि कष्ट न हो तो इधर आएँ।

v) रूढ़ शैली – मेरा निवेदन है कि इधर आने की कृपा करें।

सामाजिक व्यवहार में विभिन्नता की एक अन्य स्थिति का संबंध जीवन के विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों से है। मनुष्य के जीवन में एक साथ विविध सामजिक क्षेत्र आते हैं। ये सामाजिक क्षेत्र मोटे तौर से हैं—घर, परिवार, पड़ोस, स्कूल, कॉलेज, खेल—क्रीड़ा, आमोद—प्रमोद, बाजार, कार्यालय, न्यायालय, फैक्टरी, धर्मस्थल आदि। इन विविध क्षेत्रों में एक ही मनुष्य क्षेत्रों की विभिन्नता के कारण भिन्न—भिन्न सामाजिक व्यवहार करता है। हमारे एक मित्र पुलिस अधिकारी हैं। वे बीबी—बच्चों के सामने बनियान—पैजामा, घर में अभ्यागत आने पर कुर्ता—पैजामा, बाजार या बाहर पैंट—बुशर्ट, पूजा के समय केवल धोती, किंतु ड्यूटी पर पुलिस की वर्दी में दिखाई पड़ते हैं। कपड़ों का यह अंतर सामाजिक क्षेत्र की विभिन्नता के कारण है। भाषा के साथ इसकी समानांतर स्थिति है। एक ही व्यक्ति घर में भोजपुरी, अभ्यागतों और बाजार आदि में हिंदी, औपचारिक स्थिति में अंग्रेज़ी किंतु पूजा घर में संस्कृत का प्रयोग करते हैं। इस तरह अनेक भाषाओं का एक ही व्यक्ति/समाज द्वारा प्रयोग, अनेक भाषीयता/बहुभाषीयता कहा जाता है। ऐसी संस्कृति में जहाँ कालक्रम अथवा एक ही समय में अनेक भाषा बोलने वाले व्यक्ति/समाज आए दिन परस्पर संपर्क में आते हैं। ऐसी स्थिति स्वाभाविक है। यदि इतना भाषा संपर्क न भी हो, तो भी सभी सामाजिक क्षेत्रों में व्यक्ति एक सा नहीं बोलता। घर में आत्मीयता दिखाने वाले शब्द, तू, तुम, का प्रयोग और वाक्य रचना की शिथिलता, खंडित वाक्य आदि का प्रयोग होता है तो कार्यालय में सरकारी कामकाज में अकर्मक क्रिया (आपको सूचित किया जाता है) से युक्त बँधे हुए और अखंडित

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 17 8/18/2021 12:21:34 PM

वाक्य आदि दिखाई पड़ते हैं। न्यायालय में 'मीलॉर्ड' का संबोधन मिलता है जिसका प्रयोग अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। विभिन्न क्षेत्रों में बोली के प्रयोग की कुछ न कुछ विशिष्टता दिखाई देती है, कहीं यह विशिष्टता सामान्य बोलचाल की बोली से स्पष्ट रूप से काफी भिन्न होती है और लोग उसे सुनते या पढ़ते ही बता देते हैं कि यह अमुक क्षेत्र की भाषा है। संक्षेप में भाषा अनेकरूपता है–बहुत–सी भाषाओं के संपर्क की स्थिति के कारण (बहुभाषीयता) अथवा सामाजिक क्षेत्रों में बहुत–सी प्रयुक्तियों की उपस्थिति के कारण। भाषा में यह विविधरूपता समाज की देन है।

1.4.4 भाषा में परिवर्तन

समय की दृष्टि से भी समाज में परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। अतीत में पूर्वजों के सामाजिक व्यवहार तो स्पष्टतया हम नहीं देखते, किंतु इन सामाजिक व्यवहारों में से एक वेशभूषा, मूर्तियों और चित्रों में दिखाई पड़ती है। यदि इन्हें देखें तो पता चलेगा कि पुराने जमाने में और आज के कपड़ों या जेवरों में, मूल में एक होते हुए, कितनी विभिन्नता है। भाषा, जैसा कि आप जानते हैं, एक सामाजिक व्यवहार है और इस कारण कालक्रम में इसमें भी परिवर्तन होते रहते है, संस्कृत में सात को 'सप्त' कहा जाता था, इसने समय की धारा में 'सत्त' और 'सात' का रूप लिया है। इसी तरह कर्ण–कण्ण–कान, कर्म–कम्म–काम, कृष्ण–कण्ह–कान्ह आदि में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। ध्वनियों में भी हम 'ऋ', 'ज्ञ', 'ष', 'ण', आदि का उच्चारण उस प्रकार नहीं करते जैसे वेदकालीन ऋषि करते थे। अर्थ की दृष्टि से भी परिवर्तन मिलते हैं– पहले मुनि के योग–व्यवहार को 'मौन' कहते थे, अब 'मौन' चुप्पी है। कालक्रमिक परिवर्तनों के अलावा अन्य संस्कृतियों के संपर्क से भी सामाजिक व्यवहारों में भिन्नता आती है। वेशभूषा के क्षेत्र को ही लें, तो पता चलेगा कि अरबी–फारसी संस्कृति के प्रभाव से हम कुर्ता–पैजामा पहनते हैं और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों से शर्ट–बुशर्ट, कोट, पैंट आदि। किंतु आज हमारे व्यवहार में ये विदेशी नहीं हैं, बल्कि इन्हें हमने अपना लिया है। भाषा के संबंध में भी ऐसी ही स्थिति है। हिंदी में बड़ी संख्या में फारसी से (कलम, कागज आदि) और अंग्रेजी से (रेडियो, टिकट, राशन, पोस्टकार्ड आदि) शब्द आए हैं और कहीं–कहीं तो इन्होंने संस्कृत से आए शब्दों को भी हटा दिया है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कहते हैं, 'भाषा सदैव परिवर्तित होती रहती है', 'जीवंत भाषा कभी भी स्थिर नहीं रह सकती' आदि। संक्षेप में कह सकते हैं कि भाषा में निरंतर समय अथवा संपर्क के कारण परिवर्तन होते रहते हैं। सामाजिक व्यवहार के रूप में भाषा की स्थिति भाषा की निम्नलिखित प्रकृति को स्पष्ट करने में सहायक है :

1) भाषा जन्मना प्राप्त नहीं होती, यद्यपि भाषा सीखने की क्षमता प्राकृतिक है।
2) भाषा के तत्व यादृच्छिक होते हैं।
3) भाषा में अनेकरूपता होती है।
4) भाषा सदैव परिवर्तनशील है।

बोध प्रश्न

4) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

   i) मनुष्य अपने माता–पिता या साथियों के बीच रहकर ही अपनी बोली सीखता है।

   ii) भाषा सदैव अपरिवर्तित और समानुरूप होती है।

   iii) मनुष्य भिन्न–भिन्न सामाजिक भूमिकाओं में भिन्न–भिन्न व्यवहार करते हैं।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 18 8/18/2021 12:21:34 PM

5) कॉलम 'क' के वाक्यांश का कॉलम 'ख' के वाक्यांश से सही मिलान कीजिए।

(कॉलम 'क')	(कॉलम 'ख')
(i) हिंदी में बड़ों के लिए	क) कचहरी में ही मिलता है।
(ii) पशु–पक्षियों के व्यवहार के पीछे	ख) भाषाओं के संपर्क के कारण आया है।
(iii) 'मीलॉर्ड' का प्रयोग	ग) सर्वनाम 'आप' का प्रयोग होता है।
(iv) हिंदी में 'रेडियो' शब्द का प्रयोग	घ) देहरक्षा और वंशरक्षा की भावना

6) रिक्त स्थानों की पूर्ति नीचे दिए शब्दों से कीजिए।

(i) सामाजिक प्राणी के नाते मनुष्य के सभी व्यवहारों के मूल में .... है।

(ii) कालक्रम से भाषा में .... होते हैं, जैसे संस्कृत में 'अष्ट' और हिंदी में 'आठ'।

(iii) शब्दों और शब्दों द्वारा द्योतित वस्तु के संबंध को ....संबंध कहते हैं।

यादृच्छिक	परिवर्तन	बहुभाषीयता	प्रयुक्ति
परिवार	समाज	सामाजिक	परंपरा

1.5 भाषा– संरचना के रूप में

'संरचना' ऐसी रचना को कहते हैं जिसमें कई भाग जुड़कर एक वस्तु या इकाई बनाते हैं। आप 'ध्वनि', 'शब्द', 'वाक्य' जैसे शब्दों से अवश्य परिचित होंगे। भाषा इन्हीं तत्वों से बनी एक संरचना है। इस भाग में हम भाषा के संरचना पक्ष का ही अध्ययन करेंगे।

1.5.1 संरचना का तात्पर्य

संसार की सभी वस्तुओं की विशिष्ट संरचना है, अर्थात् कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसके एक से अधिक अवयव या कारक या घटक या संरचक न हों और जो इन संरचकों के एक विशेष क्रमबद्ध संयोजन से उत्पन्न न हो। इस कारण संरचना की व्यवस्था से आप किसी न किसी रूप में परिचित ही होंगे, फिर भी एकाध उदाहरणों से संरचना की संकल्पना को स्पष्ट किया जा रहा है।

मान लीजिए आपको साइकिल की संरचना समझनी है। सभी संरचनाओं के समान साइकिल के भी अनेक संरचक या अवयव या घटक होते हैं। मोटे तौर से एक फ्रेम है, हैंडिल है, सीट है, पैडिल है और दो पहिये हैं। इन संरचकों का साइकिल की संरचना में अपना–अपना महत्व या प्रकार्य (Function) है। हम सीट पर बैठते हैं, हैंडिल से संतुलन बनाए रखने के अतिरिक्त साइकिल को इधर–उधर मोड़ सकते हैं, पैडिल–चेन से मनुष्य पैर की गति को बढ़ा देता है, पहिये गति देते हैं, फ्रेम सब संरचकों को पक्के बाँधे रखता है और ये सब मिलकर साइकिल के प्रकार्य को (तेज गति से चलने को) पूरा करते हैं। अतएव संरचना के सभी संरचकों का कोई न कोई कार्य/प्रकार्य होता है।

संरचकों की संख्या और संरचकों के प्रकार्यों के अतिरिक्त संरचकों के पूरी संरचना में विशेष स्थान होते हैं। हैंडिल आगे की ओर फिट किया जाएगा, न कि पीछे की ओर। सीट हैंडिल की तुलना में पीछे होगी, न आगे, पहिये नीचे होंगे। प्रत्येक संरचक को अपने–अपने स्थान पर लगाने से ही साइकिल बनेगी। इस प्रकार केवल संरचकों

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 19 8/18/2021 12:21:34 PM

की i) संख्या ii) प्रकार्य और iii) स्थान ही निश्चित नहीं होते बल्कि यह भी निश्चित होता है कि वे किस क्रम से संरचना में आएँ अर्थात् उनकी iv) क्रमबद्धता भी निश्चित होती है।

क्रमबद्धता के साथ–साथ सोपान क्रम का भी संरचना–प्रक्रिया में महत्व है। सोपान–क्रम में अनेक सोपान होते हैं जैसे किसी मकान के जीने में कई सोपान होते हैं और आदमी एक–एक सोपान चढ़ते हुए ऊपर पहुँचता है। सामाजिक जीवन में बहुत से स्थानों पर सोपान क्रम दिखाई पड़ता है। कार्यालय व्यवस्था को लें। नीचे के सोपान पर क्लर्क हैं, उससे ऊँचे सोपान पर असिस्टेंट हैं, उससे ऊपर सुपरिटेंडेंट हैं, उससे ऊपर मैनेजर, डायरेक्टर आदि। व्यक्ति की पदोन्नति भी इसी सोपान–क्रम में होती है और फाइलें भी ऊपर इसी क्रम से निर्णय देने वाले अधिकारी तक पहुँचती हैं और इसी क्रम में ऊपर से नीचे आती हैं। स्थान के अतिरिक्त सोपान–क्रम में अधिकार शक्ति भी ऊपर बढ़ती जाती है। जितना अधिकार मैनेजर का है उससे कम सुपरिटेंडेंट का, जितना सुपरिटेंडेंट का है उससे कम असिस्टेंट का। इस प्रकार यह अधिकार का सोपान–क्रम है। प्रशासन व्यवस्था में एक अफसर के अधीन कई अधीनस्थ अफसर होते हैं। उन अधीनस्थ अफसरों के अधीन उनसे छोटे कई अफसर होते हैं। प्रत्येक अफसर अपने से नीचे अफसर का काम देखता है और उनसे काम करवाता है, किंतु अपने से ऊपर के अफसर के दिशा–निर्देश में स्वयं कार्य करता है। संरचना के सोपान–क्रम में प्रत्येक संरचक अपने से ऊपर के अफसर के दिशा–निर्देश में स्वयं कार्य करता है। संरचना के सोपान–क्रम में प्रत्येक संरचक अपने से ऊपर के संरचक का अंग है किंतु अपने से नीचे के संरचकों का अंगी (स्वामी)। जैसे साइकिल की संरचना की दृष्टि से पहिया एक संरचक अथवा अंग है, किंतु अपने संरचकों–अक्ष, तीलियों, टायर, ट्यूब आदि– की दृष्टि से पहिया बनी हुई (अर्थात् अंगी/स्वामी) संरचना है; ट्यूब फिर स्वयं एक संरचना है जिसके संरचक रबड़ का गोला, नाजेल, ढकनी आदि हैं। वस्तु या संगठन जितना ही जटिल होगा, उतने ही अधिक सोपान–क्रम में सोपान होंगे। इस प्रकार संरचना में संरचकों की i) संख्या ii) प्रकार्य, iii) स्थान, iv) क्रमबद्धता के अतिरिक्त v) सोपान–क्रम का भी बहुत महत्व है। किसी भी संरचना को भलीभाँति समझने के लिए इन पाँचों को समझना अत्यावश्यक है।

1.5.2 भाषा की संरचना

भाषा एक संरचना है। हमारी बातचीत वाक्यों से ही बनती है, इसलिए उदाहरण के रूप में एक वाक्य लिया जा रहा है और आप स्वयं देखेंगे कि इसकी संरचना में उपरिलिखित पाँचों तत्व मिलते हैं।

लड़के	मैदान में	शाम को	गेंद	खेलते हैं।
(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)

उपरिलिखित वाक्य एक संरचना है। i, ii, iii, iv और v इसके संरचक हैं। ये संरचक संख्या में पाँच हैं। इन संरचकों के अपने–अपने प्रकार्य हैं–(i) का प्रकार्य कर्ता का है, (ii) का प्रकार्य क्रम का है, (iii) का प्रकार्य क्रिया का है। इसके अतिरिक्त (iv) का प्रकार्य 'स्थान' की सूचना देना है और (v) का प्रकार्य 'समय' की सूचना देना है।

इन प्रकार्यों के बाद आइए 'स्थान' पर विचार करें। स्थान की दृष्टि से हिंदी वाक्य–संरचना में कर्ता सबसे पहले स्थान पर, कर्म उसके बाद और क्रिया सबसे अंतिम स्थान पर आते हैं। 'स्थानसूचक' और समय सूचक क्रिया के पूर्व कहीं भी आ सकते हैं पर सामान्यतया कर्ता और कर्म के बीच आते हैं। (अंग्रेजी के समानांतर अनुवाद वाक्य में भी संरचकों की संख्या पाँच होती है, उनके प्रकार्य भी वही होते हैं किंतु स्थान–क्रम में भेद होता है– वहीं क्रिया संरचक कर्ता और संरचक कर्म के बीच में होता है)।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 20 8/18/2021 12:21:34 PM

यह वाक्य स्थान–क्रम में बद्ध है। बंधन उस प्रकार का है जैसे किसी जंजीर की कड़ियों में होता है। इस शृंखला (जंजीर)–बंधन में क्रिया मुख्य होती है– वही कर्ता, कर्म आदि को बाँधे रखती है। सोपान–क्रम में मोटे तौर पर सोपान ये हैं :

1) वाक्य –/लड़के मैदान में शाम को गेंद खेलते हैं।

2) पदबंध–/लड़के/, /मैदान (में)/, /शाम को/, /गेंद/, /खलेते हैं/

3) शब्द– /लड़का (ए)/, /मैदान (में)/, /शाम (को)/, /गेंद/, /खेल (ते) + है (एँ)

4) शब्दांश– /लड़का/, /ए/, /मैदान/, /में/, /शाम/, /को/, /गेंद/, /खेल/, /त/, /ए/, /खेल/, /त/, /हो/

1.5.3 भाषिक संरचनाएँ

यहाँ तक तो भाषाई संरचना अन्य वस्तुओं की संरचना में समान है। किंतु भाषाई संरचना–प्रक्रिया वस्तुओं की संरचनाओं से अधिक जटिल, सूक्ष्म और अमूर्त है।

मान लीजिए 'क' मेज के नीचे एक साँप देखता है और वह चाहता है कि इसकी जानकारी 'ख' को मिल जाए कि वहाँ साँप है। दोनों का समान कोड है। अब 'क' उन संप्रत्ययों के लिए सबसे उपयुक्त शब्द–शब्दांशों को चुनेगा। उसके सामने संप्रत्यय है– साँप, मेज (ये स्थूल वस्तुएँ हैं)। इसके लिए वह शब्दकोशीय शब्दों या व्याकरणिक शब्दों/शब्दांशों को ढूँढ़ेगा। भाषा हिंदी है, इसलिए क्रमशः साँप (शब्दकोशीय शब्द), मेज (शब्दकोशीय शब्द) के नीचे (व्याकरणिक शब्द) है (अस्तित्व–वर्तमान–एकवचन) आएँगे। इसे वाक्य–संरचना के नियमों के अनुसार संरचित करने पर वाक्य बना 'मेज के नीचे साँप' है। यह वाक्य अमूर्त है, इसे ध्वनि–कोड में बाँधा गया और मूर्त ध्वनियों द्वारा प्रकट किया गया। ध्वनियाँ तरंगों के चैनल से श्रोता के पास पहुँचीं। श्रोता ने ध्वनियों के माध्यम से वाक्य को ग्रहण किया, वाक्य में सम्मिलित शब्दों/शब्दांशों को समझा, उनसे निकले बिंबों और बिंब संबंधों को समझते हुए संदेश ग्रहण किया। भाषा की संरचना पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि भाषा में एक तरफ संदेश है और दूसरी तरफ बोली हुई भाषा का रूप। संदेश भाषा का अर्थ पक्ष है। बोली हुई भाषा उस अर्थ को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने की व्यवस्था है। बोली हुई भाषा ध्वनियों के माध्यम से व्यक्त है, शब्द किसी व्यवस्था में आते हैं, जिसकी अपनी संरचना होती है।

इस प्रकार भाषा में तीन संरचनाएँ हैं। ध्वनि संरचना प्रतीकों के निर्माण और उच्चारण की अन्य व्यवस्थाओं को स्पष्ट करती है। वाक्य संरचना में शब्दों की रचना और शब्दों से वाक्यों की रचना का स्वरूप प्रकट होता है। अर्थ संरचना में वाक्यों द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति की चर्चा होती है। संक्षेप में हम अब भाषा की एक परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं।

''भाषा मुख से निःसृत यादृच्छिक वाक् प्रतीकों से बनी व्यवस्था है जिससे समाज के व्यक्ति आपस में भावों और विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।'' इस परिभाषा में आप प्रतीक व्यवस्था के रूप में भाषा, व्यवहार या संरचना के रूप में भाषा तीनों का संकेत देख सकते हैं।

बोध प्रश्न

7) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(i) भाषा के तीन पक्ष हैं : .... पक्ष .... और ....पक्ष।

(ii) संरचना में संरचकों की संख्या, प्रकार्य, ... क्रमबद्धता और .... और .... का बहुत महत्व है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 21 8/18/2021 12:21:34 PM

1.6 भाषा और बोली

भाष विविधरूपा होती है। किसी भी समाज में भाषा का मात्र एक रूप नहीं होता। भाषा के विभिन्न रूपों का प्रमुख आधार स्थान भेद है। किसी भी विशाल क्षेत्र में व्यवहृत भाषा के कई क्षेत्रीय रूप तो होंगे ही। जैसे मराठी भाषा के तीन विशिष्ट रूप मिलते हैं–पुणे के आसपास की भाषा, मराठावाड़ा (औरंगाबाद) की भाषा और विदर्भ (नागपुर) की भाषा। भाषा के इन विभिन्न स्थानीय रूपों को ही हम भाषा की बोलियाँ कहते हैं। बोलियों को उपभाषा भी कहा जाता है। इस तरह जीवंत भाषा में कई बोलियाँ होती हैं, बोलियों का समूह ही भाषा है।

अगर बोलियों का समूह भाषा है, तो हिंदी भाषा के संदर्भ में यह विवाद क्यों है? इन बोलियों को विद्वान अलग–अलग भाषाएँ क्यों मानते हैं? क्या कोई मराठी भाषा की तीन बोलियों को तीन अलग भाषाएँ कहता है? जहाँ तक मराठी, तमिल, गुजराती आदि भाषाओं का सवाल है, उन भाषाओं की बोलियाँ इतनी भिन्न नहीं हैं कि एक मराठी भाषी दूसरे मराठी भाषी को सहजता से न समझ सके। लेकन हिंदी में राजस्थानी बोलने वाले मैथिली बोलने वाले से आसानी से बात नहीं कर सकते। दोनों ही बोलियों (भाषाओं) में इतना अंतर है कि संप्रेषण आसानी से संभव नहीं हो पाता। तो फिर उन्हें हिंदी की बोलियाँ या उपभाषाएँ कहना कहाँ तक तर्कसंगत है।

भाषा और बोली के संबंध को हम वैज्ञानिक दृष्टि से देखना चाहेंगे। हिंदी में एक कहावत है कि 'चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी' (वाणी)। जिस तरह जगह–जगह पानी का रंग–रूप और स्वाद बदल जाता है, उसी तरह दूरी के कारण भाषा भी बदलती है। अर्थात् परिवर्तन इतना कम होगा कि अंतर के बावजूद उन बोलियों में संप्रेषणीयता होगी, विचारों का आदान–प्रदान संभव होगा। हर पड़ोस की बोलियों में संप्रेषणीयता होगी।

अगर किसी भाषा में 12 बोलियाँ हों, जो क्षेत्रीय दृष्टि से पश्चिम से पूर्व तक के विस्तार में फैली हों, तो हर बोली बगल की बोलियों के लिए अधिक संप्रेषणीय होगी। लेकिन परिवर्तन की स्वाभाविकता के कारण बोली 1 और बोली 12 में संप्रेषणयीता सबसे कम होगी। हिंदी भाषा में भी लगभग ऐसी ही स्थिति है। सुदूर पश्चिम में राजस्थानी बोलियाँ हैं, सुदूर पूर्व में बिहारी बोलियाँ, मध्य में क्रम से पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की बोलियाँ हैं। इनमें क्रमशः अंतर की मात्रा बढ़ती जाती है। इन अंतरों के कारण ही भाषाविद् भाषा वैज्ञानिक आधार पर इन्हें अलग भाषा या भाषा समुदाय कहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वस्तुतः उन्हें हिंदी की बोली न कह हिंदी क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाएँ या उपभाषाएँ कहना चाहिए।

भाषा और बोली के संबंधों का एक दूसरा आधार भी है। यह सामाजिक–सांस्कृतिक आधार है। हिंदी और उर्दू भाषा वैज्ञानिक आधार पर अलग भाषाएँ नहीं हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि ये अलग भाषाएँ हैं। भारत की बांगला और बांग्लादेश की बांगला में भाषा की दृष्टि से बहुत अंतर है, फिर भी इन्हें अलग भाषाएँ नहीं कहते। ये दोनों ही रूप बांगला ही कहलाते हैं। चीनी वास्तव में एक भाषा नहीं है, बल्कि एक लिपि से जुड़ी कई भाषाओं का एक समूह है। लिपि के माध्यम से व्यक्ति दूसरी भाषा को पढ़ सकते हैं, पर समझ सकें यह आवश्यक नहीं है। बोलचाल में तो मुश्किल आती ही है। प्राचीन तमिल और आधुनिक तमिल में इतना अंतर है कि कोई व्यक्ति बिना टीका के प्राचीन तमिल को समझ नहीं सकता, लेकिन दोनों रूप 'तमिल' के नाम से एक भाषा गिने जाते हैं। यही बात चासर की अंग्रेजी और आधुनिक अंगेजी में है। लेकिन भारतीय आधुनिक भाषाओं के इसी विकासक्रम को पालि, प्राकृत, अपभ्रंश

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 22 8/18/2021 12:21:34 PM

आदि कई नाम दिए जाते हैं, जिससे लगता है कि इस भूमि में चार अलग भाषाएँ रही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषा और बोली के संदर्भ में कोई निश्चित मानदंड नहीं है। स्वीकृति या अस्वीकृति का सवाल भाषा समुदाय स्वयं ही करता है। यह माना जा सकता है हिंदी भाषा प्रदेश में 15–16 अलग–अलग भाषाएँ हैं; यह भी माना जा सकता है कि ये बोलियाँ एक भाषा के विभिन्न क्षेत्रीय रूप हैं। यह निर्णय स्वयं भाषा–भाषी समुदाय करता है, इसका कोई बाह्य आधार नहीं है।

भाषा और बोली का निर्धारण परस्पर निर्भरता के आधार पर भी होता है। मराठी भाषी क्षेत्र में वह भाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में व्यवहृत होती है, प्रदेश की राजभाषा है। हिंदी भाषी प्रदेश में भी लगभग सर्वत्र हिंदी ही शिक्षा की भाषा है, जीवन के समस्त व्यवहारों की भाषा है और व्यक्ति अपनी बोली के साथ मातृभाषावत् हिंदी का प्रयोग करता है। इस स्थिति के बावजूद अपनी–अपनी बोली का विकास एक नयी भावना है। वस्तुतः बोली बोलने वाला समुदाय बोली का विकास और संवर्द्धन करना चाहता है।

1.7 सारांश

इस इकाई में आपने देश–विदेश के विभिन्न भाषाविदों द्वारा दी गई भाषा संबंधी परिभाषाओं को पढ़ा। आपने यह भी पढ़ा कि भाषा की विवेचना तीन दृष्टियों से की जा सकती है–संप्रेषण के रूप में, सामाजिक व्यवहार के रूप में और संरचना के रूप में। संप्रेषण के घटकों को देखते हुए भाषा एक ऐसी कोड व्यवस्था है जिसके द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से मुख से निःसृत ध्वनियों के माध्यम से सामाजिक प्रयोजनों की सिद्धि के लिए संदेशों का परस्पर आदान–प्रदान करता है। सामाजिक व्यवहार के रूप में भाषा परिवर्तनशील और अनेकरूपा है और इसके तत्वों में यादृच्छिकता के गुण हैं। यह ऐसी कोड व्यवस्था है जो समाज के बीच रहकर ही सीखी जाती है।

संरचना की दृष्टि से भाषा एक ऐसी त्रिपक्षीय संरचना है जिसमें अनेक संरचक अपने–अपने प्रकार्यों के अनुसार निश्चित स्थानों पर निश्चित श्रृंखला क्रम और सोपान–क्रम से व्यवस्थित होते हैं और जिसमें यादृच्छिकता के कारण अनेक स्तरों पर संयोजन बनाने की अद्भुत क्षमता है।

1.8 शब्दावली

उत्कृष्ट	:	श्रेष्ठ
जैविक	:	जीव (जीवित प्राणी) से संबंधित
ध्वनि तरंगे	:	ध्वनि, हवा में तरंगों (लहरों) के रूप में जाती है।
निःसृत	:	निकली हुई
पैतृक	:	पिता की (विरासत में मिली)
समीचीन	:	ठीक, उचित
सिद्धि	:	प्राप्ति

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) क ख और ग

2) i) ii) iv)

3) ध्वनियाँ भाषा के उच्चरित प्रतीकों का निर्माण करती हैं। प्रतीक यादृच्छिक (समाज सापेक्ष) हैं, अर्थ के वाहक हैं। प्रतीकों के माध्यम से संप्रेषण की व्यवस्था कोड है।

4) i) सही ii) गलत iii) सही

5) i) ग ii) घ iii) क iv) ख

6) i) सामाजिक परंपरा ii) परिवर्तन iii) यादृच्छिक

7) i) अर्थ, व्याकरण, उच्चारण ii) स्थान, सोपान, क्रम।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 24 8/18/2021 12:21:34 PM

इकाई 2 : हिंदी भाषा का विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 हिंदी भाषा का विकास

 2.2.1 हिंदी का आदिकाल

 2.2.2 हिंदी का मध्यकाल

2.3 आधुनिक काल में हिंदी

 2.3.1 खड़ी बोली का विकास

 2.3.2 19वीं सदी के बाद खड़ी बोली का विकास

2.4 हिंदी और उर्दू का परस्पर संबंध

2.5 भारतेंदु युग और हिंदी

2.6 बीसवीं शताब्दी में हिंदी

2.7 सारांश

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हिंदी भाषा की विकास यात्रा और विकास की विविध धाराओं का वर्णन है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अपभ्रंश के बाद हिंदी के विकास को रेखांकित कर सकेंगे;
- खड़ी बोली हिंदी के प्रारंभिक रूप का परिचय दे सकेंगे;
- दकनी (या दक्खिनी) हिंदी के विकास क्रम का निरूपण कर सकेंगे;
- हिंदी को बोलियों के साहित्य और स्वरूप का परिचय दे सकेंगे;
- आधुनिक युग में खड़ी बोली के विकास को विवेचित कर सकेंगे; और
- देश की भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति स्पष्ट कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

अपभ्रंश भाषा की समाप्ति 10वीं शताब्दी के अंत तक हो जाती है और 11वीं शताब्दी के प्रारंभ से हिंदी भाषा के विकास की कहानी आरंभ होती है। 11वीं शती से अपनी यात्रा आरंभ कर आज हिंदी हमारे सामने जिस रूप में आ खड़ी हुई है उससे तो हम लोग परिचित हैं। आज के इस रूप तक पहुँचने में हिंदी की इस यात्रा में जो–जो परिवर्तन हुए हैं उन सबकी चर्चा इस इकाई में की जाएगी। प्रारंभ में हिंदी का वह रूप जो अपभ्रंश से विकसित होकर सामने आया वह प्राकृत, अपभ्रंश की शब्दावली से ओतप्रोत था। धीरे–धीरे हिंदी के इस रूप में विकास हुआ और आगे चलकर उसकी बोलियाँ विकसित हुईं। मुस्लिम शासकों के भारत में आने के बाद उसमें अरबी–फारसी का पुट आया और हिंदी की एक शैली ''उर्दू'' के नाम से विकसित हुई। इसके

अतिरिक्त इन्हीं मुस्लिम शासकों के दक्षिण भारत में पहुँचने पर वहाँ भी दक्षिण की भाषाओं के संपर्क से हिंदी ''दक्खिनी हिंदी'' के रूप में विकसित हुई। हम इन सभी विकास के सोपानों का विस्तार से इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

हिंदी भाषा के विकास में हिंदी साहित्य का अभूतपूर्व योगदान रहा है। हिंदी भाषा के विकास की हमें दो सरणियाँ दिखाई देती हैं। एक है हिंदी के गद्य साहित्य के विकास की और दूसरी है हिंदी के बोलचाल के स्वरूप की। हिंदी के इन दोनों ही रूपों का किस प्रकार विकास हुआ इस इकाई में इस पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी भाषा को भारतीय संविधान में राजभाषा का दर्जा मिला तथा वह आज विभिन्न प्रयोजनों का सशक्त माध्यम ही नहीं है, बल्कि सारे देश में उसका अस्तित्व संपर्क भाषा के रूप में मान्य हुआ है। इस इकाई में आपको इसकी भी जानकारी दी जाएगी।

2.2 हिंदी भाषा का विकास

संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश से होता हुआ हिंदी का विकास हुआ है। अपभ्रंश और हिंदी के मध्य भी एक भाषा की स्थिति बताई जाती है। जिसे विद्वानों ने अवहट्ट की संज्ञा प्रदान की है। इसी को कुछ लोग प्राचीन हिंदी भी कहते हैं। वस्तुतः यह माना जाता है कि 1000 ई. के आसपास प्रयाग तथा काशी तक बोली जाने वाली शौरसेनी और मागधी अपभ्रंशों से ही हिंदी तथा उसके सभी रूपों का जन्म हुआ है। प्राचीन हिंदी पर प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 16वीं शताब्दी तक पहुँचते–पहुँचते हिंदी से प्राकृत–अपभ्रंश के प्रभाव तो समाप्त हो जाते हैं, पर अब उसकी अपनी प्रमुख बोलियों के साथ एक ऐसा रूप भी खड़ा हो जाता है जो अरबी–फारसी की शब्दावली से युक्त है। 19वीं शताब्दी में भारत की राजसत्ता में फिर परिवर्तन होता है। अंग्रेजी राज की स्थापना होती है और यहाँ से समुचित ढंग से खड़ी बोली हिंदी का विकास आरंभ होता है।

इस प्रकार हिंदी भाषा के विकास की कहानी 1000 ई. के आसपास शुरू होती है। हम इन लगभग 1000 वर्षों के इतिहास का अध्ययन निम्नलिखित तीन चरणों में विभाजित कर करेंगे–

(1) हिंदी का आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई. तक)

(2) हिंदी का मध्यकाल (1500 ई. से 1800 ई. तक)

(3) हिंदी का आधुनिक काल (1800 ई. से आज तक)

यहाँ एक बात हम अवश्य कहना चाहेंगे कि आरंभिक हिंदी भाषा का स्वरूप समझने के लिए हमें उस समय के साहित्य को ही आधार बनाना होगा और तब हमें हिंदी भाषा का आदिकाल भी वही मानना होगा जो हिंदी साहित्य के इतिहास का आदिकाल है।

2.2.1 हिंदी का आदिकाल

आदिकाल के पाँच सौ वर्षों में प्राचीन हिंदी के अनेक रूप सामने आ गए। इन्हीं रूपों में से एक रूप ''डिंगल'' कहलाया। ''डिंगल'' हिंदी का वह रूप है जिसका संबंध राजस्थानी साहित्य से है। डिंगल साहित्य की दो प्रमुख रचनाओं का उल्लेख इतिहासकारों ने किया है। एक है–श्रीधर कृत ''रणमल छंद'' (1400 ई. के आसपास) तथा कल्लौल कवि द्वारा रचित ''ढोला मारूरा दूहा'' (1473 ई.)। हिंदी भाषा का एक दूसरा रूप विकसित हुआ जिसका नाम ''पिंगल'' पड़ा। पिंगल वस्तुतः मध्य देश की साहित्यिक ब्रजभाषा का नाम था। इस काल में हिंदी का एक तीसरा रूप और उपलब्ध होता है जिसे कुछ विद्वानों ने ''हिन्दवी'' की संज्ञा दी है। हिंदी का यह रूप

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 26 8/18/2021 12:21:35 PM

हमें तेरहवीं शताब्दी के आसपास अमीर खुसरो के साहित्य में दिखाई देता है। यह भाषा डिंगल या अपभ्रंश मिश्रित भाषा के रूप से भिन्न है। वास्तव में यह भाषा का वह रूप है जो जनसामान्य के बीच उस समय प्रचलित रहा होगा। आदिकालीन हिंदी साहित्य के विकास में उस समय उपलब्ध धार्मिक साहित्य– जैन, बौद्ध, नाथ, सिद्ध आदि का बड़ा योगदान है। जैन साहित्य की भाषा हिंदी के आदिकालीन स्वरूप का परिचय देती है। यह भाषा अपभ्रंश से प्रभावित है। जैन कवि सोमप्रभ सूरि की कविता का एक उदाहरण देखिए–

रावण जायउ जहि दियहि दह मुंह एक सरीरू।

चिंतावयि तइयिय जणणि कवजु पियावएँ खीरू।।

(जिस दिन दस मुँह और एक शरीर वाला रावण पैदा हुआ, उस समय उसकी जननी को यह चिंता हुई कि दूध किसमें पिलाऊँ)।

प्राचीन हिंदी के अंतर्गत बौद्ध और सिद्धों की कविताओं की भाषा में पश्चिमी एवं पूर्वी अपभ्रंश के शब्दों का मिला–जुला रूप देखने को मिलता है। बौद्धों की एक शाखा थी वज्रयान। इसी शाखा से संबंधित गोरखनाथ जी ने नाथपंथ की स्थापना की थी। वास्तव में नाथपंथ अपने से पूर्व के सिद्ध युग तथा आगामी संत युग के बीच की कड़ी है। संत साहित्य के प्रर्वतक कबीरदास पर नाथपंथियों का गहरा प्रभाव था। नाथपंथी एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे और मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। नाथपंथियों की भाषा प्राचीन पश्चिमी हिंदी की बोलियों के मिश्रित रूप में थी। गोरखनाथ की भाषा का एक उदाहरण देखिए–

हसिबा बोलिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।

हसिबा बोलिबा गाइबा गीत। ढिढ करि राषि अपना चीत।

(हँसो, खेलो, रँगरेली मनाओ (किंतु) काम–क्रोध का संग कभी न करो। हँसो, खेलो, गीत गाओ (पर) अपने चित्त को दृढ़ करो)

हिंदी के प्राचीन रूप को विकास के चरण की ओर आगे ले जाने में आदिकालीन रासो साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यों तो इतिहासकारों ने अनेक रासो ग्रंथों का उल्लेख किया है परंतु इनमें बीसलदेव रासो तथा पृथ्वीराज रासो विशेष महत्व की रचनाएँ हैं। बीसलदेव रासो की भाषा में डिंगल तथा पिंगल दोनों ही भाषाओं के रूप मिलते हैं परंतु पृथ्वीराज रासो की भाषा में जगह–जगह तरह–तरह के भाषा रूप उपलब्ध होते हैं। कहीं उसमें हिंदी, कहीं राजस्थानी मिश्रित हिंदी, कहीं ब्रजभाषा के रूप, कहीं विकृत अपभ्रंश के रूप दिखाई देते हैं। अधिकांश विद्वानों ने तो उसकी भाषा पिंगल ही बताई है जो ब्रजभाषा का ही प्राचीन रूप है। पृथ्वीराज रासो की भाषा का एक नमूना देखिए–

छत्तियं हथ्थ धरंत, नयन्नन चाहिएउ

(पृथ्वीराज की) छाती पर (जैसे ही दासी ने) हाथ रखा, (तो उसने) नेत्र खोलकर (उसकी ओर) देखा।

आदिकालीन साहित्य में जगनिक के आल्हाखंड का भी विशेष स्थान है। जगनिक का समय 1173 ई. बताया गया है और माना जाता है कि वे चंदवरदाई के समकालीन थे। हिंदी भाषी प्रदेशों में आल्हा का गान गाँव–गाँव में प्रचलित रहा है। इस ग्रंथ में देश के दो प्रसिद्ध वीरों–आल्हा तथा ऊदल की वीरता तथा उनके युद्धों का वर्णन है। जगनिक की भाषा का एक उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है–

पैदल के संग पैदल भिड़िगै और असवारण से असवार।

हौदा के संग हौदा मिल गये, हाथिन अड़ौ दाँते से दाँत।।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 27 8/18/2021 12:21:35 PM

पीछे हमने तेरहवीं शताब्दी के आसपास विकसित हिंदी के एक अन्य रूप ''हिन्दवी'' की चर्चा की थी जिसकी झलक हमें अमीर खुसरो के साहित्य में दिखाई देती है। खुसरो ने मनोरंजन करने वाले साहित्य की रचना की है उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, ढकोसले आदि बड़े लोकप्रिय हुए जिनमें हिंदी के सरल, स्वाभाविक और बोलचाल की भाषा के रूप के दर्शन होते हैं। कुछ उदाहरण आप देख सकते हैं–

दो/सुखन

सितार क्यों न बजा
औरत क्यों न नहाई – परदा न था

पहेली

एक थाल मोती से भरा
सब के सिर पर औंधा धरा।
थाली सब के सिर पर फिरे
मोती उससे एक न गिरे।।

हिंदी ज़बान में रचित लोरिक और चंदा के प्रेम का मसनवी रूप हमें मुल्ला दाऊद के 'चंदायन' नामक ग्रंथ में भी देखने को मिलता है। मुल्ला दाऊद की यह रचना सूफ़ी काव्य परंपरा की पहली रचना मानी जाती है। उक्त काव्य की रचना 14वीं शताब्दी में हो चुकी थी, ऐसा इतिहासकारों ने माना है। चंदायन की भाषा में अवधी, भोजपुरी, ब्रज तथा खड़ी बोली का मिश्रण दिखाई देता है। एक उदाहरण देखिए–

''जेहि हिय चोट लागि सो जानी।
कई लोरिक, कई चंदा रानी।
सुखी न जान, दुख काहू केरा।
जानइ सोई परई जेहि बेरा।
पेम आँच जेहि हियरे लागइ।
नींद जाइ तपि तपि निसि जागइ।
सात सागर जल बरिसहि आई।
पेम आगि कैसेहुं न बुझाई।''

चौदहवीं शताब्दी में जब मुसलमान शासकों ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण करना आरंभ कर दिया था, तब इन शासकों के साथ मौलवी, व्यापारी आदि भी उत्तर भारत से दक्षिण भारत में गए और इन लोगों के साथ गई वह हिंदी भाषा जो उस समय राजधानी के आसपास बोली समझी जाती थी। दक्षिण भारत के निवासियों के साथ व्यवहार एवं जनसंपर्क के लिए अब एक ऐसा भाषा रूप विकसित होने लगा जिसमें दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्द भी शामिल हो गए। धीरे–धीरे भाषा के इस रूप ने स्थिरता प्राप्त की और यही आगे चलकर ''दकिनी'' या ''दक्खिनी हिंदी'' के नाम से जानी गई। यह खड़ी बोली का वह रूप है जिसमें एक ओर ब्रजभाषा तथा फारसी के शब्दों का बाहुल्य है तो दूसरी ओर दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों का।

2.2.2 हिंदी का मध्यकाल

हिंदी के मध्यकाल का समय विद्वानों ने 1500 ई. से 1800 ई. तक लगभग 300 वर्षों का निर्धारित किया है। इस समय तक आते–आते अब हमें हिंदी के स्वरूप में स्थिरता के दर्शन होते हैं और वह आत्मनिर्भर होने लगती है। अपभ्रंश के जो रूप

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 28 8/18/2021 12:21:35 PM

प्राचीन हिंदी में चले आए थे वे इस समय तक प्रायः लुप्त हो जाते हैं। हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ–ब्रज, अवधी और खड़ी बोली भी अब अपना अस्तित्व बना लेती हैं और विकसित अवस्था में दिखाई देती हैं। यद्‌यपि साहित्य के क्षेत्र में हमें ब्रज तथा अवधी की ही प्रधानता मिलती है पर बोलचाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली का वर्चस्व बना रहता है।

उत्तर भारत में इस काल के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा तथा अवधी को अपने साहित्य की भाषा बनाया। इस काल की महत्वपूर्ण घटना है दक्षिण भारत में जन्मी ''भक्ति'' का उत्तर भारत में आना। भक्त कवियों ने अपनी स्निग्ध वाणी द्‌वारा जनता के हृदय में भक्ति का संचार किया। इस दृष्टि से संतों, सूफ़ियों तथा वैष्णव भक्तों का इस क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान रहा है। जायसी, सूर, तुलसी, मीरा और कबीर भक्ति काल के वे चमकते सितारे हैं, जिन्होंने अपनी वाणी द्वारा ब्रज तथा अवधी का परिमार्जन एवं परिष्कार कर संपूर्ण विकास किया। सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक तो अनेक धार्मिक सुधारक जैसे दादू, गुरु गोविंद सिंह, प्राणनाथ आदि भी सामने आ जाते हैं जो अपनी वाणी से एक ओर जनता के मन को शांति पहुँचाते हैं तथा दूसरी ओर हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

जहाँ तक हिंदी के रीतिकालीन साहित्य का प्रश्न है, इस युग के संपूर्ण साहित्य पर प्रधानतः ब्रजभाषा का ही आधिपत्य रहा। यहाँ आकर ब्रजभाषा अपने कलात्मक वैभव को प्राप्त करती है। बिहारी, मतिराम, घनानंद, देव, भूषण आदि रीतिकाल की वे हस्तियाँ हैं जिन्होंने ब्रजभाषा में काव्यकला की दृष्टि से उत्तम साहित्य प्रस्तुत किया।

लेकिन इस काल की एक अन्य साहित्यिक दृष्टि से बड़े ही महत्व की घटना यह है कि हमें इस काल में खड़ी बोली गद्‌य के विकास का पहला चरण दृष्टिगोचर होता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में, ... खड़ी बोली गद्‌य के विकास का प्रथम सोपान, जिसका सूत्रपात 1500 ई. के लगभग प्रारंभ में किसी अज्ञात कवि द्‌वारा रचित सूफ़ी काव्य ''कुतुबशतक'' पर लिखे वार्तिक तिलक, औरंगजेब के लगभग समकालीन स्वामी प्राणनाथ और उनके शिष्यों की रचनाओं में, 1742 में रामप्रसाद निरंजनी के 'भाषा योग वशिष्ठ' और 1762 में दौलतराम के जैन पद्‌मपुराण से होता है।''

इन सबके विषय में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

2.3 आधुनिक काल में हिंदी

आधुनिक काल तक आते–आते (19वीं सदी) हिंदी लगभग पूरी तरह विकसित हो जाती है। यह वह युग है जब हिंदी साहित्य में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रवेश मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि 19वीं सदी का आरंभिक युग खड़ी बोली के विकास को लेकर आरंभ होता है। ब्रजभाषा जो एक लंबी अवधि तक हिंदी साहित्य के पटल पर छाई हुई थी, उसका प्रभाव लुप्त हो जाता है। 19वीं सदी के आरंभ में हिंदी काव्य की भाषा तो ब्रजभाषा रहती है लेकिन गद्‌य साहित्य का लेखन खड़ी बोली में आरंभ हो जाता है। 1920–25 के आसपास पहुँचकर धीरे–धीरे हिंदी कविता भी खड़ी बोली में होने लगती है और ब्रजभाषा अब हिंदी की एक बोली मात्र रह जाती है।

खड़ी बोली का विकास ही सही अर्थों में हिंदी का विकास है। अतः इसका विस्तार से अध्ययन हम आगे करेंगे।

2.3.1 खड़ी बोली का विकास

खड़ी बोली का समुचित विकास तो शुरू होता है आधुनिक काल के आरंभ से ही, परंतु खड़ी बोली में बोलचाल तथा साहित्य लिखने की परंपरा काफी पुरानी है। यह

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 29 8/18/2021 12:21:35 PM

19वीं शताब्दी की देन नहीं है। खड़ी बोली के संपूर्ण इतिहास एवं उसके विकास को समझने के लिए हम उसका अध्ययन दो वर्गों में विभाजित करना चाहेंगे। पहला है 19वीं सदी का इतिहास तथा दूसरा 19वीं सदी के बाद का इतिहास।

19वीं सदी का पूर्वार्द्ध

19वीं सदी के पहले खड़ी बोली गद्य साहित्य के संकेत तो हमें बराबर मिलते रहे हैं परन्तु उस भाषा का स्वरूप आज की खड़ी बोली जैसा नहीं था। ग्यारहवीं सदी का एक काव्य ग्रंथ है 'राउलवेल'। इस ग्रंथ में हमें खड़ी बोली का प्राचीनतम रूप दिखाई देता है। यह भाषा का वही रूप है जो दिल्ली, मेरठ तथा पंजाब के आसपास बोली जाती थी। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले हिंदी साहित्य में कविता की प्रधानता थी, गद्य की नहीं। यह बात आप लोग अच्छी तरह जानते हैं और कविता में भी हमें खड़ी बोली के संकेत मात्र ही प्राप्त होते हैं। गोरखनाथ जी द्वारा चलाए गए नाथपंथ की हम चर्चा कर चुके हैं। गोरखबानी तथा नाथ सिद्धों की बानियों में हमें जगह–जगह खड़ी बोली रूपों के संकेत प्राप्त होने लगते हैं। 16वीं सदी के आरंभ का एक सूफ़ी ग्रंथ 'कुतुबशतक' प्राप्त होता है। इसके कवि कौन हैं यह पता नहीं चल सका है। इस गद्य के वार्तिक तिलक की भाषा दकिनी जैसी दिखाई देती है। उदहारण के लिए–

''तब ग्यारह सौ आदमी कुतुबुद्दीन नवल पास रषे तिसमें पंच सौ बूढ़ी। तिन्हौं के हाथ पंच सौ सोवन लठी। छिह सै छड़ीदार सोने की छड़ी लिए रहौ। तिन्हौं को पातिस्याह हुकुम कीया कि वारीया बेलिया नैना विषलावों। पै साहिजाय अनंत जणै न पावै। ग्यारह सै आदमी उसी भंझति रषे ....।''

प्रणामी संप्रदाय की स्थापना स्वामी प्राणनाथ ने की थी। स्वामी जी की 1678 ई. में लिखी गई एक गद्य रचना प्राप्त होती है जिसका नाम है– ''शेखमीराजी का किस्सा''। इस ग्रंथ की भाषा से तत्कालीन हिंदी के स्वरूप का पता चलाया जा सकता है। यों तो प्राणनाथ जी की मातृभाषा सिंधी तथा गुजराती रही थी और वे अपनी रचनाएँ गुजराती में किया करते थे। एक बार वे उत्तर भारत आए और फिर उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में रचनाएँ करना आरंभ कर दिया। स्वयं प्रणामीजी ने इस भाषा का नाम ''हिन्दुस्तानी'' दिया है। उन्होंने 'सनंध' नामक पुस्तक की रचना की जिसे वे औरंगजेब को भेजना चाहते थे। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है–

बिना हिसाबे बोलियाँ, मिले सरल महान। सबसे सुगम जानके, कहूँगो हिन्दुस्तान।

बड़ी भाषा ये ही भली, जो सब में जाहिर। करने पाक सबन को, अंतर माहे बाहेर।।

(प्राणनाथ जी जानते थे कि संसार में तो न जाने कितनी (बेहिसाब) भाषाएँ हैं, लेकिन सबसे सुगम 'हिन्दुस्तान' (हिन्दुस्तानी) ही है। यह भाषा ही सबसे बड़ी भाषा है जो सरल है, महान है और सब लोगों के अंतर एवं बाह्य को पाक करने वाली है।)

प्रणामी साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलता है। इनका गद्य साहित्य तो खड़ी बोली में ही लिखा गया है। डॉ. वार्ष्णेय के अनुसार ''यह गद्य साहित्य लगभग 1650–1680 ई. के मध्य लिखा गया है। इस दृष्टि से यह उत्तरी भारत में लिखित उर्दू के गद्य साहित्य से लगभग 100 वर्ष पुराना है। उर्दू गद्य की प्रथम रचना 'दहमजलिस या मरबल कथा' का रचनाकाल बाद का है। गद्य साहित्य से यह सिद्ध हो जाता है कि खड़ी बोली गद्य साहित्य फोर्ट विलियम कॉलेज (1800 ई.) से लगभग 150 वर्ष पूर्व से मिलने लगता है।'

स्वामी प्राणनाथ जी की गद्य रचना 'शेख मीराजी का किस्सा' में हिन्दू–मुस्लिम समस्याओं पर विचार किया गया है। इस गद्य की भाषा का नमूना देखकर आप उस समय की खड़ी बोली के स्वरूप के बारे में जान सकते हैं। उदाहरण–

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 30 8/18/2021 12:21:35 PM

''तब उलमाहों ने जवाब दिया कि आखिरी जमाने में यानि क्यामत के दोरे में ज़ाहिर होयेंगे। तब हम मुसलमानों ने पूछा के आखेर कब होयेगी। तब उन उलमाहों ने कहा कि आखर के दिन आए ....।''

खड़ी बोली की यह धारा हमें महाराष्ट्र के संत कवियों में देखने को मिलती है। नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि संतों की वाणी में विशुद्ध बोली के रूपों की झलक हमें प्राप्त होने लगती है। वैसे तो कबीर की भाषा को लोगों ने विभिन्न स्थानों की शब्दावली प्राप्त होने के कारण ''खिचड़ी भाषा' कह दिया था, परंतु कबीर स्वयं इस बात से परिचित रहे हैं कि वे अपनी कविता उस भाखा (भाषा) में कर रहे हैं जो उस समय जन मानस में प्रचलित थी। संस्कृत भाषा तो उस समय के संभ्रांत वर्ग की भाषा रही होगी, जब कि ''भाखा'' का संबंध जनसामान्य से था। कबीर लिखते हैं–

''संसकिरत कबिरा कूप जल, भाखा बहता नीर''

लेकिन महाराष्ट्र के इन संतों के काव्य में तो खड़ी बोली के रूपों की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। नामदेव के पद की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए–

पांडे तुम्हारा महादेव, धौल बदल चढ्या आवत देखा था।

मोदी के घर खाना पाका, बाका लड़का मार्या था।।

जहाँ तक मध्यकालीन राम और कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रश्न है वह अवध एवं ब्रज प्रदेशों से राम और कृष्ण की जन्मभूमि होने कारण संबद्ध रहा। यही कारण है कि राम साहित्य की रचना अवधी में तथा कृष्ण साहित्य की रचना ब्रजभाषा में होती रही। फिर भी अनेक कवियों के साहित्य में जाने अनजाने लोक प्रचलित भाषा खड़ी बोली के तत्व भी आ गए हैं। इस संदर्भ में ब्रजभाषा के मर्मज्ञ महाकवि सूरदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–

हे दैया मतवाला योगी, द्वारे तेरे आया है।

देखो मैया तैरा बालक, जिन मोय चटक लगाया है।।

अगर चंद नाहटा ने उल्लेख किया है कि 16वीं सदी की 'नव बोली छंद' नामक एक रचना प्राप्त होती है जिसमें जैसलमेरी, गुजराती, मुलतानी तथा दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली बोली के नमूने प्राप्त होते हैं। इनमें दिल्ली की बोली के उदाहरणों से पता चलता है कि यह उस समय की प्रचलित भाषा रही होगी। गंग नामक कवि की एक रचना है जिसका नाम है ''चंद छंद बरनन की महिमा''। यह कवि अकबर के शासन काल में हुआ था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस पुस्तक की भाषा को शिष्ट समाज में प्रयुक्त होने वाली भाषा की संज्ञा प्रदान की है।

भक्तिकाल के उपरांत रीतिकाल तो दरबारी वातावरण में पल्लवित हुआ। रीतिकालीन कविता की भाषा ब्रजभाषा ही है परंतु यदि बारीकी से देखा जाए तो भक्तिकाल की ब्रजभाषा तथा रीतिकालीन ब्रजभाषा में कुछ अंतर देखे जा सकते हैं। रीतिकालीन ब्रजभाषा में दरबारी आग्रह के कारण खड़ी बोली के तत्वों की झलक अधिक दिखाई देती है। रहीम, आलम, घनानंद, गंग, ग्वाल, रघुनाथ आदि ऐसे ही कवि हैं। इनमें घनानंद की 'विरह लीला' और रघुनाथ की 'इश्क महोत्सव' ऐसी कृतियाँ हैं जो विशुद्ध खड़ी बोली में लिखी गई हैं।

18वीं शताब्दी में महामहोपाध्याय वररुचि ने 'पत्र कौमुदी' नामक पुस्तक की रचना की थी। इस पुस्तक के माध्यम से वररुचि ने पत्र व्यवहार की शिक्षा देने का प्रयास किया है। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि इस पुस्तक में पाँच पत्रों के उदाहरण दिए गए हैं जिनकी भाषा हिन्दुस्तानी है। इस प्रकार 18वीं सदी के आरंभ से ही उत्तर भारत की इस भाषा का नाम हिन्दुस्तानी चल पड़ा था। 18वीं सदी में ही

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 31 8/18/2021 12:21:35 PM

रामप्रसाद निरंजनी ने एक ग्रंथ की रचना की थी जिसका नाम है 'भाषा योग वशिष्ठ'। सही मायनों में यह खड़ी बोली गद्य की पुस्तक समझी जानी चाहिए। इस पुस्तक की भाषा के बारे में चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि लोगों को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि खड़ी बोली गद्य का विकास अंग्रेजों की प्रेरणा से हुआ था बल्कि खड़ी बोली गद्य का विकास तो उससे पहले से ही हो गया था। निरंजनी जी की भाषा का एक नमूना आप स्वयं देख सकते हैं–

''हे भगवान आप सब तत्वों और सब शास्त्रों के जानन हारे हौ, मेरे एक संदेह को दूर करौ। मोक्ष का कारण कर्म है कि ज्ञान है अथवा दोनों है, समझाय के कहो।''

निरंजनी के साथ–साथ दौलतराम का ग्रंथ ''पद्म पुराण'' भी हमें खड़ी बोली गद्य की शुरूआत के संकेत देता है। पद्म पुराण की भाषा का रूप इस प्रकार का है–

''जम्बू द्वीप के भारत क्षेत्र विषै मगध नामा देश अति सुंदर है जहाँ पुण्याधिकारी बसे हैं, इन्द्रलोक समान सदा भोगोपभोग करैं हैं और भूमि विषै सांठेन के बाड़े शोभायमान हैं।''

उधर दक्षिण भारत में तो उत्तर भारत की तुलना में गद्य लेखन की परंपरा और भी अधिक व्यवस्थित ढंग से विकसित होती हुई देखी जा सकती है। हम पीछे बता भी आए हैं कि जैसे–जैसे दक्षिण भारत में मुसलमान शासकों का राज्य स्थापित होता चला गया वैसे–वैसे दिल्ली और उसके आसपास बोली जाने वाली हिंदी या हिंदुस्तानी भाषा वहाँ फैलती चली गई। डॉ. चटर्जी ने लिखा है कि 14वीं शताब्दी के अंत तक दक्षिण के मुस्लिम राज्य उत्तर की भाषा के केंद्र बन चुके थे। ये राज्य थे बहमनी साम्राज्य तथा उसके तत्कालीन पाँच भाग–बरार, बीदर, गोलकुंडा, अहमदनगर और बीजापुर। धीरे–धीरे 17वीं शताब्दी तक इस भाषा ने वहाँ की साहित्यिक भाषा का दरजा ले लिया और यह वहाँ की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। यही भाषा विद्वानों द्वारा दकनी/दकिनी या दक्खिनी के नाम से जानी गई।

इस दकनी के भी बोलचाल के स्तर पर अनेक रूप दिखाई देते हैं। औरंगाबाद और उसके आसपास की भाषा में मराठी के लक्षण अधिक हैं, गुलबर्गा और बीजापुर की भाषा में कन्नड़ का प्रभाव अधिक है; जबकि हैदराबाद की भाषा में तेलुगु भाषा का पुट अधिक मिलता है। लेकिन जहाँ तक साहित्यिक दकिनी का प्रश्न है इसमें अधिक स्थिरता एवं एकरूपता है।

दकनी में गद्य एवं पद्य दोनों में साहित्य लिखा गया है। ख़्वाजा बंदानवाज़ गेसूदराज हुसैनी (1318–1422 ई.) इसके पहले कवि माने जाते हैं। अब्दुस्समद ने 1553 ई. में एक गद्य की पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'तफसीरे बहावी'। हुसैनी के ही समकालीन शाहमीरान की 'मरकुबुल कलूब' तथा शाहबुरहाबुद्दीन की 'कलमतुल हाकायत' भी गद्य साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। वजही जो एक बहुत बच्छे कवि भी थे, उनकी 'सबरस' नामक पुस्तक (1620 ई.) आधुनिक हिंदी के बहुत निकट की रचना है।

2.3.2 19वीं सदी के बाद खड़ी बोली का विकास

उन्नीसवीं शताब्दी तक पहुँचते–पहुँचते भारत पर अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया था। अब उनके लिए यह आवश्यकता थी कि वे अपना राजकाज सुचारू रूप से चलाने के लिए यहाँ की भाषा सीखें। उस समय उनके समक्ष हिंदी की दो धाराएँ थीं– एक तो था हिंदी के बोलचाल का रूप तथा दूसरा रूप था जो मुस्लिम दरबारों से होता हुआ आया था। यह वह रूप था जिसका प्रयोग मुसलमानों द्वारा होता था और जिसका नाम उर्दू पड़ा। पर दैनिक कार्यों के लिए बोलचाल की भाषा को ही

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 32 8/18/2021 12:21:35 PM

आधार बनाया जा सकता था। सामान्य प्रशासन के लिए जिस भाषा की आवश्यकता थी उसके लिए जनसामान्य के बीच प्रयुक्त होने वाली खड़ी बोली को ही लिया जा सकता था। इस प्रकार खड़ी बोली हिंदी को स्वीकृति मिली और धीरे–धीरे उसका विकास हुआ। इसका एक कारण यह भी था कि बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी का जिन सामंतों से पहले पहल संपर्क हुआ उनके दरबारों में खड़ी बोली का ही प्रचलन था। साथ ही इधर अंग्रेज सरकार ने अपनी सुविधाओं के लिए मुद्रण यंत्र स्थापित किए तो खड़ी बोली में अंग्रेजी से अनूदित सामग्री प्रकाश में आने लगी। इस प्रकार इस सदी के आरंभ में ही खड़ी बोली हिंदी गद्य की आधारभूत भाषा बन गई।

लेकिन अभी भी खड़ी बोली का व्यवस्थित ढंग से विकास आरंभ नहीं हो पाया था। यह कार्य हुआ कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद। वस्तुतः फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के पीछे भी अंग्रेजों का अपना हित था। लॉर्ड वेलेज़ली अंग्रेज अफ़सरों को भाषा की शिक्षा दिलाना चाहते थे। इसके लिए जॉन गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में 'ओरिएंटल सेमिनरी' नामक संस्था की स्थापना की गई और आगे चल कर यही संस्था फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के नाम से जानी गई। गिलक्राइस्ट की अपनी मान्यता थी कि हिन्दुस्तानी की तीन शैलियाँ हैं–1) दरबारी फ़ारसी 2) हिन्दुस्तानी शैली या उर्दू तथा 3) हिंदी या गँवारू शैली। गिलक्राइस्ट ने इन तीनों शैलियों में से दूसरी शैली अर्थात् उर्दू को महत्व दिया। उन्होंने जिसे उर्दू कहा था वह खड़ी बोली का ही रूप था। 1802 ई. में इस कॉलेज में भाषा मुंशी के पद पर लल्लू जी लाल की नियुक्ति की गई और इस कॉलेज के मंच से अनेक पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित की गईं जिनमें 'सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल पचीसी', 'शकुन्तला' नाटक आदि उल्लेखनीय हैं। गिलक्राइस्ट ने स्वयं भी दो पुस्तकें 'डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी' (1787–90) तथा 'हिन्दुस्तानी व्याकरण' की रचना की। यों तो फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का पूरा माहौल उर्दू का ही था, पर लल्लूलाल ब्रजभाषा से प्रभावित खड़ी बोली में साहित्य लिखा करते थे। इसी संस्था में एक दूसरे विद्वान थे सदल मिश्र। वे भी हिंदी खड़ी बोली में साहित्य लेखन करते थे, परंतु उनकी खड़ी बोली पर पूर्वी हिंदी का पुट अधिक परिलक्षित होता है। उसी समय फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर रहकर स्वतंत्र लेखन करने वालों में दो विद्वानों के कार्य इस दिशा में बड़े महत्व के हैं। मुंशी सदासुख लाल नियाज ने विष्णु पुराण के एक प्रसंग पर ग्रंथ लिखा था और मुंशी इंशा अल्ला खाँ की प्रसिद्ध कृति 'रानी केतकी की कहानी' उसी समय प्रकाशित होकर सामने आई थी। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय खड़ी बोली गद्य के विकास को इन चारों ही महानुभावों– लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, सदासुखलाल तथा इंशा अल्ला खाँ का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ।

इन चारों सज्जनों में मुंशी सदासुखलाल की भाषा ही टकसाली भाषा है क्योंकि यह भाषा का वह रूप है, जो फोर्ट विलियम कॉलेज के परिवेश के बाहर रहकर विकसित हुआ। यही वह रूप था जो आम जनता के बीच परस्पर व्यवहार में लाया जाता था। इस भाषा रूप का एक नमूना देखिए–

''इसे जान गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए, जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरंत ही ब्राह्मण से चांडाल होता है ....।''

इतिहास को हमने पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की व्याकरणिक विशेषताओं के संदर्भ में देखा।

मुंशी सदासुख लाल की भाषा संस्कृत शब्दों से युक्त खड़ी बोली है। एक अन्य उदाहरण और देखिए।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 33 8/18/2021 12:21:35 PM

''विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसकी मनोवृत्ति है, वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और असत्य छिपाइए।''

हिंदी गद्य के विकास में मुंशी सदासुखलाल के बाद दूसरा उतने ही सम्मान से स्मरण किया जाने वाला नाम है मुंशी इंशा अल्ला खाँ का। आपका गद्य भी सदासुखलाल की तरह फोर्ट विलियम कॉलेज के परिवेश से बाहर रहकर विकसित हुआ। मुंशी जी की सर्वप्रसिद्ध रचना जिसे हिंदी साहित्य के इतिहास में हिंदी की प्रथम कहानी होने का गौरव प्राप्त है, ''रानी केतकी की कहानी'' है। मुंशी जी की भाषा में सहजता, आत्मीयता एवं घरेलूपन के दर्शन होते हैं। देखिए उनकी भाषा का एक नमूना–

''तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं है। जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो मुआ निगोड़ा भूत, मुछंदर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवाकर छिनवा लूँगी।''

लल्लूलाल का रचनाकाल भी मुंशी इंशा अल्ला के आसपास का ही है। लल्लू जी लाल ने यों तो अनेक पुस्तकों की रचना की थी जैसे–राजनीति', 'ब्रजभाषा व्याकरण', 'सभा विलास', 'लाल चंद्रिका' आदि, किंतु उनको जो प्रसिद्धि मिली थी वह 'प्रेम सागर' के कारण थी। प्रेमसागर में भागवत के दशम् स्कंध की कहानी को लिया गया है। उक्त ग्रंथ की रचना में लेखक ने अरबी–फ़ारसी के शब्दों को सायास न आने देने की चेष्टा की है अतः इसके कारण उनकी भाषा में वह सहजता जो इंशा अल्ला खाँ की भाषा में दिखाई देती है, लुप्त हो गई है। यहाँ स्वाभाविकता के स्थान पर पांडित्य प्रदर्शन अधिक झलकता है। 'प्रेम सागर' से उनकी भाषा का एक उदाहरण आप लोग देख सकते हैं–

''महाराज जब ऐसे समझाय बुझाय अक्रूरजी ने कुंती से कहा तब वह सोच समझ चुप हो रही और उनकी कुशल पूछ बोली, कहो अक्रूरजी, हमारे माता–पिता और भाई वासुदेव जी कुटुम्ब समेत भले हैं और श्री कृष्ण, बलराम कभी भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव अपने इन पाँच भाइयों की सुध करते हैं?''

लल्लूलाल के साथ सदल मिश्र का नाम भी खड़ी बोली के विकास से जुड़ा है क्योंकि वे भी फोर्ट विलियम कॉलेज के परिवेश में ही रचनाएँ लिख रहे थे। सदल मिश्र की प्रमुख रचनाओं में 'नासिकेतोपाख्यान' तथा 'आध्यात्म रामायण' को काफी प्रसिद्धि मिली। सदल मिश्र की भाषा लल्लूलाल की तुलना में अधिक परिष्कृत है। उनकी भाषा पर ब्रजभाषा और पूर्वी बोली का प्रभाव है परंतु फिर भी यह वही भाषा है जो दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होती थी। 'नासिकेतोपाख्यान' से उद्धृत निम्नलिखित उदाहरण देखिए–

''यह सुनते ही राजा चिहुँक उठे। एक क्षण तो ईश्वर का ध्यान किया, फिर बोले महारानी! शीघ्र कहो क्या ऐसा अनर्थ हुआ कि जिससे इतनी घबरा रही हो मैंने जीवन दान दिया। इसका कारण कहो। हमारे जीते ही तुम्हारी यह अवस्था होय।''

खड़ी बोली गद्य के विकास में ईसाई पादरियों का योगदान

कंपनी सरकार की छत्रछाया में ईसाई धर्म प्रचारक पादरियों ने खड़ी बोली के विकास में पर्याप्त मदद की है। इन ईसाई मिशनरियों का उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार–प्रसार करना था और इसके लिए उन्होंने अपनी धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित कराए। 1801 में विलियम केरे ने सबसे पहले ''न्यू टेस्टामैंट'' का अनुवाद प्रकाशित कराया था। आगे चलकर सेण्ट मैथ्यू तथा सेण्ट जॉन के विचारों के अनुवाद प्रकाशित कराए गए। 1854 ई. में ''हिस्ट्री ऑफ बाइबिल'' का अनुवाद सामने आया। इस प्रकार इन ईसाई मिशनरियों ने अनेक छोटी बड़ी पुस्तकों का खड़ी बोली में प्रकाशन कराकर

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 34 8/18/2021 12:21:35 PM

खड़ी बोली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। पुस्तकों के प्रकाशन के अलावा इन लोगों ने शिक्षा के लिए स्कूल कॉलेज खुलवाए। जब इन शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाने के लिए पुस्तकों की आवश्यकता हुई तो विभिन्न विषयों जैसे–इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र आदि की पुस्तकें तैयार कराई गईं।

1801 से 1823 तक इन ईसाई मिशनरियों ने न केवल हिंदी में बल्कि अवधी, ब्रज, बघेली, मारवाड़ी, कन्नौजी आदि सभी भाषाओं में धर्म प्रचार से संबंधित लाखों पुस्तकें छपवायीं। यद्यपि व्याकरणिक दृष्टि से इन पुस्तकों की भाषा में वह परिपक्वता नहीं है और स्थान–स्थान पर अनेक प्रकार की त्रुटियाँ भी हैं परन्तु इन्होंने हिंदी को आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसकी भाषा के स्वरूप का अवलोकन करने के उद्देश्य से यहाँ चम्बरलेन द्वारा अनूदित ''न्यू टेस्टामैंट'' से एक अंश उद्धृत है–

''हे तुम सब जो परिश्रम करते हो और बोझ वाले होते हो, मेरे पास आवो और मैं तुम्हें सुस्ता लूँगा। अपनेयों पर मेरा जुआ लेवो और मुझसे सिखो जिसमें मैं नरम और मन में लघु हूँ और तुम अपने जीवों से विश्राम पावोगे। क्योंकि मेरा जूवा सहज और मेरा भार हलका है।''

पत्र–पत्रिकाएँ और खड़ी बोली का विकास

19वीं सदी का पूर्वार्द्ध इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि इस युग में हिंदी पत्रकारिता जन्म लेती है जिससे हिंदी के विकास को दुगुनी शक्ति एवं गति प्राप्त होती है। कलकत्ता निवासी पं. युगल किशोर को हिंदी पत्रकार कला का जन्मदाता माना जाता है। उन्होंने अपने परिश्रम एवं लगन से 30 मई 1826 को ''उदन्त मार्तण्ड'' नामक पत्र प्रकाशित किया। परंतु दुर्भाग्यवश ग्राहक उपलब्ध न हो पाने के कारण 4 दिसम्बर 1827 को यह पत्र बंद हो गया। इसके बाद 9 मई 1829 को ''बंगदूत'', 1864 में ''प्रजामित्र'' और 1844 में शिव प्रसाद सितारे हिंद का ''बनारस अखबार'' हिंदी के विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 1854 में ''समाचार सुधावर्षण'' नामक पत्र प्रकाशित हुआ था। यहाँ इस पत्र से एक पंक्ति उद्धृत की जा रही है–

''यहि सत्य हम लोग अपनी आँखों से प्रत्यक्ष महाजनों की कोठियों में देखते हैं कि एक की लिखी हुई चिट्ठी दूसरा जल्दी बाँच सकता नहीं।''

2.4 हिंदी और उर्दू का परस्पर संबंध

हिंदी के विकास के नाम पर हमें दो प्रकार के प्रयास दिखाई देते हैं। एक ओर है प्रचार साहित्य जिसमें धार्मिक पुस्तकों, साहित्यिक पाठ्यपुस्तकों आदि में खड़ी बोली का प्रयोग किया गया। अंग्रेजों ने यह समझ लिया था कि इस देश पर राज करने के लिए हिंदू–मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य बनाए रखने में ही उनकी भलाई है। और इस वैमनस्य को भाषा के झगड़े के साथ आसानी से बनाए रखा जा सकता है। वास्तव में हिंदी–उर्दू का विवाद भाषागत विवाद न होकर सांप्रदायिक विवाद अधिक है, अन्यथा यदि गंभीरता से देखा जाए तो हिंदी और उर्दू एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। एक में संस्कृत की तत्सम शब्दावली की बहुलता है तो दूसरी में अरबी–फ़ारसी के शब्दों की। एक समुदाय के लोग एक भाषा से अपनी सामाजिक अस्मिता का निर्धारण करते हैं तो दूसरा समुदाय दूसरी भाषा के माध्यम से। हाँ, लेखन के स्तर पर दोनों में अंतर अवश्य है। हिंदी नागरी लिपि में लिखी जाती है तो उर्दू फ़ारसी लिपि में। जहाँ तक भाषा की संरचना के अंतर की बात है दोनों में कोई अंतर नहीं हैं।

1700 ई. में वली दकनी जब दक्षिण भारत से दिल्ली आए तो उन्होंने यहाँ आकर एक भाषा का प्रचलन किया, जिसका नाम उन्होंने 'रेख्ता' दिया। 'रेख्ता' का अर्थ होता है ''छितराया हुआ''। अर्थात् जिस देशी भाषा में अरबी–फारसी के शब्द छितराए हुए

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 35 8/18/2021 12:21:35 PM

मिलते हैं वही भाषा ''रेख्ता'' कही गई। वली की यह रेख्ता काफी लोकप्रिय साबित हुई क्योंकि इसे शासन तंत्र से जुड़े फ़ारसी बोलने वाले मुसलमान भी समझ सकते थे और जनसामान्य भी देशी ढाँचा होने के कारण इसे समझ सकता था। पर धीरे–धीरे इस 'रेख्ता' में अरबी–फ़ारसी के शब्दों की संख्या बढ़ती चली गई और यह उस समय प्रचलित देशी भाषा रूप से अलग हट कर एक नई शैली के रूप में प्रसिद्धि पा गई। भाषा के इसी रूप को उर्दू कहा गया।

इस प्रकार 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक हमें विद्वानों के दो वर्ग दिखाई देते हैं। एक वर्ग हिंदी का पक्षधर है तो दूसरा उर्दू का। उर्दू की तरफ़दारी करने वालों में एक नाम है सर सैयद अहमद खाँ का। सर सैयद ने उर्दू के प्रचार के लिए गाज़ीपुर में 'ट्रांसलेशन सोसाइटी' की स्थापना की थी। बाद में यही संस्था अलीगढ़ में ''साइंटिफिक सोसाइटी'' के नाम से चलने लगी और इस्लामी संस्कृति या उर्दू के प्रचार–प्रसार के लिए जीतोड़ प्रयास करती रही।

उधर हिंदी के समर्थकों में हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। इस प्रतिक्रिया का एक अन्य कारण यह था कि ईसाइयों द्वारा अपने धर्म के प्रचार–प्रसार के कारण यहाँ के निवासियों के सामने धार्मिक संकट खड़ा हो गया था। ईसाई मिशनरी यहाँ के निवासियों की गरीबी का लाभ उठाकर उनके धर्म परिवर्तन का कार्य कर रहे थे। इसीलिए राजा राममोहन राय ने ब्रह्मज्ञान के प्रचार का बीड़ा उठाया। उन्होंने वेदान्त सूत्रों का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित करवाया तथा सन् 1829 के आसपास 'ब्रह्म समाज' की ओर से 'बंगदूत' नामक पत्र भी हिंदी में निकाला।

मुगलों के समय से ही भारत में अदालतों की भाषा फ़ारसी चली आ रही थी। इसके कारण आम आदमी को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता था। अंग्रेज़ों ने इस कठिनाई का अनुभव किया था और सन् 1836 में अदालतों का कार्य देशी भाषा या हिंदी में किए जाने का एक सरकारी आदेश निकाला गया। लेकिन इस आदेश का मुसलमानों ने विरोध किया जिसके फलस्वरूप सरकार को अपना आदेश एक साल के बाद ही वापस लेना पड़ा। यह वह समय है जब शिक्षा के क्षेत्र में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद का आगमन होता है। राजा जी हिंदी और नागरी लिपि के समर्थक थे। 1856 में जब वे इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स के पद पर आसीन हुए तो वे बराबर हिंदी के समर्थन में अपने विचार व्यक्त करते रहे। उन्होंने लोगों को यह शिक्षा दी और बताया कि राष्ट्रीय जागरण एवं राष्ट्रीय उत्थान के बिना हिंदी का विकास संभव नहीं। परंतु बहुत लम्बे समय तक वे अपने तर्कों से अपने विरोधियों को समझा न पाए और उन्होंने स्वयं समझौतावादी मध्यमार्ग अपना लिया। उन्होंने भी हिंदी में फ़ारसी के शब्दों के प्रयोग की बात को स्वीकार कर ही लिया जो एक प्रकार से उर्दू का समर्थन ही था। उनकी भाषा का नमूना देखकर आपको पता चल जाएगा कि उनकी भाषा कहाँ तक हिंदी है ?

''यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं की मदद से बनता है उसका हाल कई दफ़ा ज़ाहिर हो चुका है।''

और फिर सितारे हिंद की इस भाषा नीति का भी धीरे–धीरे विरोध आरंभ हुआ। शिक्षा विभाग में उन्हीं दिनों एक सज्जन थे वीरेश्वर चक्रवर्ती। चक्रवर्ती महोदय ने राजा साहब की भाषा का खुल कर विरोध किया। यदि सच्ची हिंदुस्तानी भाषा किसी ने लिखी तो वे थे मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ़ और देवकीनंदन खत्री। इन लोगों ने अपनी भाषा में अरबी–फ़ारसी के उन्हीं शब्दों को जगह दी जो जन सामान्य में प्रचलित थे। मुंशी देवी प्रसाद की भाषा की कुछ पंक्तियाँ देखिए–

''संवत् 1610 में सलेमशाह के मरने पर राठौड़ पृथ्वीराज ने जोधपुर से जाकर फिर अजमेर के किले को जा घेरा। किलेदार ने हिन्दू–पति के किला देना कहा के चित्तौड़

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 36 8/18/2021 12:21:35 PM

से बुलाया। महाराणां बहुत सी फौज लेकर गए, पृथ्वीराज को हटाकर अजमेर में अमल कर लिया और पठानों को जिंदा और सलामत निकाल कर नागौर भी जा दबाया ....।''

अब देवकी नंदन खत्री की भाषा का नमूना भी देखिए–

''चाहे कोई हिंदू हो चाहे जैन या बौद्ध हो और आर्य समाजी व धर्म समाजी ही क्यों न हो परंतु जिन सज्जनों के मानवीय अवतारों और पूर्वजनों ने इस पुण्य भूमि का अपने आविर्भाव से गौरव बढ़ाया है उनमें ऐसा अभागा कौन होगा जो पुण्यता और मधुरता युक्त संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रचार (न) चाहेगा ......।''

परंतु कुछ ऐसे लोग भी थे जो मात्र संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का समर्थन कर रहे थे। राजा लक्ष्मण प्रसाद ऐसे ही व्यक्तित्व थे जिन्होंने फ़ारसी बहुल हिंदी के स्थान पर संस्कृत गर्भित खड़ी बोली का समर्थन किया। उन्होंने हिंदी के ऐसे ही रूप में सन् 1862 में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का अनुवाद किया तथा 'प्रजा हितैषी' नामक पत्र निकालकर लोगों को शुद्ध भाषा लिखने के लिए प्रेरित किया। राजा लक्ष्मण सिंह स्वयं भाषा के विशुद्ध रूप में विश्वास रखते थे और चाहते थे कि दूसरे लोग भी तत्सम शब्दावली से ओत–प्रोत शुद्ध हिंदी में ही लेखन कार्य करें। राजा जी की भाषा का नमूना नीचे देखा जा सकता है–

''महात्मा! तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछना चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो ....।''

'रघुवंश' का भी राजा साहब ने अनुवाद किया था। इस अनुवाद की भूमिका में हिंदी–उर्दू के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं–

''हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी–न्यारी हैं। कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी–फ़ारसी के शब्दों के बहाने हिंदी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जिसमें अरबी–फ़ारसी के शब्द भरे हों।''

इसके अतिरिक्त खड़ी बोली के समर्थन में उस समय के विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलनों ने भी बड़ी प्रभावी भूमिका निभाई है। बंगाल में नवीन चंद्र राय एक ऐसा ही नाम है। नवीन बाबू ब्रह्म समाज के समर्थक थे। ब्रह्म समाज के विचारों के प्रचार हेतु उन्होंने एक पत्रिका निकाली थी जिसका नाम था 'ज्ञान प्रदायिनी'। उधर पंजाब में स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' (1865) प्रकाशित होकर लोगों के समक्ष आया। स्वामी जी ने जगह–जगह अपने प्रभावी भाषण देकर लोगों को आर्य सभ्यता और संस्कृति के मूल मंतव्यों से परिचित कराया। हिंदी के विकास, प्रचार और प्रसार में आर्य समाज की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही है। स्वामीजी की भाषा तत्सम शब्दों से युक्त खड़ी बोली थी। देखिए एक उदाहरण–

''पुरुषों का और कन्याओं का ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या जब पूर्ण हो जाय तब देश का राज होय और जितने विद्वान लोग वे सब उनकी परीक्षा यथावत करें। जिस पुरुष या कन्या में श्रेष्ठ गुण जितेन्द्रिय सत्यवचन, निराभिमान, उत्तम बुद्धि, पूर्ण विद्या, मधुरवाणी, कृतज्ञता और गुण के प्रकाश में अत्यंत प्रीति हो जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, कृतघ्नता, कपट, ईर्ष्या, द्वेषादिक दोष न होवैं, पूर्ण कृपा से लोगों का कल्याण चाहै उसका ब्राह्मण का अधिकार दे वै ....''।

इसी प्रकार पं. अंबिका दत्त व्यास ने सनातन धर्म के प्रचार–प्रसार के माध्यम से हिंदी के विकास के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 37 8/18/2021 12:21:35 PM

2.5 भारतेंदु युग और हिंदी

हमने अभी तक देखा कि खड़ी बोली किस प्रकार के तमाम समर्थन और विरोध के टेढ़े–मेढ़े रास्तों को पार करती हुई उस स्थिति में आ पहुँची थी जहाँ से अब वह निश्चिंत होकर जनमानस के विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सके। और तभी हिंदी साहित्य पटल पर भारतेन्दु जैसा व्यक्तित्व उभर कर आता है। भारतेन्दु का समय 1850 से 1885 तक है। हमने पीछे देखा था कि साहित्य के क्षेत्र में भाषा विवाद के संदर्भ में राजा लक्ष्मण सिंह तथा राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद भिन्न दृष्टिकोण के समर्थक रहे हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उन दोनों से भिन्न भाषा का शिष्ट तथा परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया। न तो वह भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों को सायास ठूँसने के पक्ष में थे और न ही उन्हें अरबी–फारसी भाषा के प्रचलित सरल विदेशी शब्दों को हिंदी में प्रयोग करने में कोई संकोच था। इनकी भाषा में तो ब्रजभाषा का, देशज शब्दों का बड़ा ही स्वाभाविक ढंग से प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु की टकसाली हिंदी का एक नमूना आप लोग देख सकते हैं–

''प्यारे रात छोटी है और स्वांग बहुत है। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय मुझसी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछने वाला नहीं, क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता, सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय मैं तो अपने–पराये सबसे बुरी बनकर बेकाम हो गई।''

कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी खड़ी बोली अब धीरे–धीरे विकास पथ पर परिमार्जित होती हुई आगे बढ़ने लगी। इसमें अरबी–फारसी के शब्द आ गए थे। अब उसमें अंग्रेजी के आगमन से अंग्रेजी के शब्द भी स्वाभाविक ढंग से आकर खपने लगे और धीरे–धीरे ये हिंदी की अपनी ही धरोहर बन गए। भारतेन्दु तो हिंदी के जातीय रूप को लेकर आगे चले। हिंदी का जितना व्यवस्थित ढंग से प्रयोग भारतेन्दु युग में हुआ, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। भारतेन्दु युग से पूर्व इसमें कहीं ब्रजभाषा का प्रभाव दिखाई देता था तो कहीं पूर्वी हिंदी की छाप, कहीं अरबी–फ़ारसी का पुट अधिक था तो कहीं वह संस्कृत की तत्सम शब्दावली के बोझ तले दबी जा ही थी। व्याकरण, वर्तनी, विराम चिह्नों आदि से संबंधित त्रुटियों का तो कहना ही क्या था? भारतेन्दु से पहले हिंदी की गाड़ी चल तो पड़ी थी। लेकिन अभी तक वह अपना सर्वमान्य एवं सर्वस्वीकृत तथा सर्वग्राह्य रूप लेकर उपस्थित नहीं हो पाई थी। यह कार्य हुआ 'भारतेन्दु युग' में आकर और इस कार्य को परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप में संपन्नता मिली आगे चलकर 'द्विवेदी युग' में। भारतेन्दु स्वयं तो कर्मठ व्यक्ति थे ही पर उन्होंने हिंदी प्रेमियों और साहित्यकारों की एक ऐसी मंडली तैयार की जिसने खड़ी बोली के विकास में सामूहिक रूप से कार्य करना आरम्भ किया। अब साहित्य के क्षेत्र में नए–नए रास्ते खुल गए। गद्य की नई–नई विधाओं पर लेखनी चलाई गई। उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, आलोचना के अलावा विभिन्न ज्ञान–विज्ञान के विषयों पर साहित्य सर्जन होना आरंभ हुआ। इस कार्य में स्वयं भारतेन्दु के अलावा जो दूसरे प्रमुख साहित्यकार सामने आए उनमें लाला श्रीनिवास दास (1851–1887), बालकृष्ण भट्ट (1844–1924), प्रताप नारायण मिश्र (1856–1894), राधा कृष्ण दास (1865–1907), राधा चरण गोस्वामी (1851–1925) तथा बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' (1855–1923) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हम 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से तुलना करें तो भारतेन्दु युग में भाषा परिमार्जन की दिशा में अभूतपूर्व कार्य हुआ और साथ ही उसमें राष्ट्रीय भावना एवं नवोत्थान की चेतना भी जागृत हुई। भारतेन्दु युग के इन विद्वानों ने जहाँ लोगों को भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीयता एवं आर्थिक जागरूकता के प्रति सचेत किया वहीं दूसरी ओर

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 38 8/18/2021 12:21:35 PM

खड़ी बोली के प्रचार एवं प्रसार के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य किए। जैसा कि आप लोग जानते ही हैं, भारतेन्दु युग आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास का वह आरम्भिक चरण था जहाँ गद्य की विधाओं के लिए तो खड़ी बोली को आधार बनाया गया था परंतु कविता के क्षेत्र में लोगों का ब्रजभाषा से मोह नहीं छूटा था। कविता अभी भी ब्रज भाषा में ही लिखी जाती थी। सर्जनात्मक साहित्य के अलावा इस युग में बंगला, संस्कृत तथा अंग्रेजी से अनुवाद के कार्य भी किए गए। पर जैसा कि हमने पीछे कहा था खड़ी बोली के स्वरूप को पूर्ण स्थिरता, परिमार्जन एवं उसके परिष्कार करने की इस प्रक्रिया को संपन्नता प्राप्त हुई आगे चलकर पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से 'द्विवेदी युग' में।

2.6 बीसवीं शताब्दी में हिंदी

हिंदी के प्रचार और प्रसार की प्रक्रिया भारतेंदु के जीवनकाल से ही आरंभ हो गई थी। आर्य समाज ने जो आंदोलन चलाया था उससे भी इस दिशा में पर्याप्त सहायता मिली। उधर भारतेंदु के जीवन के अंतिम समय में ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'' की स्थापना भी हो चुकी थी और लोगों के मन में अब राष्ट्रीय स्तर पर खड़ी बोली हिंदी के प्रचार एवं प्रसार की बात घर कर गई थी। यह ऐसा आन्दोलन था जिसमें देश के जाने माने पत्रकार, शिक्षाविद, वैज्ञानिक, नेता सभी लोग आगे आए। इन सब में पत्रकारों की भूमिका सराहनीय है। बीसवीं शताब्दी में इसी कार्य को आगे ले जाने में ''सरस्वती'' पत्रिका की भूमिका भुलाई नहीं जा सकती। सरस्वती के संपादक स्वयं पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका के माध्यम से भाषा के परिमार्जन एवं परिष्कार का बीड़ा उठाया और वे पूरे मनोयोग से हिंदी की सेवा में जुट गए।

हिंदी प्रेमियों में कई प्रकार के लोग शामिल थे। इसमें एक ओर साहित्यकार थे तो दूसरी ओर वे देशभक्त जिनके मन में देश को आजाद कराने की भावना प्रज्वलित हो रही थी। वे लोग समझते थे कि हिंदी को सक्षम और समर्थ बनाए बिना देश को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। देशभक्तों की इस श्रेणी में संपूर्ण राष्ट्र के अलग–अलग प्रांतों के लोग शामिल थे। इनमें से बहुत–से तो ऐसे देश भक्त थे जो स्वयं हिंदी नहीं जानते थे पर उनमें राष्ट्रीय भावना इतनी प्रबल थी कि ये सभी लोग देश और भाषा के मसले पर अपनी प्रांतीयता की भावना से ऊपर उठे हुए थे। इसलिए अब हिंदी में प्रांतीय भाषाओं के शब्द भी आने लगे थे। भारतेन्दु युग के लेखकों के गद्य में ब्रजभाषा के प्रयोग भी आ ही गए थे तथा दूसरी ओर कुछ लोगों का फ़ारसी शब्दों वाली हिंदी का मोह भी बना हुआ था। कुछ साहित्यकार ऐसे भी थे जिन्होंने अपने मन–माने ढंग से नए–नए शब्दों को गढ़ लिया था और साहित्य में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के सामने सबसे बड़ी समस्या यही थी कि वे हिंदी की इस अराजकतापूर्ण स्थिति से कैसे निपटें और उसे परिमार्जित कर एकरूपता की दिशा में कैसे आगे ले जाएँ। भारतेन्दुयुगीन भाषा के मनमाने, अनियमित और क्षेत्रीय प्रयोगों को ठीक कर भाषा को सुव्यव्यस्थित बनाना द्विवेदी जी के सम्मुख उस समय की सबसे बड़ी चुनौती थी। द्विवेदी जी की हिंदी तथा हिंदी साहित्य को दो महत्वपूर्ण देन है। एक तो उन्होंने लोगों को ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में कविता लिखने की प्रेरणा दी। बल्कि इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि उन्होंने लोगों को खड़ी बोली में कविता करना सिखा दिया और द्विवेदी युग से हिंदी कविता भी गद्य के साथ–साथ खड़ी बोली में लिखी जाने लगी। द्विवेदी जी का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान है 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी भाषा का परिमार्जन एवं सुधार।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 39 8/18/2021 12:21:35 PM

सरस्वती पत्रिका में छपने के लिए जो लेख आते थे उनमें भाषा, व्याकरण तथा वर्तनी आदि की अनेक अशुद्धियाँ होती थीं। द्विवेदी जी रात–रात बैठकर इन लेखों की भाषा स्वयं सुधारा करते थे और लोगों को सही भाषा लिखने की प्रेरणा देते थे। उन्होंने स्वयं ऐसे लेख लिखे जिनके माध्यम से उन्होंने व्याकरण, वर्तनी, विराम चिह्नों आदि का आदर्श रूप जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों, शासन–न्याय, शिक्षा, खेल–कूद आदि से संबंधित विषयों पर व्यवस्थित ढंग से विचार प्रस्तुत करने के लिए अन्य भाषाओं जैसे बंगला, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, संस्कृत आदि के शब्द गृहीत किए और हिंदी को समर्थ बनाने का प्रयास किया। भारतीय जन बोलियों से हिंदी का जो संबंध एक प्रकार से कट गया था उसे उन्होंने पुनः स्थापित किया। द्विवेदी युग हिंदी साहित्य का वह युग है जहाँ आकर एक ओर हिंदी गद्य की सभी शैलियाँ विकसित हुईं तो दूसरी ओर हिंदी के शब्द भंडार में वृद्धि हुई। इस युग में जो साहित्यकार सामने आए उनमें बालमुकुंद गुप्त, पद्म सिंह शर्मा, सरदार पूर्ण सिंह, गोविंद नारायण मिश्र, प्रेमचंद, चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास के नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में अमर हैं। अब साहित्य की ऐसी कोई विधा और ऐसी कोई शैली नहीं थी जिस पर इस युग के विद्वानों ने अपनी लेखनी न चलाई हो। आत्मकथात्मक, विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, भावात्मक, आलोचनात्मक, हास्य–व्यंग्य प्रधान, तकपूर्ण, रूपात्मक, प्रतीकात्मक आदि सभी प्रकार के शैली रूपों के दर्शन आप इस युग के गद्य साहित्य में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए बालमुकुंद गुप्त की व्यंग्यात्मक शैली की एक झलक उनके प्रसिद्ध लेख ''शिव शम्भु के चिट्ठे'' से देख सकते हैं जहाँ वे लॉर्ड कर्जन पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं ''दूज के चाँद के उदय का भी एक समय है। लोग उसे जान सकते हैं। माई लॉर्ड के मुख चंद्र के उदय के लिए कोई समय भी नियत नहीं। अच्छा, जिस प्रकार इस देश के निवासी माई लॉर्ड का चंद्रानन देखने को टकटकी लगाए रहते हैं या जैसे शिव शंभु के जी में अपने देश के माई लॉर्ड से होली खेलने की आई, उस प्रकार कभी माई लॉर्ड को भी इस देश के लोगों की सुध आती होगी।'' और अब प्रस्तुत है आचार्य रामचंद्र शुक्ल की विचारात्मक शैली का एक उदाहरण उनके प्रसिद्ध निबंध ''लज्जा और ग्लानि'' से –

''ग्लानि में अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता, आदि के अनुभव से जो संताप होता है, वह अकेले में भी होता है, दस आदमियों के सामने प्रकट भी किया जाता है। ग्लानि अन्तःकरण की शुद्धि का एक विधान है। ....अपने दोष का अनुभव, अपने अपराध का स्वीकार, आंतरिक अवस्था का उपचार तथा सच्चे सुधार का द्वार है।''

भारतेंदु युग की तुलना में द्विवेदी युग में कहानी और आलोचना के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ था। कहानी की रोचकता और लोकप्रियता ने हिंदी के विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दिया है। भारतेन्दु युग में हिंदी गद्य का जो भवन तैयार किया गया था उसे द्विवेदी युग में और भी परिमार्जित कर सुसज्जित किया गया।

द्विवेदी युग की समाप्ति पर खड़ी बोली में एक स्थिरता आ गयी थी और उसकी एक व्याकरणिक व्यवस्था बन गयी थी। इस बात का प्रमाण है पं. कामता प्रसाद गुरु का 'हिंदी व्याकरण'। 'छायावाद' के आरंभ से शुरू हुई हिंदी के पुनरुत्थान की कहानी। व्याकरणिक स्थिरता और मानक प्रयोगों की ओर रुझान की कहानी छायावादी युग से आरंभ होती है। इस युग में हिंदी के शब्द भंडार में वृद्धि करने के उद्देश्य से संस्कृत के उपसर्ग एवं प्रत्यय लेकर नए–नए शब्दों के निर्माण का कार्य किया गया। संस्कृत के अलावा अंग्रेजी के बहुप्रचलित रूपों, वाक्यांशों के अनुवाद किए गए तथा

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 40 8/18/2021 12:21:35 PM

छायावादी कवियों ने अपनी कविता में अनेक नए—नए ध्वन्यात्मक शब्दों को गढ़ने का काम किया। आगे चलकर 'प्रयोगवाद' और 'प्रगतिवाद' की धाराएँ हिंदी साहित्य में पल्लवित हुईं और इनके अंतर्गत देशी शब्दों को फिर साहित्य में प्रवेश मिला। आंचलिक साहित्य सर्जन के फलस्वरूप आंचलिक शब्दों की वृद्धि हुई। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में जिस सरल और सहज भाषा का प्रयोग किया था तथा जनमानस को अभिव्यक्ति देने का काम किया था वही चेतना उस समय के कथा साहित्य में आगे बढ़ी। इस प्रकार अब हिंदी भाषा राष्ट्रीयता से उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर विकसित होने लगी।

स्वतंत्रता काल— बीसवीं शताब्दी के मध्य का समय भारत के इतिहास में इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता मिली। एक ओर देश का विभाजन हुआ तो दूसरी ओर सामन्तवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था का अंत हुआ। रियासतों और जमींदारी प्रथा को उखाड़ फेंका गया। शोषण और दमन के चक्र को समाप्त करने के उद्‌देश्य से भारत सरकार ने महत्वपूर्ण कदम उठाए। जनसामान्य की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं और राष्ट्र को शिक्षा और तकनीकी दृष्टि से समृद्ध बनाने के प्रयास आरंभ हुए। औद्योगीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत नए—नए उद्योग—धंधे खुलना शुरू हुए। विदेशों से राजनीतिक संबंध स्थापित होने लगे। इस समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी 'भारतीय संविधान' का निर्माण। संविधान बना 1949 में पर लागू हुआ 26 जनवरी 1950 से। इस संविधान के अनुसार भारत को 'प्रभुत्व संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य' का दर्ज़ा मिला। लेकिन दूसरी ओर अनेक प्रकार की राजनीतिक उथल—पुथल, आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, अनुशासन—हीनता, सामाजिक असुरक्षा, जातिवाद, सांप्रदायिकता, औद्योगीकरणजन्य सामाजिक बुराइयाँ, नैतिक मूल्यों का पतन आदि भी भारतीय समाज में पनपने शुरू हुए। तत्कालीन साहित्य इन सबसे प्रभावित हुए बिना तो रह नहीं सकता था। अतः स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता हुआ आगे की ओर विकसित हुआ। आलोचना के मानदंड स्थापित हुए जिससे भाषा में विश्लेषण की क्षमता का विकास हुआ।

जब हम आज़ाद हुए थे तब भारत की राजभाषा अंग्रेजी थी। होना तो यह चाहिए था कि देश के आज़ाद होते ही हिंदी को अंग्रेजी के स्थान पर ला बिठाया जाता, पर ऐसा न हो सका। हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिला 1965 में और इस समय तक देश की राजनीतिक स्थितियों में भारी परिवर्तन आ चुके थे। भारत सरकार की हिंदी भाषा को राजभाषा घोषित करने की नीति का दक्षिण भारत के प्रांतीयतावादी विचारधारा के लोगों ने विरोध किया। बहरहाल, आज संविधान में हिंदी के साथ—साथ अंग्रेजी एवं अन्य प्रमुख प्रांतीय भाषाओं को भी राजभाषा का दर्जा प्राप्त हो चुका है पर आज एक सत्य भारतीय मन ने अवश्य स्वीकार कर लिया है कि अंग्रेजी को आधार बनाकर इस देश को बहुत समय तक विकास पथ पर नहीं ले जाया जा सकता। हिंदी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के विकास के साथ ही देश का भविष्य जुड़ा हुआ है। डॉ. चाटुर्ज्या ने 'भारतीय आर्य भाषा और हिंदी' नामक ग्रंथ में लिखा है कि ''भारत में हिंदी न केवल पारस्परिक वार्तालाप की भाषा है बल्कि विदेशों में भी भारतीयों के साथ बातचीत करने के लिए हिंदी को ही आधार बनाया जाता है।''

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली का क्षेत्र संपूर्ण भारत वर्ष तो है ही, वे देश भी है जहाँ हिंदी भाषा—भाषी लोग जा बसे हैं और अपनी अस्मिता की पहचान वे भारत और हिंदी से करते हैं। भारत में कोने—कोने तक हिंदी को प्रचारित करने में हिंदी

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 41 8/18/2021 12:21:35 PM

'सिनेमा' की भूमिका भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है। आज यह भी एक सच्चाई है कि चाहे लोग सुदूर दक्षिण के हों या पश्चिम के, उत्तर के हों या पूर्वांचल के, वे सब हिंदी फिल्मों को देखने में काफी रूचि लेते हैं और भाषा को समझ बोल सकते हैं। आज की हिंदी के अखिल भारतीय स्तर पर दो रूप दिखाई देते हैं– एक 'हिंदुस्तानी' का जो अन्तर्प्रांतीय स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में मान्य है तथा आज इसके अलग–अलग प्रांतों में अलग–अलग क्षेत्रीय रूप भी खड़े हो रहे हैं। यही कारण है कि आज– 'कलकतिया हिंदी', 'बंबइया हिंदी', 'दिल्ली की हिंदी' जैसे रूपों की चर्चा की जाती है। इन रूपों का होना हिंदी भाषा के लिए कमजोरी की बात नहीं है, यह तो उसकी प्रगति एवं समृद्धि की सूचना देता है। हिंदी का दूसरा रूप है उसका साहित्यिक रूप। यह साहित्यिक रूप आज हिंदी साहित्य के विकास की लगभग दो सौ वर्षों की कहानी कह रहा है। सबसे अच्छी बात तो यह हुई है कि 'साहित्यिक हिंदी' भी अब हिंदी प्रदेशों तक सीमित नहीं रह गई है। हिंदीतर प्रांतों के प्रसिद्ध साहित्यकार सामने आ गए हैं जो हिंदी साहित्य निधि को और भी समृद्धि प्रदान कर रहे हैं। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि आज हिंदी खड़ी बोली राष्ट्रीयता से उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता के दरवाजे खटखटा रही है।

बोध प्रश्न

1. सही कथनों के सामने सही का निशान और गलत कथनों के सामने गलत का निशान लगाइए।

   (i) डिगंल हिंदी का वह रूप है जिसका संबंध राजस्थानी साहित्य से है। ( )

   (ii) अमीर खुसरो की कविता की भाषा पिंगल कहलाती थी। ( )

   (iii) खड़ी बोली के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ( )

   (iv) पं. युगल किशोर को हिंदी पत्रकार कला का जन्मदाता माना जाता है। ( )

   (v) हिंदी और उर्दू दो अलग–अलग भाषाएँ हैं। ( )

   (vi) गद्य एवं पद्य दोनों में ही खड़ी बोली का प्रयोग भारतेन्दु युग से आरंभ हो गया था। ( )

   (vii) भारत के स्वतंत्र होते ही हिंदी भारत की राजभाषा बन गई। ( )

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (i) कबीर की भाषा .... भाषा कही जाती है।

   (ii) हिंदी की सबसे पहली कहानी 'रानी केतकी की कहानी' के लेखक ....हैं।

   (iii) आधुनिक काल के आरंभ में हिंदी के विकास में चार महानुभावों –(i) मुंशी सदासुख लाल (ii) इंशा अल्ला खाँ (iii)................................. (iv) सदल मिश्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

   (iv) भारतेंदु का समय .... से .... तक है।

   (v) द्विवेदी जी ने .... पत्रिका के माध्यम से हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 42 8/18/2021 12:21:35 PM

3. मिलान कीजिए :

लेखक		पुस्तकें	
(1)	लल्लू जी लाल	क)	शेख मिराजी का किस्सा
(2)	अमीर खुसरो	ख)	पत्र कौमुदी
(3)	मुल्लादाऊद	ग)	पृथ्वीराज रासो
(4)	गोरखनाथ	घ)	पहेलियाँ
(5)	वररुचि	च)	सत्यार्थ प्रकाश
(6)	बाल मुकुंद गुप्त	छ)	शिवशंभु के चिट्ठे
(7)	स्वामी दयानंद सरस्वती	ज)	चंदायन
(8)	चंदबरदाई	झ)	प्रेम सागर
(9)	सदल मिश्र	ट)	आध्यात्म रामायण
(10)	प्राणनाथ	ठ)	गोरखबानी

4. सही उत्तर पर निशान लगाइए :

(i) आरम्भिक हिंदी भाषा में अपभ्रंश की शब्दावली पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है क्योंकि :

(क) उस समय के हिंदी कवि अपभ्रंश भाषा के शब्दों का प्रयोग जानबूझ कर करते थे।

(ख) अपभ्रंश से विकसित होने के कारण आरंभिक हिंदी में अपभ्रंश के शब्दों का आना स्वाभाविक था।

(ग) अपभ्रंश भाषा सरल थी और उसके शब्दों के प्रयोग से ही साहित्य उच्च कोटि का साहित्य कहलाता था।

(ii) उर्दू भाषा इसलिए विकसित हुई कि :

(क) मुस्लिम शासकों के भारत में आने के बाद तत्कालीन हिंदी भाषा में अरबी–फारसी के शब्द स्वभावतः आ गए।

(ख) मुस्लिम शासक जो बाहर से उस समय आए उर्दू भाषा बोलते थे।

(ग) हिंदी को ही मुस्लिम शासकों ने फारसी लिपि में लिखवाना शुरू कर दिया।

(iii) ''हिन्दवी'' भाषा रूप वह रूप है :

(क) जिसे 13वीं शताब्दी के समय हिंदू बोलते थे।

(ख) यह डिंगल तथा पिंगल का मिला–जुला रूप है।

(ग) यह वह रूप है जो 13वीं शताब्दी के आसपास जनसामान्य द्वारा बोला जाता था।

(iv) 'दक्खिनी हिंदी' हिंदी का वह रूप है :

(क) जो दक्षिण भारत के मुसलमानों द्वारा बोला जाता था।

(ख) हैदराबाद में बोली जाने वाली उर्दू भाषा ही ''दक्खिनी हिंदी'' कही गई।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 43 8/18/2021 12:21:35 PM

(ग) जो दक्षिण भारत में मुस्लिम शासकों, व्यापारियों आदि के पहुँचने पर खड़ी बोली में दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्द आ जाने से विकसित हुआ।

(v) हिंदी साहित्य के अंतर्गत कविता लेखन में गद्य का प्रयोग :

(क) रीतिकाल से ही आरंभ हो गया था।

(ख) भारतेंदु युग में भारतेंदु की प्रेरणा से हिंदी के कवियों ने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में कविता लिखना आरंभ किया।

(ग) द्विवेदी युग में हुआ।

(vi) खड़ी बोली गद्य का व्यवस्थित विकास इसलिए हुआ क्योंकि :

(क) अंग्रेज भारत की भाषा हिंदी से प्रेम करते थे और चाहते थे कि यह भली प्रकार से विकसित हो।

(ख) इस भाषा के माध्यम से वे अपने धार्मिक साहित्य का अनुवाद कराके प्रचार करना चाहते थे।

(ग) भारत में राज करने के लिए यहाँ की भाषा विकसित करना उनके लिए अनिवार्य था।

(vii) हिंदी को भारत की राजभाषा का दर्जा मिला था :

(क) गांधी जी की प्रेरणा से देश की आज़ादी के तुरंत बाद।

(ख) इसे राजभाषा का दर्जा दिलाया सरदार पटेल ने आज़ादी के दस वर्ष बाद।

(ग) देश में हिंदी के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के कारण 1965 में।

5. संक्षेप में टिप्पणी लिखिए ।

(क) हिंदी (हिंदवी)

(ख) उर्दू

(ग) रेख्ता

(घ) दक्खिनी हिंदी

2.7 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि हिंदी के प्रारंभिक रूप में हमें अपभ्रंश के अधिकांश शब्द एवं व्याकरणिक रूप दिखाई देते हैं। आगे चलकर हिंदी की अनेक बोलियाँ और शैलियाँ विकसित हुईं। मुस्लिम शासकों के भारत में आ जाने के बाद उसमें अरबी–फारसी शब्द आ गए और उसकी एक शैली ''उर्दू'' के नाम से विकसित हुई। दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों में आ जाने से ''दक्खिनी हिंदी'' की अनेक बोलियाँ विकसित हुईं।

हिंदी भाषा के विकास का इतिहास 1000 वर्षों का है जिसका अध्ययन हमने तीन चरणों–आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल के अंतर्गत किया। आदिकाल का समय 1000 ई. से 1500 ई. तक का माना जाता है और इसी अवधि में हिंदी के अनेक रूप जैसे ''डिंगल'' ''पिंगल'' भी विकसित हुए।

मध्यकाल जिसका समय 1500 ई. से 1800 ई. तक माना गया है वह समय है जब हिंदी की प्राकृत बोलियाँ विशेषकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली विकसित होकर सामने आती हैं तथा खड़ी बोली गद्य के विकास का सूत्रपात होने लगता है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 44 8/18/2021 12:21:36 PM

आधुनिक काल जिसका समय 19वीं सदी से आरंभ होता है वह समय है जब हमें हिंदी साहित्य में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग दिखाई देता है। गद्य की अनेक विधाएँ यहाँ विकसित होती हैं। यही नहीं 1925 के आसपास पहुँचकर हिंदी की कविता भी ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में लिखी जाने लगती है। हिंदी खड़ी बोली के विकास के आरंभिक चरण में चार महानुभावों–लल्लू जी लाल, सदासुख लाल, सदल मिश्र तथा इंशा अल्ला खाँ का महत्वपूर्ण योगदान दिखाई देता है और फिर आगे चलकर हिंदी के दो मूर्धन्य साहित्यकारों भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी की अभूतपूर्व सेवाएँ प्राप्त होती हैं जिससे खड़ी बोली एक व्यवस्थित मानक रूप ग्रहण करती है।

यही वह समय है जब आगे चलकर 1947 में भारत आज़ाद होता है और हिंदी साहित्य में तरह–तरह के मोड़ दिखाई देते हैं। 1965 में हिंदी को हिंदी सेवियों के अथक प्रयासों से राजभाषा का दरज़ा प्राप्त होता है। आज हिंदी सारे देश में बोली और समझी जाने वाली भाषा है। वह अनेक रुकावटों के बाद भी विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं को अपने साथ लेकर अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर अग्रसित हो रही है।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) गलत
2. (i) सधुक्कड़ी (ii) इंशा अल्ला खाँ (iii) लल्लूलाल, सदल मिश्र (iv) 1850 से 1885 (v) सरस्वती
3. (1) झ, (2) घ, (3) ज, (4) ठ, (5) ख, (6) छ, (7) च, (8) ग, (9) ट, (10) क
4. (i) ख, (ii) क, (iii) ग, (iv) ग, (v) ग, (vi) ख, (vii) ग
5. स्वयं उत्तर लिखने का प्रयास करिए।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 3 : भाषा विज्ञान तथा उसके अंग

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भाषा विज्ञान की परिभाषा

3.3 भाषा विज्ञान के अंग

3.4 भाषा विज्ञान का ज्ञान की अन्य शाखाओं से संबंध

3.5 सारांश

3.6 उपयोगी पुस्तकें

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- भाषा विज्ञान की परिभाषा बता सकेंगे;
- भाषा विज्ञान के अंगों का परिचय दे सकेंगे; और
- ज्ञान की अन्य शाखाओं से भाषा विज्ञान का संबंध बता सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भाषाविज्ञान भाषा मात्र के अध्ययन से सबद्ध भाषा का व्यवस्थित अध्ययन है। बोलकर या लिखकर अपनी भावनाओं के सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है–भाषा। विज्ञान वह विशिष्ट ज्ञान कहलाता है, जिसमें विवाद या खण्डन रहित अकाट्य तथा अपरिवर्तनशील नियम प्रतिपादित किए जाते हैं। विज्ञान का वास्तविक अर्थ है– किसी विषय का व्यवस्थित ज्ञान। संकलित सामग्री के विवेचन से प्राप्त ज्ञान 'व्यवस्थित ज्ञान' कहलाता है। व्यवस्थित ज्ञान कार्य–कारण सम्बन्ध पर आधारित रहता है, जिनसे कुछ नियम प्रतिपादित किए जाते हैं।

भाषा एक व्यवस्था है। उस व्यवस्था का व्यवस्थित ज्ञान भाषा विज्ञान कहलाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भाषाओं का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन करना एवं उसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना ही भाषा विज्ञान का मुख्य कार्य है। भाषा विज्ञान एक तरफ भाषा सम्बन्धी सामग्री का विवेचन–विश्लेषण करता है, दूसरी तरफ भाषा की रचना सम्बन्धी नियमों का निर्धारण करता है।

ज्ञान के क्षेत्र को प्रायः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है–1– भौतिकविज्ञान 2– समाजविज्ञान और 3– मानविकी। भौतिकविज्ञान का सम्बन्ध उन वस्तुओं से है, जो मानवकृत नहीं हैं। समाजविज्ञान मुख्यतः सामाजिक दृष्टि से मनुष्य के आचार–व्यवहार व क्रिया–कलाप का अध्ययन करता है। मानविकी में वैयक्तिक और सर्जनात्मक ज्ञान का अध्ययन किया जाता है। भाषाविज्ञान इन तीनों क्षेत्रों की सीमा को छूता है। ध्वनि के सम्प्रेषण की दृष्टि से उसका सम्बन्ध भौतिक विज्ञान से है, भाषा की सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखने पर वह सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत आता है और वैयक्तिक तथा सर्जनात्मक साहित्य के माध्यम के रूप में भाषा पर विचार करने की

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 46 8/18/2021 12:21:36 PM

स्थिति में वह मानविकी का प्रमुख अंग है। इसके अतिरिक्त ज्ञान की अन्य शाखाओं से भी भाषाविज्ञान अनेक प्रकार से जुड़ता है।

3.2 भाषा विज्ञान की परिभाषा

भाषा–मीमांसको ने भाषा विज्ञान की विभिन्न परिभाषाएँ अपने–अपने ढंग से की हैं। ये परिभाषाएँ भाषाविज्ञान की अध्ययन परिधि का स्पष्ट खाका खींचती हैं। वस्तुतः भाषा की परिवर्तनशीलता, उसका कालान्तर में विभाषा का रूप धारण कर लेना, कोई शब्द देश तथा काल भेद से अपने अर्थ को क्यों तथा किस प्रकार खो देता है? इन तमाम प्रश्नों के सटीक उत्तर के लिये हमें भाषाविज्ञान की शरण लेनी पड़ती है। भाषा की उत्पत्ति, उसकी संरचना, उसके विकास तथा ह्रास की वैज्ञानिक विवेचना भाषाविज्ञान का ही कार्य है। मतलब यह कि जड़ से लेकर फुनगी तक भाषाई वृक्ष में होने वाले हर बदलाव की पड़ताल भाषाविज्ञान का विषय क्षेत्र है। अब हम नीचे कुछ प्रमुख विद्व ानों की भाषाविज्ञान सम्बन्धी परिभाषाओं को दे रहे हैं–

देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार– 'भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है– भाषा का विज्ञान और विज्ञान कर अर्थ है– विशिष्ट ज्ञान। इसप्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा।'

कर्ण सिंह के अनुसार– 'भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें मानव प्रयुक्त व्यक्त वाक् का पूर्णतया वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।'

डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार 'भाषाविज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।' सारांश यह कि भाषाविज्ञान की सहायता से हम किसी भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन, अध्ययन, अनुशीलन करना सीखते हैं।

डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार 'भाषा–तत्त्वों का अध्ययन भाषाविज्ञान का विषय है।'

डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार 'भाषाविज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।'

डॉ. उदय नारायण तिवारी के अनुसार 'भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें भाषामात्र के भिन्न–भिन्न अंगों का विवेचन, अध्ययन और अनुशीलन करना सीखते हैं।'

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार 'भाषाविज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं।'

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ' जिस विज्ञान के अंतर्गत वर्णनात्मक ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा (विशिष्ट नहीं अपितु सामान्य) की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो, उसे भाषाविज्ञान कहते हैं।

डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन के अनुसार 'भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति, संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टि से सिद्धान्त निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।'

भाषाविज्ञान के कार्य और परिप्रेक्ष्य पर विचार करने के उपरान्त तथा उपर्युक्त परिभाषाओं पर सम्यक् विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि 'भाषाविज्ञान वह विज्ञान या शास्त्र है जिसमें विभिन्न भाषाओं एवं उसके तत्वों का वैज्ञानिक आधार पर सांगोपांग अध्ययन किया जाता है।'

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 47 8/18/2021 12:21:36 PM

3.3 भाषा विज्ञान के अंग

भाषामात्र के सभी अंग–उपांगों का अध्ययन करना भाषाविज्ञान का विषय है। सामान्यतया भाषा के बाह्य और आंतरिक दो स्तर होते हैं। बाह्य के अन्तर्गत ध्वनि, पद और वाक्य आते हैं, तथा आन्तरिक के अन्तर्गत अर्थ आता है। इनके आधार पर भाषाविज्ञान के चार प्रमुख अंग (शाखाएँ) निर्धारित किए गए हैं– ध्वनि (स्वन) विज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान। ये सभी अंग अब स्वतंत्र रूप से विकसित हो गए हैं। यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

ध्वनि (स्वन) विज्ञान (Phonetics) – भाषा ध्वनियों के अध्ययन–विश्लेषण और वर्गीकरण करने वाले विज्ञान का अभिधान ध्वनिविज्ञान है। उच्चारण, संवहन और श्रवण अथवा ग्रहण के आधार पर इसके तीन भेद किए गए हैं– उच्चारणमूलक ध्वनिविज्ञान, संवहनमूलक ध्वनिविज्ञान, श्रवणमूलक ध्वनिविज्ञान। इन्हें क्रमशः औच्चारणिक, भौतिक और श्रवणमूलक ध्वनिविज्ञान भी कहा गया है।

उच्चारण मूलक ध्वनिविज्ञान (औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान) के अन्तर्गत ध्वनियों का उच्चारणमूलक अध्ययन होता है। उच्चारण–अवयवों, उच्चारक तथा उच्चारण–स्थान का अध्ययन, प्रयत्न, संवृति, विवृति आदि की दृष्टि से ध्वनियों का विवेचन (वर्गीकरण, विकास की दिशाएँ), इसी विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। यह ध्वनि का शरीर–वैज्ञानिक अध्ययन है।

संवहनमूलक ध्वनि विज्ञान (भौतिक ध्वनि विज्ञान) के अन्तर्गत निश्चित समय के भीतर कम्पनावृत्ति ध्वनि–रणन, तान, ध्वनिरव, दोलन आदि का विवेचन होता है। यह ध्वनि का भौतिक अध्ययन है।

श्रावणिक ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत वाक् ध्वनियों का अध्ययन अर्थ की दृष्टि से किया जाता है। सुर, बलाघात, सुरक्रम आदि का विवेचन इसके अन्तर्गत किया जाता है। इसे ध्वनि का शरीर–मनोवैज्ञानिक अध्ययन कहना उचित होगा।

ध्वनि की आन्तरिक संरचना और उसके गहन अध्ययन हेतु ध्वनि–प्रक्रिया अथवा ध वनिग्राम विज्ञान का शुभारम्भ 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ। ध्वनिप्रक्रिया का सिद्धान्त सामान्य रूप से ध्वनि–परिवर्तन का सिद्धान्त है, जो ध्वनिग्राम (स्वनिम) के अध्ययन से सम्बद्ध है। ध्वनि–विज्ञान भाषा–मात्र की ध्वनियों का अध्ययन करता है, ध्वनि–प्रक्रिया का सम्बन्ध किसी भाषा विशेष की उन ध्वनियों के अध्ययन से होता है, जो भाषा में पाये जाने वाले ध्वनि–वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। भाषाओं में पाई जाने वाली ध्वनियाँ असीम होती हैं, फिर एक ही ध्वनि का उच्चारण भाषा–विशेष के बोलने वालों द्वारा समान रूप से संभव नहीं होता। अलग–अलग संघटनाओं में आने वाली एक ही ध्वनि का उच्चारण भिन्न हो जाता है। इस दृष्टि से ध्वनिगत असीमता भाषा–ध्वनि के अध्ययन में बाधक होती है। ध्वनियों के व्यावहारिक अध्ययन की दृष्टि से ध्वनि–प्रक्रियामूलक अध्ययन का विशेष महत्व हो जाता है। इस वस्तुस्थिति को समझ लेने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी भाषा में पाई जाने वाली सभी ध्वनियों का समान महत्व नहीं होता, अतः भाषिक ध्वनियों का व्यावहारिकता की दृष्टि से वर्गीकरण नितान्त आवश्यक है। ध्वनिग्राम की धारणा इसी पर आधारित है। इसी से ध्वनि–प्रक्रियामूलक अध्ययन का विशेष महत्व है। कतिपय विद्वानों ने इसे प्रकार्यात्मक ध्वनि–विज्ञान कहा है।

ध्वनिग्राम विज्ञान (स्वनिम विज्ञान) में भाषा–विशेष की अर्थविभेदक अथवा प्रकार्यात्मक ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिये चाल और छाल, कमल और कमर, चारा, चूरा को लें। इन युग्मकों में क्रमशः 'च' और 'छ', 'ल' और

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 48 8/18/2021 12:21:36 PM

'र', 'आ' और 'ऊ'– अर्थ–विभेदक हैं। युग्मों की अर्थविभेदक ध्वनियों के सिवाय और सब कुछ समान हैं। केवल इन्हीं के कारण अर्थभेद अथवा प्रकार्य–भेद संभव हुआ है। इस प्रकार का अध्ययन ध्वनिग्राममूलक अध्ययन कहलाता है। व्यावहारिकता की दृष्टि से इसका एकान्तिक महत्व है।

रूपविज्ञान (रूप–प्रक्रिया) (Morphology) – इस विज्ञान के अन्तर्गत रूप–तत्वों का अध्ययन होता है। रूपतत्व शब्दों के अंतर्गत न्यूनतम अर्थमूलक इकाइयाँ हैं। पदों एवं पदांशों के विकास, उनके कारण आदि के अध्ययन रूपविज्ञान के विषय हैं। शब्दों के रूप–परिवर्तनमूलक (Inflexional) और व्युत्पत्तिमूलक (Derivational) परिवर्तनों का अध्ययन रूपविज्ञान के सिद्धान्तों द्वारा होता है। लिंग, वचन, कारक, काल, अर्थभंगिमा आदि से संबंधित परिवर्तनों का अध्ययन भी इसी के द्वारा होता है। रूपविज्ञान को पदविज्ञान भी कहा जाता है। कोशगत शब्द निष्प्राण होते हैं। वाक्य में प्रयुक्त होते ही इनमें प्राणवत्ता आ जाती है और ये अपने–अपने दायित्व का निर्वाह पूरी सक्रियता से करते दिखाई पड़ते हैं। वाक्य में प्रयोग के बाद शब्दों की संज्ञा 'पद' हो जाती है।

रूपग्राम–विज्ञान (Morphemics) के अन्तर्गत रूपग्रामों (Morphemes) और संरूपों (Allomorphs) का अध्ययन होता है। रूपग्रामविज्ञान का आधार रूप या पद है। रूपात्मक भाषाओं के अध्ययन में इसका प्रयोग होता है। भाषा में प्रयुक्त प्रत्येक पद को सार्थक अवयवों– रूपिम (Morpheme) और संरूपों (Allomorphs) में विभाजित किया जाता है। यह विभाजन 'अर्थ' के आधार पर होता है। रूपिम प्रायः चार रूपों में प्राप्त होते हैं– स्वतंत्र रूपतत्व (Free Morepheme), बद्ध रूपतत्व (Bound Morpheme), मिश्र रूपतत्व (Complex Morepheme), संयुक्त अथवा समस्त रूपतत्व (Compound Morpheme)। एक रूपतत्व के विभिन्न रूपों को संरूप (Allomorph) कहते हैं। सर्वाधिक प्रचलित रूपतत्वों को रूपिम की संज्ञा दी जाती है, शेष को संरूप कहा जाता है। संयुक्त अथवा समस्त रूपिमों में पद–संघटना में कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों का अध्ययन रूपध्वनि–विज्ञान (Morphophonemics) के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार रूपग्रामविज्ञान रूपिम, संरूप और रूप–ध्वनि का अध्ययन करता है।

वाक्यविज्ञान (Syntax) – वाक्य भाषा की मूलभूत इकाई है, अतः वाक्यविज्ञान भाषाविज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत वाक्य का अध्ययन 'रचना', 'अर्थ' आदि की दृष्टि से होता है। क्रम, मैत्री, व्यवस्था, निकटस्थ अवयव, केन्द्रिकता, सक्रियमूलकता, रूपान्तरणमूलकता आदि की दृष्टि से वाक्य का अध्ययन होता है।

अर्थविज्ञान (Semantics) – अर्थ भाषा का आन्तरिक पक्ष है। इसी के द्वारा भाषा की प्रयोजनीयता संभव है, क्योंकि भाषा एक सार्थक व्यवस्था है। सम्प्रेषणीयता भाषा की एक अपरिहार्य विशेषता है, और सम्प्रेषणीयता अर्थ के अभाव में बेमानी हो जाती है। भाषाविज्ञान की इस शाखा के अंतर्गत अर्थ का स्वरूप, शब्द और अर्थ के बीच सम्बन्ध, अर्थ परिवर्तन के कारण, अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ तथा नियमों का अध्ययन किया जाता है।

भाषाविज्ञान के उपर्युक्त महत्वपूर्ण अंगों के अतिरिक्त भाषा का अध्ययन और भी कितने ही रूपों में हो रहा है, जिसके फलस्वरूप भाषाविज्ञान की अन्य अध्ययन विधाएँ भी सामने आ रही हैं। उनमें से मुख्य ये हैं– व्युत्पत्तिविज्ञान, कोशविज्ञान, भाषाभूगोल (एटलस–निर्माण), बोलीविज्ञान, भाषाप्रकार–विज्ञान, शैलीविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, समाजभाषाविज्ञान, भाषात्मक प्रागैतिहासिकता, सांख्यिकी भाषाविज्ञान (Statistical or Quantitative Linguistics) परिकल्पनात्मक भाषाविज्ञान (Spe-culative Linguistics)।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 49 8/18/2021 12:21:36 PM

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए –

(i) इनमें से कौन भाषा वैज्ञानिक नहीं है?

(क) भोलानाथ तिवारी

(ख) कपिलदेव द्विवेदी

(ग) हजारीप्रसाद द्विवेदी

(घ) मंगलदेव शास्त्री

(ii) भाषा विज्ञान की परिभाषा के सन्दर्भ में किसने कहा है कि – 'भाषाविज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।'

(क) डॉ. श्यामसुन्दर दास

(ख) मंगलदेव शास्त्री

(ग) भोलानाथ तिवारी

(घ) कपिलदेव द्विवेदी

(iii) 'भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है– भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है– विशिष्ट ज्ञान। इसप्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा।' –किसने कहा है?

(क) रामविलास शर्मा

(ख) भोलानाथ तिवारी

(ग) अम्बाप्रसाद गुप्त

(घ) देवेन्द्रनाथ शर्मा

(iv) 'भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें मानव प्रयुक्त व्यक्त वाक् का पूर्णतया वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।'– किस विद्वान का कथन है?

(क) कर्ण सिंह

(ख) बाबूराम सक्सेना

(ग) कपिलदेव द्विवेदी

(घ) रामविलास शर्मा

(v) भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा के निम्नलिखित रूप का अध्ययन किया जाता है–

(क) सांकेतिक भाषा

(ख) लिखित भाषा

(ग) उच्चरित अथवा मौखिक

(घ) इनमें से कोई नहीं

3.4 भाषा विज्ञान का ज्ञान की अन्य शाखाओं से संबंध

ऐसे तो ज्ञान अखंड और अनन्त है तथा जिज्ञासा के क्रम में एक स्थल ऐसा आता है जहाँ शास्त्र और विज्ञान के काल्पनिक भेद समाप्त हो जाते हैं और वे एक में मिल जाते हैं, किंतु व्यावहारिक दृष्टि से उनके भेद को स्वीकार करना अधिक सुविध

ाजनक है। कुछ शास्त्र और विज्ञान ऐसे हैं जो सापेक्ष और अन्योन्याश्रित हैं, उनमें परस्पर उपकार्योपकारक–भाव संबंध है; कुछ शास्त्र या विज्ञान ऐसे भी हैं जिनमें कोई साक्षात् और स्पष्ट संबंध नहीं है; उदाहरणार्थ, रसायनशास्त्र और काव्यशास्त्र। रसायनशास्त्र पढ़ने से काव्यशास्त्र के ज्ञान में कोई लाभ होने की संभावना नहीं है। इसी प्रकार वनस्पतिविज्ञान का अध्ययन भाषाविज्ञान के अध्ययन में सहायक नहीं हो सकता अथवा अर्थशास्त्र के ज्ञान से भौतिकी का ज्ञान समृद्ध नहीं होगा। ये विषय परस्पर निरपेक्ष तथा असम्बद्ध जैसे हैं। किंतु ज्ञान की ऐसी अनेक शाखाएँ हैं जो परस्पर सापेक्ष ही नहीं, एक दूसरे की पूरक भी हैं; एक के ज्ञान के बिना दूसरे का ज्ञान अधूरा रहेगा। उदाहरण के लिए, इतिहास और राजनीति को या राजनीति और अर्थशास्त्र को लीजिए। राजनीति से प्रेरित घटनाओं द्वारा इतिहास का निर्माण होता है और ऐतिहासिक घटनाएँ बाद की राजनीति का दिशा–निर्देश करती हैं। इसी प्रकार बहुत बार राजनीति का निर्माण अर्थशास्त्रीय कारणों से होता है। इसलिए यदि इनमें एक को भी ठीक से समझना है तो दूसरे विषयों का ज्ञान अनिवार्य होगा; अपने–आपमें कोई भी पूर्ण नहीं है। वस्तुतः इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि में एक–एक का ज्ञान दूसरे का साधक और उपकारक है। इन्हें बहुत–कुछ अन्योन्याश्रित भी कह सकते हैं। तो स्पष्ट है कि ज्ञान के कुछ विषय परस्पर सापेक्ष होते हैं और कुछ निरपेक्ष; कुछ का ज्ञान दूसरे विषयों के ज्ञान के लिए उपादेय तथा आवश्यक होता है, और कुछ का नहीं। इस दृष्टि से विचार करने पर भाषाविज्ञान का भी कई अन्य विषयों से साक्षात् संबंध दिखता है जिनका ज्ञान भाषाविज्ञान के लिए आवश्यक है। साथ ही भाषाविज्ञान भी उन विषयों के ज्ञान को परिष्कृत और समृद्ध करता है। तात्पर्य कि एक ओर जहाँ भाषाविज्ञान दूसरे विषयों पर प्रकाश डालता है वहीं दूसरी ओर उनसे स्वयं प्रकाश ग्रहण भी करता है। इस सापेक्षता की दृष्टि से भाषाविज्ञान के साथ निम्नलिखित विषयों का संबंध निरूपित किया जा सकता है–

1. मनोविज्ञान और भाषाविज्ञान

भाषा का संबंध विचारों या भावों से है, अर्थात् भाषा विचारों या भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। व्यक्ति पर्यावरण अथवा परिस्थिति से प्रभावित होता है और उस प्रभाव की अभिव्यक्ति प्रतिक्रिया के रूप में होती है। वह प्रतिक्रिया मानसिक, शारीरिक अथवा वाचिक हो सकती है। अप्रिय बात देखने या सुनने पर हमारा मन क्षुब्ध और खिन्न हो जाता है जो हमारी मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम है। कहीं से हमारे पैर पर यदि आग का एक कण आ गिरे तो हम तुरन्त पैर हटा लेते हैं। यह हमारी शारीरिक प्रतिक्रिया हुई। बहुत बार हमारी प्रतिक्रिया वाचिक ही रह जाती है। किसी के अभिनन्दनपरक वाक्य पर मुस्कुराकर प्रसन्न स्वर में कुछ कहना, किसी के क्रोध करने पर कटु उत्तर देना हमारी सहज वाचिक प्रतिक्रियाएँ हैं जिनका संबंध मन से है। तात्पर्य यह कि भाषा का तब तक उच्चारण होगा ही नहीं जब तक कोई विचार या भाव मन में नहीं उठे, और विचार या भाव का संबंध मन (मस्तिष्क) से है जिसका अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। अतः मनोविज्ञान जाने बिना भाषा के सभी पक्षों का पूर्ण विवेचन संभव नहीं है। क्यों किसी शब्द का हम पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और क्यों प्रतिकूल, यह सोचने की चीज़ है। 'आप कितने सुंदर हैं', यह सुनकर हमार मन खिल उठता है और 'आप कितने मूर्ख हैं', यह सुनकर मन खीझता ही नहीं, क्रुद्ध भी हो जाता है। 'सुन्दर' और 'मूर्ख' शब्दों में इतनी बड़ी शक्ति है। इन शब्दों का मन पर ऐसा प्रभाव– एक अनुकूल और दूसरा प्रतिकूल–क्यों पड़ा, इसकी व्याख्या मनोविज्ञान ही कर सकता है। भाषा की उत्पत्ति का आधार भी मनोविज्ञान ही है, उसकी समाप्ति भी मनोविज्ञान में ही होती है, अर्थात्, जब वक्ता किसी उद्देश्य से किसी वाक्य का प्रयोग करता है तो वह श्रोता में तदनुरूप प्रतिक्रिया उत्पन्न करना चाहता है जो श्रोता द्वारा अर्थबोध के बाद ही उत्पन्न होती है। तात्पर्य कि वक्ता के मन (मस्तिष्क)

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 51 8/18/2021 12:21:36 PM

से प्रेरित अर्थ भाषा के माध्यम से श्रोता के मन (मस्तिष्क) तक पहुँचकर तद्रूप भाव उत्पन्न करता है। इस तरह भाषा वक्ता और श्रोता के मन (मस्तिष्क) को एक सूत्र में बाँधने का माध्यम है। सच पूछिए तो मन के अभाव में भाषा की न तो उत्पत्ति संभव है और न ग्रहण। यही कारण है कि अविकसित चेतना–सम्पन्न जीवों में भाषा का विकास नहीं दिखता।

अर्थ–परिवर्तन के कारणों को अच्छी तरह समझने के लिए भी मनोविज्ञान का परिचय जरूरी है। क्यों एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं? क्यों कालान्तर में किसी शब्द का अर्थ बदल जाता है? यह सब जानने का साधन मनोविज्ञान ही है। अर्थ–परिवर्तन के कारणों पर विचार करने के प्रसंग में हम देखेंगे कि किस प्रकार मनोवैज्ञानिक कारणों से अर्थ नियंत्रित होते हैं। इससे स्पष्ट है कि मनोविज्ञान और भाषाविज्ञान का बड़ा अन्तरंग संबंध है।

2. शरीरविज्ञान और भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान का शरीरविज्ञान से गहरा संबंध है। भाषा के लिए कम–से–कम दो व्यक्ति आवश्यक हैं– एक वक्ता और दूसरा श्रोता। कभी–कभी मनुष्य अकेले अपने–आप भी बोलता है, किंतु वह सामान्य स्थिति नहीं है। वक्ता और श्रोता की दृष्टि से भाषा की प्रक्रिया इस प्रकार होती है– प्रथमतः वक्ता के मन में विचार उत्पन्न होता है; तब वह विचार वागिन्द्रियों की सहायता से अभिव्यक्त होता है; फिर वायुतरंगों से श्रोता के पास पहुँचता है और उसके कानों में प्रवेश कर मन (मस्तिष्क) तक जाता है जहाँ उसकी सार्थकता का बोध होता है। इस प्रकार वक्ता से श्रोता तक पहुँचने में तीन प्रक्रियाएँ काम में आती हैं– ध्वनन, प्रेषण और ग्रहण । ध्वनन या उच्चारण का संबंध ध्वनि के निर्माणपक्ष से है और ग्रहण का उसके बोधपक्ष से। मन में उत्पन्न भाव वागिन्द्रियों की सहायता से अभिव्यक्त होते हैं, यह ठीक–ठीक समझने के लिए वागिन्द्रियों की रचना, स्थिति और कार्य से अवगत होना जरूरी है। किस तरह फेफड़ों से निकलती हुई वायु स्वरतंत्री, कंठ, तालु, नासिका–विवर आदि स्थानों से टकराकर विभिन्न ध्वनियों का रूप धारण करती है, यह शरीर की रचना और क्रिया के ज्ञान से सम्बद्ध है। वही वायु कहीं 'क' बन जाती है और कहीं 'च', कहीं 'द' तो कहीं 'व', कहीं स्वर तो कहीं व्यंजन, कहीं अनुनासिक तो कहीं अनुस्वार। इस तथ्य की जानकारी के लिए हमें शरीरविज्ञान की शरण में जाना पड़ता है।

एक बड़ी मनोरंजक बात यह है कि जिन्हें वागिन्द्रिय कहते हैं वे वस्तुतः वागिन्द्रियाँ नहीं हैं, उनका प्राकृतिक उपयोग दूसरा है; जैसे– होंठ मुखविवर के दरवाजे हैं, जिन्हें बंद करके हम मुख की सुरक्षा करते हैं। अगर ये दरवाजे बंद नहीं रहें तो कोई भी चीज मुँह के भीतर चली जाये और स्वास्थ्य ही नहीं, प्राणों के लिए भी घातक बन जाये। इसी तरह दाँत भोजन के लिए छुरी और सिल का काम करते हैं। आगे के दाँतों से हम भोजन को काटने का काम लेते हैं और बगल के दाँतों से उसे चबाकर पीसने का। यह कटाई और पिसाई भोजन को पचाने के लिए अनिवार्य है। जीभ का काम स्वाद को ग्रहण करना है। फेफड़ों का काम है श्वास–प्रश्वास की क्रिया द्वारा जीवन–धारण। इसीलिए जो प्राणी नहीं भी बोलते हैं उन्हें भी ये इन्द्रियाँ उपलब्ध हैं। मनुष्य की बौद्धिक विशेषता का यह असाधारण प्रमाण है कि उसने इन जीवन धारणोपयोगी इन्द्रियों से भाषा जैसी आश्चर्यजनक वस्तु का आविष्कार कर लिया जो उसकी समस्त उपलब्धियों का साधन बनी। ध्वनि की विशेषताओं और बारीकियों को भली–भाँति समझने के लिए इन इन्द्रियों का ज्ञान आवश्यक है। स्वर का आरोह–अवरोह, ह्रस्वता–दीर्घता, तारता–मन्द्रता कैसे संभव होती है, यह शरीरविज्ञान न जाननेवाला नहीं कर सकता। उसी गले से सामान्य बोली निकलती है और उसी गले से मन को मुग्ध कर देने वाली संगीत की मधुर लहरी। जिस प्रकार शब्द के

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 52 8/18/2021 12:21:36 PM

उच्चारण के लिए वागिन्द्रियों का ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार शब्द के ग्रहण के लिए श्रवणेन्द्रियों का ज्ञान। कान के द्वारा ध्वनि किस प्रकार भीतर जाती है, कहाँ टकराती है, कैसे सुनी जाती है, अर्थात् कैसे उससे अर्थबोध होता है– ये सारी बातें श्रवणेन्द्रिय के निर्माण और कार्य को जानने से ही समझ में आ सकती हैं। इस तरह स्पष्ट है ध्वनन (उच्चारण) और श्रवण का ज्ञान शरीरविज्ञान के परिचय के अभाव में संभव नहीं है।

3. भौतिकी और भाषाविज्ञान

वक्ता और श्रोता के बीच कोई सम्पर्क नहीं होता। फिर, वक्ता की ध्वनि श्रोता तक कैसे पहुँचती है? बेतार के आविष्कार को हम आश्चर्य की दृष्टि से देखते हैं, किंतु छोटे पैमाने पर हम प्रतिदिन बेतार से काम लिया करते हैं। अन्तर यही है कि बेतार से दूर की ध्वनि सुनायी देती है और बोलते समय हम परस्पर निकट होते हैं, किंतु सिद्धान्त की दृष्टि से दोनों में कोई फर्क नहीं है। यदि बिना किसी संपर्क सूत्र के ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान तक निकट में पहुँचायी जा सकती है तो विस्तार कर देने पर वह दूर के लिए भी संभव है। समीपता और दूरी तो सापेक्ष और गौण बातें हैं। प्रश्न है कि ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती कैसे है? मेरे मुख से निकली ध्वनि आपके कानों तक किस माध्यम के द्वारा पहुँचती है, इस प्रश्न का समाधान भौतिकी करती है। ध्वनि या प्रकाश के संचरण का सिद्धान्त भौतिकी द्वारा निर्धारित होता है। जिसे हम मुक्त और शून्य आकाश समझते हैं, उसमें 'ईथर' नाम का एक पदार्थ है जो ध्वनि–तरंगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का काम करता है। वह 'ईथर' क्या है? उस पर ध्वनि–तरंगों का संचरण कैसे होता है ? ध्वनि की गति कितनी तीव्र है? गति की तीव्रता घटती–बढ़ती है या नहीं? यदि घटती–बढ़ती है तो क्यों? जो ध्वनि यों थोड़ी दूर के बाद ही नहीं सुनायी देती, वही यांत्रिक सहायता से हजारों मील दूर तक (जैसे रेडियो में) कैसे सुनी जा सकती है? इन जिज्ञासाओं का समाधान भौतिकी से ही होता है। भाषा के प्रेषण–पक्ष का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए भौतिकी का ज्ञान अनिवार्य है। उसके अभाव में हम ध्वनि के संचरण पर आश्चर्य कर सकते हैं, पर उसका समाधान नहीं कर सकते।

4. व्याकरण और भाषाविज्ञान

व्याकरण किसी भाषा के तात्कालिक स्वरूप और नियमों से सम्बद्ध है, परन्तु वह यह नहीं कहता कि कोई रूप क्यों, कैसे और कब बना। वह केवल भाषा संबंधी 'क्या' का उत्तर दे सकता है, 'क्यों' का नहीं। इसीलिए व्याकरण को विवरणात्मक या वर्णनात्मक भाषाविज्ञान कहते हैं, क्योंकि उसका काम केवल विवरण या वर्णन प्रस्तुत कर देना है। दूसरे शब्दों में, इसे यों कह सकते हैं कि जिस तरह भाषा के नियमों की जानकारी के लिए व्याकरण की आवश्यकता है, उसी तरह व्याकरण के नियमों की जानकारी और व्याख्या के लिए भाषाविज्ञान की आवश्यकता है।

व्याकरण का संबंध भाषा–विशेष से होता है और उसमें भी काल–विशेष से, अर्थात् व्याकरण किसी एक भाषा के किसी एक काल में प्रचलित रूपों को नियमबद्ध करता है। इसके प्रतिकूल भाषाविज्ञान का संबंध भाषामात्र से अर्थात् सभी भाषाओं से है उसके नियम भी व्यापक और स्थायी होते हैं। व्याकरण भी तुलनात्मक हो सकता है; किन्हीं दो भाषाओं– जैसे, संस्कृत और लातिन की तुलना की जा सकती है, किंतु वह तुलना भी भाषा–विशेष की ही होगी और साथ ही काल–विशेष की भी। तात्पर्य कि तुलनात्मक रूप से व्याकरण की सीमा बनी रहती है।

जैसा ऊपर कहा गया है, व्याकरण विवरणात्मक या वर्णनात्मक होता है, किंतु भाषाविज्ञान व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक होता है, अर्थात् वह भाषा–संबंधी नियमों और परिवर्तनों में कार्य–कारण स्थापित करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ, हिन्दी

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 53 8/18/2021 12:21:37 PM

व्याकरण के अनुसार 'आय' शब्द स्त्रीलिंग क्यों हो जाता है जबकि 'व्यय' पुंलिंग है? इसका समाधान भाषाविज्ञान करता है। 'आय' शब्द के लिंग पर फारसी के 'आमद' शब्द का प्रभाव है जो स्त्रीलिंग है। 'आमद' का स्त्रीलिंग में प्रयोग करने वाली जबान ने 'आय' का प्रयोग करना शुरू किया तो पूर्व–संस्कार से उसको भी स्त्रीलिंग बना दिया, यद्यपि प्रकृति–प्रत्यय की दृष्टि से उसे पुलिंग ही होना चाहिए, जैसा समय, उदय, अन्वय, प्रत्यय, उपाय आदि में देखा जाता है। इसी प्रकार हिन्दी व्याकरण 'पुस्तक' शब्द को स्त्रीलिंग कह देता है, पर उसका कारण नहीं बताता। संस्कृत के नपुंसकलिंग 'पुस्तक' शब्द का हिन्दी में सामान्यतः पुलिंग में प्रयोग होना चाहिए, किंतु अरबी की 'किताब' के प्रभाव–स्वरूप 'पुस्तक' शब्द का स्त्रीलिंग में व्यवहार होने लगा। यही कारण है कि भाषाविज्ञान को व्याकरण का व्याकरण कहते हैं, अर्थात् वह व्याकरण द्वारा निर्दिष्ट नियमों का सकारण विवेचन करता है।

5. साहित्य और भाषाविज्ञान

साहित्य एक प्रकार से भाषा का स्थायी रूप है, इसलिए भाषाविज्ञान के अध्ययन का बहुत महत्वपूर्ण आधार है। जिस भाषा का साहित्य नहीं है, उसके भाषावैज्ञानिक अध्ययन का अवकाश भी कम है; उस भाषा का कम–से–कम ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन तो संभव नहीं ही है। वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं का ऐतिहासिक दृष्टि से विकास देखना–समझना इसीलिए संभव है कि उनमें विस्तृत और सम्पन्न साहित्य उपलब्ध है, अन्यथा इन भाषाओं की भी वही स्थिति होती जो मुंडा, संथाली या संसार की ऐसी हजारों अन्य भाषाओं की है। सैकड़ों भाषाएँ, जो भाषावैज्ञानिक दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती थीं, आज लुप्त हो चुकी हैं और उनका साहित्य न होने से उनके अध्ययन का मार्ग भी अवरुद्ध है। प्राचीन अंग्रेजी से मध्यकालीन अंग्रेजी और मध्यकालीन से आधुनिक अंग्रेजी में क्या अन्तर है और वह कब हुआ, इसका विवेचन उपलब्ध साहित्य के आधार पर ही हो पाता है। हमारे यहाँ ऋग्वेद में प्रयुक्त भाषा के पहले भी कोई भाषा रही होगी; किंतु उसका साहित्य प्राप्य न रहने से उसके संबंध में आज कुछ भी कहने में हम असमर्थ हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, तुलनात्मक दृष्टि से भी साहित्य भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। संस्कृत, ग्रीक, लातिन, ईरानी, स्लाविक या यूरोप की अनेक अन्य भाषाएँ, जिन्हें आज हम भारत–यूरोपीय परिवार में रखते हैं, एक ही स्रोत से निकली हैं, यह जानना साहित्य के द्वारा ही संभव हो पाया है। संभव है, इस परिवार की और भी भाषाएँ विभिन्न स्थानों में प्रयुक्त होती रही हों, किंतु आज उनका कोई साहित्य उपलब्ध न होने से उनके विषय में कुछ भी कहना असंभवप्राय है। तात्पर्य कि भाषा के ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री मुख्यतः साहित्य ही प्रस्तुत करता है।

जहाँ साहित्य भाषाविज्ञान के अध्ययन में उपयोगी है, वहाँ भाषाविज्ञान भी साहित्य के लिए कम उपयोगी नहीं है। प्राचीन साहित्य में बहुत सारे शब्द ऐसे मिलते हैं जिनका अर्थ आसानी से समझ में नहीं आता। कभी–कभी ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही शब्द पहले दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होता था और आज दूसरे अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। जैसे 'असुर' शब्द का अर्थ देवता से बदलकर राक्षस हो गया। ऐसे स्थलों का समाधान भाषाविज्ञान की सहायता से सुकर हो जाता है। भाषाविज्ञान ध्वनि–परिवर्तन या अर्थपरिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कर संदेह का निवारण कर देता है। इतना ही नहीं, भाषावैज्ञानिक आधार पर साहित्य का विश्लेषण करने के लिए शैलीविज्ञान नामक स्वतंत्र शास्त्र का विकास हो गया है

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 54 8/18/2021 12:21:37 PM

6. इतिहास और भाषाविज्ञान

इतिहास और भाषाविज्ञान एक–दूसरे के लिए बहुत उपादेय और सहायक हैं। इतिहास के निर्माण में भाषाविज्ञान से बहुत सहायता मिलती है। प्राचीन अभिलेख, शिलालेख, सिक्के आदि के पढ़ने पर ऐसे तथ्य सामने आते हैं जो इतिहास के निर्माण का आधार प्रस्तुत करते हैं या इतिहास की टूटी कड़ियाँ जोड़ने में सहायक बनते हैं। उदाहरणार्थ, उत्तरी सीरिया में प्राप्त 'हित्ती' की कीलाक्षर लेखपट्टियों को पढ़ने के बाद यह निश्चय हो गया कि 'हित्ती' भारत–यूरोपीय परिवार की अन्यतम भाषा थी। जब तक वे लेखपट्टियाँ नहीं मिली थीं, तब तक न 'हित्ती' के विषय में जानकारी थी और न यही कि वह भारत–यूरोपीय परिवार की भाषा है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों से प्राप्त अभिलेख अब तक नहीं पढ़े जा सके, इसलिए उनसे सिंधु–सभ्यता पर जो प्रकाश पड़ सकता था, वह नहीं पड़ सका है।

इस प्रकार हमने देखा कि भाषाविज्ञान इतिहास का उपकारक है, किंतु इतिहास भी भाषाविज्ञान के लिए कम उपयोगी नहीं है। भाषाविज्ञान की अनेक समस्याओं का समाधान इतिहास से ही होता है। उदाहरणार्थ, हिन्दी में अरबी, फारसी या अंग्रेजी शब्दों के बाहुल्य का कारण इतिहास ही बताता है। शताब्दियों के व्यापारिक संपर्क और राजनीतिक सत्ता के कारण ये शब्द आए, यह हम इतिहास से ही जानते हैं। ऐसा ही अंग्रेजी भाषा में लातिन या फ्रांसीसी शब्दों के आधिक्य का कारण इंग्लैंड पर बहुत दिनों तक रोमनों और नॉर्मनों का प्रभुत्व है। फारसी आर्य–परिवार की भाषा है और अरबी सामी–परिवार की। दोनों में कोई संबंध नहीं है, किंतु सातवीं शताब्दी के बाद ईरान अरबों द्वारा पराजित हुआ और सारा देश इस्लाम कबूल करने को बाध्य हुआ। हिन्देशिया की भाषा में बहुत सारे शब्द संस्कृत के हैं जो इस बात का सूचक है कि किसी दिन वहाँ तक संस्कृत का प्रभाव था और जो वृहत्तर भारत के इतिहास से परिचित हैं वे जानते हैं कि कभी वह भाग भारत का उपनिवेश था। यह जान लेने पर हिन्देशिया की भाषा में संस्कृत शब्दों के बाहुल्य का समाधान अनायास हो जाता है।

7. भूगोल और भाषाविज्ञान

जिस प्रकार इतिहास से भाषाविज्ञान का निकट का संबंध है, उसी प्रकार भूगोल से भी। संसार की हजारों भाषाओं का सीमा–निर्धारण भूगोल की सहायता से ही किया जा सकता है। यदि भूगोल का ज्ञान न हो तो किस भाषा की सीमा कहाँ तक मानेंगे, यह कहना कठिन है। जहाँ भाषाओं की सीमाएँ बहुत थोड़ी दूर पर बदलती हैं, वहाँ तो यह कार्य और भी कठिन हो जाता है। सीमावर्ती भाषाओं में दो–दो, तीन–तीन भाषाओं के लक्षण दिखने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें किसके अन्तर्गत रखें, यह निर्णय करने के लिये जहाँ भाषावैज्ञानिक साधनों को काम में लाया जाता है, वहाँ भौगालिक स्थिति को भी ध्यान में रखना पड़ता है। किसी देश की जलवायु का प्रभाव वहाँ के निवासियों के शरीर पर और उस के उच्चारण पर पड़ता है। ठंडे देशों में रहने वालों के उच्चारण की अस्पष्टता का कारण यह बताया जाता है कि अधिक ठंड के कारण उन्हें मुँह खोलने में कठिनाई होती है, अतः वे ध्वनियों का उचारण साफ–साफ नहीं कर पाते। इसके प्रतिकूल गर्म देशों में रहने वाले आसानी से मुँह खोल पाते हैं, स्वभावतः उनका उच्चारण अपेक्षाकृत स्पष्ट होता है। अंग्रेजी में अनेक ध्वनियों पर स्खलित होती हुई जीभ कुछ ही ध्वनियों का स्पष्टता से उच्चारण कर पाती है और अनेक ध्वनियाँ लुप्त–सी हो जाती हैं। इसका कारण देश की अतिशीतल जलवायु ही है। किसी भाषा का दूर तक विस्तार क्यों होता है और कोई भाषा छोटी सीमा में ही क्यों घिरी रह जाती है, इसका समाधान भी भूगोल ही करता है। आवागमन की सुविधा और आबादी की सघनता के कारण समतल मैदान में भाषा के दूर तक फैलने का अधिक अवकाश रहता है। हिन्दी के व्यापक प्रसार का कारण इस भू–भाग का समतल होना

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 55 8/18/2021 12:21:37 PM

भी है। इसके विपरीत हम देखते हैं कि दुर्गम पर्वतों, वनों और मरुभूमियों में भाषा के विस्तार का अवकाश कम होता है, क्योंकि न तो वहाँ के निवासी आसानी से बाहर जा सकते हैं और न बाहर के लोग वहाँ आसानी से पहुँच सकते हैं। इसी कारण ऐसी भाषाओं में परिवर्तन भी कम और धीमी गति से होता है। बिहार के पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाली मुंडा, संथाल आदि जातियों की भाषा में हिन्दी, बंगला आदि की अपेक्षा अधिक स्थिरता है, क्योंकि उनका बाहर के लोगों से संपर्क नहीं रहा है। अब धीरे–धीरे संपर्क बढ़ने से परिवर्तन की संभावनाएँ भी बढ़ गयी हैं। इससे स्पष्ट है कि भाषा के निर्माण, परिवर्तन और प्रसार पर भूगोल का प्रभाव पड़ता है। बहुत सारे शब्दों के अर्थ पर भी भूगोल का प्रभाव दिखायी देता है। उदाहरणार्थ, केसर को संस्कृत में 'काश्मीर' कहते हैं जो स्पष्ट ही इस बात का सूचक है कि केसर की उपज आरंभ में कश्मीर में होती थी। आज भी केसर उस सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सका है। संस्कृत में उड़द का एक नाम 'काम्बोजी' है जो इस बात की ओर इंगित करता है कि वह पहले–पहल 'कम्बोज' से आया। भारत के पूर्ववर्ती प्रदेश का नाम 'असम' इसीलिए पड़ा कि वहाँ की भूमि पहाड़ी होने से सम नहीं है। ये रोचक उदाहरण भाषा के विकास में भूगोल के प्रभाव को निर्भ्रान्त रूप से व्यक्त करते हैं।

8. मानवविज्ञान और भाषाविज्ञान

जैसा नाम से ही स्पष्ट है, मानवविज्ञान की उत्पत्ति और विकास का विवेचन मानवविज्ञान करता है। बनावट के अनुसार मानव–जाति के कितने भेद हैं, उनका विस्तार कैसे हुआ, उनकी क्या विशेषताएँ हैं, आदि बातें मानवविज्ञान में निरूपित होती हैं। मनुष्य आदिम अवस्था से अब तक कैसे पहुँचा है? इस विकासक्रम में उसके रहन–सहन, भाषा, कला आदि का उस पर क्या प्रभाव पड़ा है– यह हम मानवविज्ञान के द्वारा जानते हैं। मनुष्य के विकास में उसकी भाषा का भी महत्वपूर्ण योग है, यह कहना पुनरुक्ति मात्र होगा। मनुष्य का विकास दो प्रकार का होता है– एक तो प्राकृतिक और दूसरा सांस्कृतिक। उसके सांस्कृतिक या संस्कार–जन्य विकास में भाषा का बहुत बड़ा हाथ है। मानवविज्ञानी सुदूरवर्ती आदिम सभ्यता का अध्ययन करना चाहता है और उस प्रसंग में उसे ऐसी भाषाएँ मिलती हैं जो अज्ञात हो सकती हैं। जब तक वह उन भाषाओं का अध्ययन नहीं कर लेता तब तक उसके निष्कर्ष संदिग्ध बने रहते हैं। यहाँ भाषाविज्ञान मानवविज्ञान की सहायता करता है। बदले में मानवविज्ञान भी ऐसी सामग्री देता है जो किसी भाषा की रहस्यपूर्ण गुत्थियों को सुलझाने में सहायक हो सके। प्रजाति (रेस) और भाषा का कोई संबंध है या नहीं? प्रजातीय सम्मिश्रण का भाषा के विकास में क्या महत्व है? ऐसे अनेक प्रश्नों का समाधान मानवविज्ञान की सहायता से ही किया जा सकता है। भाषा का संबंध मानव से है और मानव के अध्ययन का प्रयास जिस शास्त्र में होगा, वह भाषाविज्ञान के निकट आ जायेगा।

9. समाजविज्ञान और भाषाविज्ञान

समाजविज्ञान में समाज का अध्ययन होता है, अर्थात् सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य के आचार, विचार, व्यवहार आदि का विश्लेषण किया जाता है। व्यक्ति और समाज का संबंध, व्यक्ति पर समाज का प्रभाव, समाज के निर्माण में व्यक्ति का प्रभाव आदि विषयों की चर्चा समाजविज्ञान में है। भाषा भी सामाजिक सम्पत्ति है। वह समाज में ही उत्पन्न और समाज में ही विकसित होती है। मनुष्य के आचार–विचार आदि में भाषा का कभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव रहता है। इस तरह भाषाविज्ञान समाजविज्ञान के बहुत समीप आ जाता है।

भाषा से समाज–व्यवस्था का बहुत दूर तक नियमन होता है। सामान्य शिष्टाचार से लेकर क्रान्तिकारी परिवर्तन तक भाषा के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। भाषा के द्वारा

समाज की गतिविधि को बहुत दूर तक नियंत्रित किया जा सकता है, यह युद्ध या क्रांति के समय स्पष्ट हो जाता है। समाजविज्ञान और भाषाविज्ञान दोनों मानव–जाति से ही सम्बद्ध हैं; अन्तर यह है कि समाजविज्ञान का क्षेत्र अधिक व्यापक है, उसमें सामाजिक दृष्टि से मनुष्य के समस्त क्रिया–कलाप का, जिसमें भाषा भी है, विश्लेषण किया जाता है। भाषाविज्ञान केवल भाषा तक सीमित है। यह अन्तर मुख्यतः मात्रा का ही है, अन्यथा दोनों समाज–सापेक्ष हैं।

10. दर्शन और भाषाविज्ञान

भाषा का, विशेषतः अर्थविज्ञान का, दर्शन से गहरा संबंध है। यूरोप में भाषा–संबंधी जिज्ञासा का आरंभ दर्शन से ही हुआ। ग्रीस में सबसे पहले भाषा का विवेचन दार्शनिकों द्वारा किया गया। भारत में भी वैयाकरणों का स्फोटवाद, बौद्धों का अपोहवाद, नैयायिकों का जातिवाद, मीमांसकों का शब्द–नित्यत्ववाद आदि सिद्धान्त दर्शन पर ही आश्रित हैं। वाणी के चार प्रकारों– परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी–का आधार भी दार्शनिक ही है। जहाँ अन्य दर्शनों ने अर्थ पर अधिक ध्यान दिया है, वहाँ तंत्र ने शब्द पर। वर्णों के विशिष्ट विन्यास और उनसे अनेक प्रकार के अतिलौकिक प्रभावों की कल्पना तंत्रशास्त्र में मिलती है। योग में भी, विशेषतः षट्चक्रों की चर्चा के प्रसंग में, वर्णों पर बहुत कुछ कहा गया है शब्द और अर्थ की यह चर्चा यद्यपि आधुनिक भाषाविज्ञान की सीमा में बहुत दूर तक नहीं आती, तथापि वह सर्वथा निरुपयोगी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार संक्षेप मे हमने देखा कि भाषाविज्ञान का ज्ञान की दूसरी शाखाओं से क्या संबंध है और वे एक–दूसरे के अध्ययन में कहाँ तक सहायक हो सकती हैं। भाषाविज्ञान को पूरी तरह समझने के लिए इन सभी विषयों का थोड़ा–बहुत ज्ञान आवश्यक है।

बोध प्रश्न

(2) सही विकल्प चुनिए–

भाषाविज्ञान का निम्नलिखित में किससे गहरा सम्बन्ध है?

(क) व्याकरण (ख) काव्य (ग) महाकाव्य (घ) नाटक

(3) ऊपर पढ़े गए पाठ के आधार पर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

(क) भाषा का व्यवस्थित ज्ञान.................. कहलाता है।

(ख) ध्वनि के सम्प्रेषण की दृष्टि से उसका सम्बन्ध.................. से है।

(ग) .... विज्ञान में भाषा–विशेष की अर्थविभेदक अथवा प्रकार्यात्मक ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है।

(घ) पदों एवं पदांशों के विकास, उनके कारण आदि के अध्ययन .... के विषय हैं।

(ङ.) एक रूपतत्व के विभिन्न रूपों को .... कहते हैं।

(च) भाषा के लिए कम–से–कम दो व्यक्ति आवश्यक हैं– एक वक्ता और दूसरा............।

(छ) भाषा के प्रेषण–पक्ष का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए ....का ज्ञान अनिवार्य है।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम कह सकते हैं कि भाषा एक व्यवस्था है और उस व्यवस्था का व्यवस्थित ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाता है। भाषा विज्ञान के अर्थ,

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 57 8/18/2021 12:21:37 PM

अध्ययन क्षेत्र, प्रयोजन एवं अंगो को स्पष्ट करने के उद्देश्य से भाषाविज्ञान को अनेक विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि जिस विज्ञान के द्वारा मानवीय भाषा के अंगों, उपांगों अवं उसके स्वरूप का विस्तृत तथा वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है, उसे भाषाविज्ञान कहते हैं। भाषा विज्ञान के विभिन्न अंगों में ध्वनि विज्ञान, रूपविज्ञान वाक्य विज्ञान तथा अर्थविज्ञान शामिल हैं। भाषा के महत्वपूर्ण अंगों के अतिरिक्त ज्ञान की अन्य शाखाओं से भी इसका गहरा सम्बन्ध है, जिसमें मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान, भौतिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, साहित्य तथा दर्शन आदि विषय शामिल हैं। भाषा विज्ञान को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए इन विषयों का भी थोड़ा –बहुत ज्ञान आवश्यक है। इसप्रकार, भाषा विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय है, जिसके अध्ययन से भाषा, भाषा–रूप, भाषा–प्रक्रिया का अध्ययन होता है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. भाषाविज्ञान किसे कहते हैं? कुछ परिभाषाओं से इसे स्पष्ट कीजिए।
2. भाषा विज्ञान के प्रमुख अंगों का उल्लेख कीजिए।
3. भाषाविज्ञान ज्ञान की अन्य शाखाओं से किस प्रकार सम्बन्धित है, स्पष्ट कीजिए।
4. भाषाविज्ञान और व्याकरण में क्या अंतर है?

3.6 उपयोगी पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान की भूमिका– देवेन्द्रनाथ शर्मा
2. भाषा विज्ञान– भोलानाथ तिवारी
3. सामान्य भाषा विज्ञान– बाबूराम सक्सेना
4. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास– उदयनारायण तिवारी
5. भाषा और समाज– रामविलास शर्मा
6. भाषा विज्ञान और भाषा शास्त्र– कपिलदेव द्विवेदी

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) ग (ii) क (iii) घ (iv) क (v) ग।
2. क
3. क. भाषा विज्ञान
   ख. भौतिक विज्ञान
   ग. स्वनिम विज्ञान
   घ. रूपविज्ञान
   ङ. संरूप
   च. श्रोता
   छ. भौतिकी।

अभ्यास

इकाई के आधार पर प्रश्नों के उत्तर स्वयं लिखने का प्रयास कीजिए।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 58 8/18/2021 12:21:37 PM

इकाई 4 : स्वन विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भाषा ध्वनि और प्रतीकों की संरचना है

4.2.1 भाषिक ध्वनि

4.3 स्वन विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ

4.4 वागिन्द्रियाँ

4.5 वाग्यंत्र का वर्गीकरण

4.6 ध्वनियों के भेद

4.6.1 स्वर तथा व्यंजन में अंतर

4.6.2 स्वर तथा व्यंजन की परिभाषाएँ

4.7 स्वरों का वर्गीकरण

4.8 मूल स्वर और संयुक्त स्वर

4.9 व्यंजनों का वर्गीकरण

4.9.1 स्थान के आधार पर

4.9.2 प्रयत्न के आधार पर

4.9.2.1 आभ्यन्तर प्रयत्न

4.9.2.2 बाह्यप्रयत्न

4.9.2.3 अनुस्वार और अनुनासिक में अंतर

4.10 द्वित्व व्यंजन और संयुक्त व्यंजन

4.11 सारांश

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि का अर्थ समझ सकेंगे;
- ध्वनि उत्पादन के अवयवों को जान सकेंगे;
- ध्वनियों के भेद से परिचित हो सकेंगे;
- स्वर और व्यंजन की परिभाषाएँ और अंतर बता सकेंगे;
- स्वरों और व्यंजनों के उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर होने वाले वर्गीकरण को जान सकेंगे; और
- भाषा की विभिन्न ध्वनियों का ठीक–ठीक ज्ञान प्राप्त करके उसका सही उच्चारण सीख सकेंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4.1 प्रस्तावना

ध्वनि विज्ञान को ही अब स्वनविज्ञान के नाम से जाना जाता है। स्वनविज्ञान मानवीय उच्चारण अवयवों की औच्चारिक कार्यविधि के आधार पर वाग्ध्वनियों के भौतिक गुणों का विवेचन करता है। उच्चारण स्थान और प्रयत्न का ठीक–ठीक ज्ञान होने से किसी भी ध्वनि का शुद्ध उच्चारण सीखा जा सकता है। स–श और व–ब का अंतर समझा जा सकता है। सर (तालाब) को शर (बाण) कहने के अनर्थ से बचा जा सकता है। विश्व की अन्य भाषाओं को सीखने में भी इससे मदद मिलती है। वाग्यंत्र की रचना और उसके कार्यों को जानने से हम विदेशी ध्वनियों का विश्लेषण कर सकते हैं। सूक्ष्म विश्लेषण के कारण वाग्यंत्र के द्वारा उन ध्वनियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म उच्चारण कर सकते हैं। भाषा मात्र के सभी अंगों उपांगों का अध्ययन करना भाषा विज्ञान का विषय है। सामान्यतया भाषा के आंतरिक और बाह्य दो स्तर होते हैं। बाह्य के अंतर्गत ध्वनि, पद और वाक्य होते हैं तथा आंतरिक के अंतर्गत अर्थ आता है। इसके आधार पर भाषा विज्ञान के चार प्रमुख अंग या शाखाएँ निर्धारित की गई हैं–ध्वनि विज्ञान या स्वन विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान और अर्थ विज्ञान। भाषा–ध्वनियों के अध्ययन–विश्लेषण और वर्गीकरण करने वाले विज्ञान का अभिधान ध्वनि विज्ञान है। ध्वनिविज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमें भाषाई ध्वनियों का बारीकी से वर्णन, विश्लेषण व वर्गीकरण किया जाता है। विश्व की समस्त भाषाओं में प्राप्त ध्वनियों के सूक्ष्म अन्तरों को ज्ञात करना, इन ध्वनियों के उच्चारण स्थान और उनके लिए अपेक्षित प्रयत्नों को जानना तथा उनका स्पष्ट उल्लेख करना और इन ध्वनियों को स्थान और प्रयत्न की दृष्टि से वर्गीकृत करना ध्वनिविज्ञान का उद्‌देश्य एवं क्षेत्र है।

4.2 भाषा ध्वनि और प्रतीकों की संरचना है

भाषा में ध्वनि का क्या महत्व है,–यह जानने के लिए संक्षेप में भाषा की एक दो परिभाषाओं को जानना आवश्यक है। **भोलानाथ तिवारी** के अनुसार 'भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से निःसृत वह सार्थक ध्वनि समष्टि है, जिसका विश्लेषण व अध्ययन हो सके।'

स्वीट के अनुसार 'ध्वन्यात्मक शब्दों के द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।'

देवेंद्रनाथ शर्मा के अनुसार 'उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।' इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भाषा ध्वनि संकेत है, भाषा ध्वनि और प्रतीकों की संरचना है। किसी भी भाषा में ध्वनि के सापेक्ष कुछ प्रतीक होते हैं। ये प्रतीक ही किसी भाषा को अन्य भाषा से अलग करते हैं–जैसे –अ,क,त, प और A,K,T,P आदि। कथन बनने की प्रक्रिया में कई तत्व शामिल होते हैं–ध्वनि, प्रतीक या वर्णमाला, शब्द, वाक्य और अर्थ। इन सभी का मिला–जुला संगठन भाषा है।

4.2.1 भाषिक ध्वनि

सामान्यतः ध्वनि शब्द का प्रयोग मनुष्य द्वारा उच्चरित प्रत्येक आवाज के लिए किया जाता है। किन्तु रोना, चीखना, हँसना, सीटी बजाना आदि ध्वनियाँ भाषिक ध्वनियों की कोटि में नहीं आतीं। भाषिक ध्वनियाँ केवल उन्हीं को कहते हैं, जिनके संयोग से अर्थपूर्ण (सार्थक) शब्दों का निर्माण होता है। भाषा विज्ञान में इसी भाषिक ध्वनि को स्वन कहा जाता है और ध्वनि विज्ञान को स्वनविज्ञान। स्वन विज्ञान वह

विज्ञान है जिसके अंतर्गत विश्लेषण योग्य भाषा–ध्वनियों का अध्ययन होता है। केवल अर्थमूलक ध्वनि अनुक्रम (sound sequence) को भाषा कहा जाता है, इसलिए सिद्धांततः स्वनविज्ञान का सम्बन्ध ऐसी ध्वनियों से है, जो मनुष्य के उच्चारण अवयव से निकलती है तथा जिससे भाषा में निहित व्यवस्थित संदेश का सम्प्रेषण सम्भव है। डॉ. श्याम सुन्दर दास ने भाषिक ध्वनि के सम्बन्ध में कहा है–ध्वनि शब्द से भाषाविज्ञान में मानव–मुख से निःसृत ध्वनियों को ही ग्रहण करना चाहिए; अन्य अव्यक्त, अस्पष्ट ध्वनियों को नहीं। अर्थात् कर्णगोचर सभी ध्वनियाँ भाषाविज्ञान के अध्ययन की परिधि में नहीं आतीं। भाषिक ध्वनि मनुष्य के मुख से नियत स्थान तथा निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रवणेंद्रिय द्वारा ग्रहीत होती है।

बोध प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (क) भाषा .... संकेत है।

   (ख) भाषा ध्वनि और प्रतीकों की .... है।

   (ग) किसी भी भाषा में ध्वनि के सापेक्ष कुछ .... होते हैं।

   (घ) ये प्रतीक ही किसी भाषा को अन्य भाषा से .... करते हैं।

2. निम्नलिखित वाक्यों को पूरा कीजिए।

   (क) भाषिक ध्वनियों केवल उन्हीं को कहते हैं, जिनके संयोग से .... शब्दों का निर्माण होता है।

   (ख) केवल अर्थमूलक .... को भाषा कहा जाता है।

   (ग) केवल अर्थमूलक ....को भाषा कहा जाता है।

   (घ) कर्णगोचर सभी ध्वनियाँ .... के अध्ययन की परिधि में नहीं आतीं।

4.3 स्वन विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ

चूँकि ध्वनियाँ बोली व सुनी जाती हैं अतः स्वनविज्ञान उत्पादन एवं ग्रहण दो आधारों पर निर्भर है। इन दोनों के अतिरिक्त ध्वनि का तीसरा क्षेत्र वक्ता के मुख से बाहर तथा सुनने वाले अर्थात् श्रोता के कानों के पूर्व होता है। बोले जाने के बाद ध्वनि तरंग मुख के बाहर वायुकणों को विक्षुब्ध करती हुई श्रोता के कानों तक संवहित होती है। इसप्रकार उच्चारण, प्रसरण एवं श्रवण की मूलभूत स्थापना के आधार पर स्वनविज्ञान की तीन शाखाएँ होती हैं–उच्चारणमूलक स्वनविज्ञान (Articulatory phonetics), सांचारिक या संवहनमूलक स्वनविज्ञान (Acoustic phonetics) और श्रवणमूलक स्वनविज्ञान (Auditory phonetics)। इनमें से उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान में ध्वनियों का उच्चारणमूलक अध्ययन होता है। उच्चारण अवयवों (Organs of speech) उच्चारक (Articulators) और उच्चारण स्थान (points of Atticulation) का अध्ययन; प्रयत्न, संवृत्ति, विवृत्ति आदि की दृष्टि से ध्वनियों का विवेचन (वर्गीकरण, विकास की दिशाएँ) आदि का अध्ययन किया जाता है। इसमें यह भी अध्ययन किया जाता है कि कौन–सी ध्वनियाँ वाग्यंत्र के किन–किन अवयवों से निकलती हैं। इनके विश्लेषण के द्वारा ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है। ध्वनियों की उच्चारणगत प्रकृति तथा उनके अन्तर को समझने के लिए उच्चारण अवयवों के स्वरूप और उनकी कार्यकारिता का ज्ञान आवश्यक है। उच्चारणमूलक

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 61 8/18/2021 12:21:37 PM

स्वनविज्ञान से सम्बन्धित इस अध्याय में आप ध्वनि की परिभाषा, वाग्यंत्र के वर्गीकरण और ध्वनियों के वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न

3. उच्चारण, प्रसरण एवं श्रवण की मूलभूत स्थापना के आधार पर निर्धारित स्वन विज्ञान की शाखा नहीं है?

   (क) श्रुतिमूलक स्वनविज्ञान

   (ख) उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान

   (ग) सांचारिक या संवहनमूलक स्वनविज्ञान

   (घ) श्रवणमूलक स्वन विज्ञान

4.4 वागिन्द्रियाँ

वागिन्द्रियों की स्थिति और कार्य को ठीक से समझने के लिए शारीरिक रचना और क्रिया का थोड़ा–बहुत ज्ञान आवश्यक है। शरीरविज्ञान की दृष्टि से मानव–शरीर को अस्थि–तंत्र, पेशी–तंत्र, श्वसन–तंत्र, पाचन–तंत्र, परिसंचरण–तंत्र, उत्सर्जन–तंत्र, तंत्रिका–तंत्र, अंतःस्रावी–तंत्र और जनन–तंत्र में विभाजित किया जा सकता है। इनमें से श्वसन–तंत्र और भोजन–तंत्र का सम्बन्ध भाषण–तंत्र से भी है। श्वसन–तंत्र में नासिका–विवर, स्वर–यंत्र और फेफड़े भाषण के काम आते हैं तथा पाचन–तंत्र में मुख–विवर और ग्रसनिका या गलबिल (गले का छेद)। इसप्रकार इन दोनों तंत्रों के कुछ अवयव भाषा की उत्पत्ति में सहायक होते हैं, जिन्हें वागिन्द्रिय या भाषणेन्द्रिय नाम से पुकारा जाता है। ध्वनियों के उत्पादन के लिए इनमें किससे क्या सहायता मिलती है, यह जानने के लिए इनका स्थूल परिचय आवश्यक है।

फेफड़े (Lungs) – मनुष्य जब तक जीता है, तब तक श्वास–निःश्वास की क्रिया निरंतर चलती रहती है। ध्वनि उत्पादन के लिए वायु की आवश्यकता होती है। यह वायु मनुष्य के फेफड़े प्रदान करते हैं। फेफड़े से निकलने वाली निःश्वास वायु ही ध्वनि या भाषण के लिए प्राण या जीवन है। कहने का तात्पर्य यह है कि ध्वनि या भाषा श्वसन क्रिया की उपजात (बाइप्रोडक्ट) है। इस प्रकार ध्वनि की उत्पत्ति में फेफड़ों का प्रत्यक्ष उपयोग तो नहीं है, किंतु वही मूल स्थान है, जहाँ से बाहर निकलने वाली वायु का उपयोग ध्वनि के उत्पादन के लिए किया जाता है। फेफड़े के ऊपर श्वास–नली है, जो दोनों फेफड़ों से सम्बद्ध रहती है। जिस प्रकार बाँसुरी में वायु को एक ओर से फूँका जाता है, फिर उसे कभी पूर्ण रूप से तो कभी अपूर्ण रूप से रोका जाता है और कभी–कभी पृथक स्थानों से निर्गत करके स र ग म की विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं। इसी प्रकार फेफड़े से आने वाली निःश्वास वायु को स्वरतंत्रियों, कोमल तालु, कठोर तालु, दन्त, ओष्ठ आदि से नियंत्रित करते हुए सभी प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं।

श्वास–नली (Wind-pipe) श्वास–नली बाहर की वायु को फेफड़ों तक पहुँचाती है और अंदर की दूषित वायु को बाहर लाने का काम करती है। इस बाहर आने वाली दूषित वायु से ही ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इसप्रकार श्वास–नली का ध्वनि से सीधा या साक्षात संबंध है।

भोजन–नली (Gullet) इसका ध्वनि से कोई साक्षात सम्बन्ध नहीं। ये श्वासनली के समानांतर होती है, जो भोजन को आमाशय तक पहुँचाती है। भोजन–नली और श्वास–नली के बीच एक बारीक दीवार होती है। भोजन–क्रिया और श्वसन–क्रिया गलबिल तक एक ही मार्ग से होती है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 62 8/18/2021 12:21:38 PM

स्वरयंत्र (Larynx) स्वरतंत्री (Vocal cords) और काकल (Glottis)

श्वासनली के ऊपरी भाग में अभिकाकल के कुछ नीचे स्वरयंत्र स्थित है। यह ध्वनि उत्पादन का प्रमुख अवयव है। ओस्कार रसेल ने इसे 'मानवीय ध्वनि प्रसारण केंद्र' कहा है। फेफड़ों में जाने वाली (श्वास) वायु और फेफड़ों से बाहर निकलने वाली (निःश्वास)वायु स्वरयंत्र के माध्यम से ही आती–जाती है। यह श्वासनली के ऊपरी भाग में कार्टिलेज,मांसपेशी और झिल्ली की बनी हुई मिश्रित रचना है। वयस्क, वृद्ध और दुर्बल पुरुषों के गले में बाहर उभरा हुआ जो अंश दिखाई देता है, उसे स्वरयंत्र कहते हैं। इसे टेंटुआ या एडम एप्पल (Adam's Apple) भी कहते हैं। इसके ठीक पीछे श्वास नली होती है। इसमें थोड़ी–थोड़ी दूर पर कार्टिलेज के ɛ के आकार के छल्ले होते हैं, जो इसे खुला रखने में सहायता करते हैं। स्वरयंत्र में ओंठों के आकार की समानांतर पड़ी हुई दो मांसपेशियाँ होती हैं। इन्हें Vocal Cords या स्वरतंत्री कहा जाता है। इन स्वरतंत्रियों के कम्पन से नाना प्रकार की ध्वनियाँ निःसृत होती हैं। सामान्यतया श्वास लेने की क्रिया में स्वरतंत्रियाँ पूर्णरूप से खुली रहती हैं और वायु निर्बाध रूप से आती–जाती रहती है। स्वरतंत्रियों का मूल कार्य है–भार आदि को उठाते समय वायु के मार्ग को बंद करके मानव की शक्ति को बढ़ाना। ध्वनि उत्पादन स्वरतंत्रियों का एक प्रकार से कृत्रिम या गौण कार्य है। स्वरतंत्रियों के दोनों होंठ अति कोमल और तीव्र गतिशील होते हैं। ध्वनि उत्पादन के समय ये कभी खुलते हैं और कभी बंद होते हैं। प्रत्येक ध्वनि के लिए यह द्वार खुलता और बंद होता है। एक ध्वनि के उच्चारण के बाद यह द्वार स्वयं बंद हो जाता है और अगली ध्वनि के लिए फिर तुरंत खुलता है। स्वरतंत्रियों के खुलने, समीप आने, तनने, बन्द होने और अधखुले रहने आदि अवस्थाओं के कारण ही घोष, अघोष, फुसफुसाहट, भनभनाहट आदि ध्वनियों के विविध रूप बनते हैं। प्रमुख रूप से स्वरतंत्रियों की चार अवस्थाएँ होती हैं :

1. जब हम साधारण रूप से साँस लेते हैं, तब स्वरतंत्री के दोनों परदे शिथिल–सिकुड़े पड़े रहते हैं, बीच में काकल में त्रिभुजाकार स्थान खाली रहता है, जिससे हवा निर्बाध निकलती है, अघोष ध्वनियों के उच्चारण में यही स्थिति रहती है।
2. दूसरी अवस्था में दोनों परदों के अधर इतने समीप आ जाते हैं कि वायु को रगड़ खाकर जाना पड़ता है। इस स्थिति में दोनों स्वरतंत्रियों में कम्पन होता है, इस कम्पन से ही घोष ध्वनि की सृष्टि होती है।
3. तीसरी अवस्था में स्वरतंत्रियों के दोनों अधर तनकर आपस में इतना मिल जाते हैं कि रास्ता पूर्णतया बंद हो जाता है और श्वास निकलने में एक क्षण के लिए पूरी तरह बाधा उपस्थित हो जाती है ऐसा करने पर एक प्रकार की अन्तर्मुखी ध्वनि सी (क्लिक ध्वनि) होती है। स्वरतंत्रीय व्यंजन (ह्) इसी श्रेणी की ध्वनि है।
4. चौथी अवस्था में दोनों होंठ मिलते तो हैं, पर नीचे काकल का लगभग चौथा भाग श्वास के निर्गम के लिए खुला रहता है। ऐसी ही अवस्था में 'फुसुफुसाहट' जैसी ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं। इस स्थिति में छिद्र छोटा होने के कारण ही ध्वनि धीमी हो जाती है।

स्वरतंत्रियों के बीच में जो खुला भाग होता है, इसे स्वरयंत्र मुख या **काकल** कहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने इसे कण्ठ नाम दिया है। स्वर उत्पादन के समय यह पूर्ण या अपूर्ण रूप में अवरुद्ध होता रहता है।

अभिकाकल (Epiglottis)

जिह्वामूल के निचले भाग में छोटी जीभ के आकार का एक मांसल भाग है, इसे अभिकाकल, स्वरयंत्रमुखावरण या स्वरयंत्राभरण कहा जाता है। भोजन या पानी जब मुख से होते हुए भोजन–नलिका के मुख के पास पहुँचता है, तो अभिकाकल

नीचे की ओर झुककर श्वासनलिका को बंद कर देता है, जिसके कारण भोजन या पानी श्वास–नली में न जाकर भोजन–नली में जाता है। यह यंत्र ध्वनि उत्पादन में सामान्यतया प्रत्यक्ष रूप से सहायक नहीं है, तो भी ध्वनियंत्र की रक्षा के कारण अप्रत्यक्ष रूप से ध्वनि–उत्पादन–प्रक्रिया में सहायक है।

गलबिल (Pharynx)

अभिकाकल के ऊपर और नासाविवर के नीचे तथा जिह्वामूल के पीछे की ओर एक खाली स्थान है, उसे गलबिल कहते हैं। यह एक प्रकार से मुख–विवर में एक चौराहा है, जहाँ से चार मार्ग इधर–उधर जाते हैं :

1. मुख–विवर की ओर
2. नासिका–विवर की ओर
3. श्वासनली की ओर
4. भोजन नली की ओर।

इसी स्थान से होकर अन्दर से आने वाली वायु मुख–मार्ग या नासिका–मार्ग से निकलती है।

अलिजिह्वा (Uvula)

जहाँ से नासा–विवर और मुख–विवर का रास्ता अलग होता है, उस स्थान पर छोटी जीभ की आकृति का एक गोल मांस–पिण्ड होता है। मुख खोलने पर यह जिह्वापश्च के समीप स्पष्ट दिखाई देता है। इसको अलिजिह्वा या कौवा कहते हैं। यह नासिका–मार्ग को उन्मुक्त या अवरुद्ध करने का कार्य करता है।

नासाविवर (Nasal cavity)

यह गलबिल से प्रारम्भ होकर नासिका के अग्र भाग तक फैला हुआ है। इसके अन्दर एक विवर है। इस विवर से वायु के निर्गत होने पर अनुनासिक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

कोमल तालु (Soft Palate)

मुखविवर के ऊपर के अंश को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है–दन्त, वर्त्स, कठोर तालु, मूर्धा और कोमल तालु। जिह्वा के विभिन्न भागों को उनसे स्पर्श कराकर विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं।

मुख के अन्दर का अन्तिम कोमल भाग कोमल तालु है। कोमल तालु एक ढक्कन के तुल्य ऊपर नीचे हो सकता है। यह नीचे होने पर मुख मार्ग को बंद कर देता है और तनकर ऊपर होने पर नासिका मार्ग को। ध्वनि विज्ञान में यह महत्वपूर्ण अवयव है। यह उच्चारण स्थान और उच्चारण अवयव दोनों है।

मूर्धा (Cerebrum) कठोर तालु और कोमल तालु के बीच का हिस्सा मूर्धा है। यह भी उच्चारण स्थल है। इस स्थल से उच्चरित ध्वनियों को 'मूर्धन्य' ध्वनियाँ कहते हैं।

कठोर तालु (Hard-Palate)

कोमल तालु की ओर से आगे बढ़ने पर कठोर अस्थि वाला भाग मिलता है, इसको कठोर तालु कहते हैं। इस स्थान पर हड्डी के ऊपर पतला मांस का आवरण है। अँगूठे से स्पर्श करने पर यह कठोर हड्डी की तरह प्रतीत होता है। वाग्यंत्र का यह स्थिर अंग है। यह निश्चेष्ट रहता है। इससे उच्चरित ध्वनियों को 'तालव्य' कहते हैं। मूर्धा की तरह यह भी उच्चरण स्थान है, उच्चारण सहायक अवयव नहीं।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 64 8/18/2021 12:21:38 PM

वर्त्स (Alveolus)

ऊपर के दाँतों के मूल से कठोर तालु के आरम्भ तक का भाग वर्त्स कहलाता है। दाँतों की जड़ में उभरा हुआ खुरदुरा भाग वर्त्स ही कहलाता है। दाँतों के पीछे उँगली फेरकर इसके खुरदुरेपन का अनुभव किया जा सकता है। यह एक निष्क्रिय अवयव है। जीभ के विभिन्न भागों के स्पर्श या समीपवर्ती होने से यह ध्वनि उत्पादन में सहायक होता है। इस स्थान से उच्चरित ध्वनियों को 'वर्त्स्य' कहते हैं। यह उच्चारण–स्थान है, उच्चारण सहायक अवयव नहीं।

दन्त (Teeth)

दाँतों का ध्वनि विज्ञान में विशेष महत्व है। नीचे के दाँतों का ध्वनि विज्ञान में बहुत कम उपयोग होता है। ऊपर के दो दाँतों का ध्वनि उच्चारण में महत्वपूर्ण स्थान है। ऊपर के दाँत ओष्ठ से या जिह्वा की नोंक से मिलकर विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहायक होते हैं। दाँत के भी तीन भाग किये जा सकते हैं– अग्र, मध्य और पश्च। त,द और न के उच्चारण में ये भेद स्पष्ट होते हैं। सामान्यतया दाँत के तीनों भेदों से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों को 'दन्त्य' कहते हैं।

ओष्ठ (Lips)

यह वाग्यंत्र का सबसे महत्वपूर्ण और बाहरी अवयव है। वाग्यंत्र के अन्य अवयव आच्छादित हैं और यह उनका आच्छादक है। ऊपर और नीचे के ओष्ठों में से ऊपर के ओष्ठों की अपेक्षा नीचे का ओष्ठ अधिक क्रियाशील है। अतएव ध्वनिविज्ञान में ओष्ठ से तात्पर्य नीचे के ओष्ठ से है। ओष्ठों का निम्नलिखित रूप में प्रयोग हो सकता है–

1. दोनों ओष्ठ पूर्णतया पृथक और खुले रह सकते हैं। जैसे –'आ' के उच्चारण में।
2. दोनों ओष्ठ पूर्णतया बंद हो सकते हैं, जैसे 'प' के उच्चारण में।
3. दोनों ओष्ठों के मध्य थोड़ा अवकाश रख सकते हैं। जैसे– 'फ' के उच्चारण में
4. दोनों ओष्ठों को संकुचित करके बाहर की ओर बढ़ाकर गोलाकार अवस्था में रखना। जैसे 'उ' के उच्चारण में
5. नीचे के ओष्ठ को ऊपर के दाँतों के पास ले जाकर छोटा–सा छेद बनाकर जैसे 'फ़' या 'व' ध्वनि के उच्चारण में।

ओष्ठ से उत्पन्न ध्वनियों को 'ओष्ठ्य' कहते हैं। ये दो प्रकार की हो सकती हैं– 'दंत्योष्ठ्य' अर्थात् ऊपर के दाँत और नीचे के ओष्ठों के मिलने से और 'द्वयोष्ठ्य' अर्थात दोनों ओष्ठों के मिलने से। आकार की दृष्टि से ओष्ठों को तीन भागों में बाँट सकते हैं–उदासीन–जैसे 'अ' के उच्चारण में, पूर्ण गोलाकार–जैसे 'ऊ' के उच्चारण में और पूर्ण विस्तृत जैसे 'ई' के उच्चारण में।

जिह्वा

मुख विवर में जिह्वा सबसे महत्वपूर्ण अवयव है। प्रायः संसार की सभी भाषाओं की अधिकांश स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ जीभ की ही सहायता से बोली जाती हैं। जिह्वा के पाँच भाग किये जा सकते हैं–जिह्वानोंक, जिह्वाग्र, जिह्वामध्य, जिह्वापश्च और जिह्वामूल। जिह्वा के ये विभिन्न भाग भिन्न–भिन्न उच्चारण अवयव के स्पर्श से विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न

4. निम्नलिखित वाक्यों में से सही और गलत वाक्यों को पहचानिए।

   (क) ध्वनि या भाषा श्वसन क्रिया की उपजात है। ( )

(ख) श्वास नली से बाहर आने वाली दूषित वायु से ही ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। ( )

(ग) स्वर यंत्र ध्वनि उत्पादन का प्रमुख अवयव है। ( )

(घ) जिह्वामूल के निचले भाग में छोटी जीभ के आकार का एक मांसल भाग होता है जिसे अभिकाकल कहते हैं। ( )

5. ऊपर के दाँतों के मूल से कठोर तालु के आरम्भ तक का भाग कहलाता है?

(क) ओष्ठ

(ख) मूर्धा

(ग) वर्त्स

(घ) इनमें से कोई नहीं।

4.5 वाग्यंत्र का वर्गीकरण

वाग्यंत्र के समस्त अवयवों को कार्य और उपयोगिता की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **करण (Articulators)** वे अवयव जो गतिशील हो सकते हैं, करण कहलाते हैं। ओष्ठ, जिह्वा, कोमल तालु और स्वर–तंत्री करण कहे जाते हैं।
2. **स्थान (Points of Articulators)** वाग्यंत्र के उन अवयवों को कहते हैं, जो अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं और जिह्वा आदि उन स्थानों के पास जाते हैं या उनका स्पर्श करते हैं। दन्त, तालु, मूर्धा आदि इसी प्रकार के अवयव हैं।

4.6 ध्वनियों के भेद

ध्वनियों के दो प्रसिद्ध भेद हैं–स्वर और व्यंजन। स्वर और व्यंजन में अन्तर प्रायः यह बताया जाता है कि स्वर उसे कहते हैं, जिसका उच्चारण स्वयं हो और व्यंजन वह है जिसके उच्चारण में स्वर की सहायता लेनी पड़े। स्वर और व्यंजन के अंतर को निम्नलिखित परिभाषाओं से समझना उचित होगा।

4.6.1 स्वर तथा व्यंजन में अंतर

याज्ञवल्क्य शिक्षा में स्वर के लिए कहा गया है–जिस ध्वनि का उच्चारण स्वतः हो जाता है और उसके उच्चारण के लिए किसी अन्य सहायक ध्वनि की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसे 'स्वर' कहते हैं और जिस ध्वनि के उच्चारण के लिए स्वर वर्ण की सहायता लेनी पड़ती है, उसे 'व्यंजन' कहते हैं। पतंजलि ने महाभाष्य में कहा है–'स्वतः राजन्ते इति स्वराः अन्वग् भवति व्यंजमिति'। पतंजलि की तरह ही, पतंजलि के समकाल में हुए यूनानी वैयाकरण डायोनिशस थ्रेक्स ने भी कहा है–"स्वर वे ध्वनियाँ हैं, जिनका उच्चारण अन्य किसी ध्वनि की सहायता के बिना किया जा सकता है और व्यंजन उन ध्वनियों को कहते हैं, जिनका उच्चारण स्वरों की सहायता के बिना नहीं किया जा सकता। प्राचीन भाषाशास्त्रियों के इस विश्लेषण से वर्तमान भाषाशास्त्री अधिकांशतः सहमत नहीं हैं। दरअसल पतंजलि ने संस्कृत भाषा के परिप्रेक्ष्य में ये बातें कहीं हैं। संस्कृत में केवल व्यंजन वाले शब्द नहीं हैं। जबकि हिन्दी में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनमें बिना स्वरों की सहायता से ही व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण होता है। जैसे 'संयुक्त' शब्द के क् में कोई स्वर नहीं है, फिर भी उसका उच्चारण होता है। आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के अनुसार स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण करते समय निःश्वास में कहीं कोई अवरोध नहीं होता। व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनका

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 66 8/18/2021 12:21:38 PM

उच्चारण करते समय निःश्वास में कहीं न कहीं अवरोध होता है। स्वर और व्यंजन में दूसरा भेद यह है कि दोनों की मुखरता (Sonority) में अंतर रहता है। जो ध्वनि अधिक दूर तक सुनाई देती है, वह उतनी ही मुखर मानी जाती है। व्यंजनों की अपेक्षा स्वर अधिक मुखर होते हैं। इसीलिए संगीत साधना के समय आलाप में ....आ... का आलाप करते हैं। इसके अतिरिक्त स्वर का उच्चारण अलग से स्वतंत्रतापूर्वक देर तक किया जा सकता है, जबकि कुछ विशेष व्यंजनों को छोड़कर अधिकांश व्यंजनों का उच्चारण स्वतंत्रतापूर्वक देर तक कर पाना सम्भव नहीं। समस्त स्वर प्रायः सघोष होते हैं। स्वर में बलाघात को वहन करने की क्षमता अधिक होती है। स्वर और व्यंजन के अंतर को समझने के लिए यहाँ नीचे कुछ परिभाषाएँ दी जा रही हैं।

4.6.2 स्वर तथा व्यंजन की परिभाषाएँ

आधुनिक भाषाशास्त्रियों के अनुसार स्वर और व्यंजन की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

''स्वर वह सघोष ध्वनि है, जिसके उच्चारण में श्वास नलिका से आती हुई श्वास धारा प्रवाह या अबाध गति से निकलती जाती है और मुखविवर में ऐसा कोई संकोच नहीं होता कि किंचितमात्र भी संघर्ष या स्पर्श हो।"(बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान)

"वे ध्वनियाँ जिनके उच्चारण में निर्गत श्वास में कहीं अवरुद्धता न हो, स्वर कहलातीं हैं।" (उदय नारायण तिवारी, भाषाशास्त्र की रूपरेखा)

"स्वर उन ध्वनियों को कहते हैं, जो मुख में किसी प्रकार अवरुद्ध हुए बिना उच्चरित होती हैं। फेफड़ों से आने वाली वायु ओष्ठ और उससे आगे तक कहीं अवरुद्ध नहीं होती। इसको बहुत संकीर्ण मार्ग से नहीं निकलना पड़ता। यह मुख विवर की स्वरसीमा से ऊपर नहीं जाती है और इसमें स्वरतंत्री से ऊपर वाले किसी वाग् अवयव में कम्पन नहीं होता है। यह साधारणतया घोष ध्वनि होती है, पर ऐसा अनिवार्य नहीं।" (ब्लाख और ट्रेगर, आउटलाइन्स ऑफ लिंग्विस्टिक्स एनेलिसिस)

अब व्यंजन की परिभाषाएँ देखिए–

"व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण करते समय निःश्वास में कहीं न कहीं अवरोध होता है।" (देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका)

"व्यंजन वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती, या तो उसे पूर्ण अवरुद्ध होकर आगे बढ़ना पड़ता है, या संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए निकलना पड़ता है, या मध्य रेखा से हटकर एक या दोनों पार्श्वों से निकलना पड़ता है, या किसी भाग को कम्पित करते हुए निकलना पड़ता है। इस प्रकार वायु मार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है।" (भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान)

"व्यंजन वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में फेफड़ों से आने वाली वायु स्वरतंत्री या मुख मार्ग में कहीं पूर्णतया रोकी जाती है, या संकुचित मार्ग से निकलती है, या मुख विवर को स्वर सीमा से हटते हुए जिह्वा के एक या दोनों ओर से निकलती है या स्वरतंत्री से ऊपर वाले किसी वाग्अवयव में कम्पन पैदा करती है।" (ब्लाख और ट्रेगर, आउटलाइन्स ऑफ लिंग्विस्टिक्स एनेलिसिस)

4.7 स्वरों का वर्गीकरण

स्वर की परिभाषा में कहा गया कि निःश्वास में बिना अवरोध के जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं वे स्वर कहलाती हैं। किंतु फिर प्रश्न यह है कि अवरोध के बिना उत्पन्न

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 67 8/18/2021 12:21:38 PM

इन ध्वनियों के बीच अ, इ, उ, ए आदि का भेद कैसे होता है? इस भेद के कारण पर जब हम विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि इसके जनक निम्न तीन कारण हैं–

1. **जिह्वा का भाग**

स्वरों का प्रथम वर्गीकरण जिह्वा के भागों की दृष्टि से किया जाता है। इस दृष्टि से जिह्वा के तीन भाग होते हैं–अग्र, मध्य और पश्च। मुख में आती वायु में स्वरों के उच्चारण में कोई विशेष बाधा नहीं होती किन्तु जिह्वा का अग्र, मध्य या पश्च भाग ऊपर उठकर मुख में स्वरों के गूँजने के लिए मुख विवर के विभिन्न रूप धारण करने में सहायता करता है। (क) जब जिह्वा का अग्र भाग ऊपर उठकर स्वर उच्चारण में सहायता करता है, वे हैं– इ, ई, ए, ऐ। इसी से इन्हें **अग्रस्वर** कहते हैं। (ख) जिह्वा के मध्यभाग को उठाकर **केन्द्रीय स्वर** का उच्चारण होता है, जिसका उदाहरण है–अ। (ग) जिह्वा के पश्च भाग को उठाकर आ, उ, ऊ, ओ, औ का उच्चारण होता है, जिन्हें **पश्चस्वर** कहते हैं।

2. **जिह्वा की ऊँचाई**

जिह्वा के विभिन्न भागों का उस मात्रा तक उठना जिससे कि मुख विवर से निकलने वाली वायु का कहीं पर अवरोध न हो **स्वर सीमा** कहलाती है। वस्तुतः स्वरों के उच्चारण में जिह्वा केवल एक निर्दिष्ट सीमा तक उठती है; उससे ऊपर उठने पर निःसृत होने वाली वायु में अवरोध उत्पन्न हो जाएगा। स्वरों के उच्चारण में निःश्वास वायु जब मुख विवर से बाहर निकलती है, तो उसमें अवरोध तो नहीं किया जाता, किन्तु जिह्वा को ऊपर उठाकर निःश्वास के निर्गम मार्ग को कुछ संकीर्ण अवश्य कर दिया जाता है। यह संकीर्णता कहीं अपेक्षाकृत कम होती है और कहीं अधिक। इस दृष्टि से मुख विवर की स्थिति चार प्रकार की होती है और उसके अनुसार स्वरों के भी चार भेद हो जाते हैं–

(क) संवृत–जब जीभ का विशिष्ट भाग बहुत ऊपर उठता है अर्थात् जिह्वा और स्वर सीमा के बीच कम से कम खाली स्थान रहता है। तब मुख विवर अत्यंत संकरा अर्थात संवृत हो जाता है। ऐसी स्थिति में उच्चरित स्वर संवृत स्वर कहलाते हैं। जैसे–

अ– अग्रसंवृत–ई, इ

ब– पश्चसंवृत– ऊ, उ

(ख) अर्द्धसंवृत–जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य संवृत की अपेक्षा तनिक अधिक स्थान खाली रहता है, तब स्वरों को अर्द्धसंवृत स्वर कहते हैं। जैसे–

अ–अर्द्धसंवृत – ए

ब–पश्चअर्द्धसंवृत–ओ

(ग) अर्द्धविवृत–जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य विवृत की अपेक्षा दूरी थोड़ी कम हो जाती है, तब स्वरों को अर्द्धविवृत कहते हैं। जैसे–

अ–अग्रअर्द्धविवृत –ऐ

ब–पश्चअर्द्धविवृत– औ

(घ) विवृत–विवृत का अर्थ है–खुला। जब जिह्वा और मुखविवर के उपरिभाग के बीच अधिक से अधिक दूरी रहती है, तो विवृत ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं; जैसे–

अ–अग्र विवृत– हिन्दी में इसका अभाव है।

ब– पश्चविवृत– आ

3. **ओंष्ठों की स्थिति**

ध्वनि के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। निःश्वास का नियमन मुख के भीतर जिह्वा करती है और बाहर ओष्ठ। इसीलिए प्रत्येक स्वर के उच्चारण में जिह्वा के साथ ओष्ठों की स्थिति का भी योगदान रहता है। ओष्ठों की स्थिति अनेक प्रकार की होती है, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं–

(क) प्रसृत–ओष्ठों की वह स्थिति जिसमें वे स्वाभाविक रूप से स्थित रहते हुए खुले होते हैं। इस स्थिति को अंग्रजी में 'फ्लैट' कहते हैं। इ, ई, ए, ऐ का उच्चारण ओष्ठों की प्रसृत अवस्था में होता है।

(ख) वर्तुल–ओष्ठों को थोड़ा आगे निकालकर जब गोलाकार कर लेते हैं तो वह वर्तुल स्थिति है। उ, ऊ, ओ, औ के उच्चारण में वर्तुल स्थिति सहायक होती है।

(ग) अर्द्धवर्तुल–पूरा गोलाकार न होकर जब ओष्ठ आधे गोलाकार होते हैं तो कुछ स्वरों का उच्चारण होता है; जैसे –'अ।

बोध प्रश्न

6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण करते समय निःश्वास में .... नहीं होता है।

(ख) व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण करते समय निःश्वास में .... होता है।

(ग) स्वर में बालाघात को वहन करने की क्षमता .... होती है।

(घ) समस्त .... प्रायः सघोष होते हैं।

4.8 मूल स्वर और संयुक्त स्वर

एक स्थान या अनेक स्थान से उच्चारण की दृष्टि से स्वरों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–मूल स्वर और संयुक्त स्वर। मूल स्वर के उच्चारण में जीभ किसी एक स्थान पर रहती है। जैसे–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ आदि। संयुक्त स्वरों के उच्चारण में जीभ एक स्वर के उच्चारण स्थान से दूसरे उच्चारण स्थान की ओर जाती है। जैसे ऐ और औ का उच्चारण अइ और अउ के रूप में होता है, अतः इन्हें संयुक्त स्वर कहते हैंः एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। अर्थात् ए और ऐ के उच्चारण में कण्ठ और तालु का समन्वय होता है तथा ओ, औ के उच्चारण में कण्ठ और ओष्ठ का समन्वय होता है। इन स्वरों के उच्चारण में एक ही सांस में जिह्वा शीघ्रतापूर्वक दो स्थानों का स्पर्श करती है।

4.9 व्यंजनों का वर्गीकरण

स्वरों और व्यंजनों का दो प्रकार से विभाजन किया जाता है :

1. श्रवणीयता के आधार पर,
2. प्रयत्न के आधार पर।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 69 8/18/2021 12:21:38 PM

श्रवणीयता का अभिप्राय है–ध्वनियों के सुने जाने की सामर्थ्य। जो ध्वनियाँ अधिक स्पष्ट सुनी जाती हैं और जिनमें बलाघात वहन करने की क्षमता है, वे ध्वनियाँ स्वर कही जाती हैं। इसके विपरीत जो ध्वनियाँ अधिक दूर से स्पष्ट नहीं सुनी जाती हैं या जो बलाघात को वहन करने में समर्थ नहीं हैं, वे ध्वनियाँ व्यंजन कही जाती हैं। इस दृष्टि से ध्वनियों को तीन भागों में बाँटा जाता है–स्वर, व्यंजन और अन्तस्थ। अन्तस्थ की स्थिति स्वर और व्यंजन के बीच की है। ये श्रवणीयता और बलाघात की दृष्टि से सामान्य व्यंजनों की अपेक्षा अधिक उच्च हैं। प्रयत्न के आधार पर होने वाले विभाजन का दो प्रकार से वर्णन किया जाता है–प्रयत्न का स्थान और प्रयत्न का प्रकार। स्थान और प्रयत्न के आपेक्षिक महत्व को समझने के लिए कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। क और प का अन्तर स्थान कृत है, किंतु क और ख का अंतर प्रयत्न कृत है, क्योंकि क और ख का उच्चारण स्थान एक ही है–कण्ठ। एक ही स्थान से उच्चरित होने पर भी क ख में, ख ग में, ग घ में अन्तर हो जाता है। यह अन्तर प्रयत्न के कारण है। किन्तु क, च, ट, त, प का अन्तर प्रयत्न के कारण नहीं, स्थान के कारण है। ये ध्वनियाँ विभिन्न स्थानों से उच्चरित होती हैं। आगे विस्तार से स्थान और प्रयत्न के आधार पर व्यंजन ध्वनियों का विवरण दिया जा रहा है।

4.9.1 स्थान के आधार पर

निःश्वास वायु को जहाँ अवरुद्ध या बाधित करते हैं, उसे स्थान कहते हैं। स्थान सम्बन्धी वर्गीकरण का मुख्य आधार है–अवरुद्ध स्थान। ओंठ से लेकर कण्ठ पिटक तक मुख्य रूप से सात ऐसे स्थान हैं, जिनसे ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं, वे हैं– काकल, कंठ, तालु, मूर्धा, वर्त्स, दन्त और ओष्ठ। इन स्थानों से उच्चरित ध्वनियों को क्रमशः काकल्य, कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, वर्त्स्य, दन्त्य और ओष्ठ्य कहते हैं।

काकल्य–जिन ध्वनियों का उच्चारण काकल से होता है, उसे काकल्य व्यंजन कहते हैं। इस ध्वनि के उच्चारण में मुख द्वार खुला रहता है। स्वर–यंत्र से निकलने वाली हवा कण्ठ द्वार से घर्षण कर उसे तेजी से खोलती हुई बाहर निकलती है। जैसे 'ह' या अंग्रेजी का एच (h) काकल्य व्यंजन है।

कण्ठ्य–जिस व्यंजन का उच्चारण कण्ठ से होता है, उसे कण्ठ्य व्यंजन कहते हैं। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग कोमल तालु को छूता है। कवर्ग (क, ख, ग, घ),ह तथा विसर्ग (ः) कण्ठ्य व्यंजन हैं।

तालव्य–जिस व्यंजन का उच्चारण तालु से होता है, उसे तालव्य व्यंजन कहते हैं।इसके उच्चारण में जिह्वाग्र कठोर तालु का स्पर्श करती है। चवर्ग (च, छ, ज, झ), तथा श तालव्य व्यंजन हैं।

मूर्धन्य–जिन ध्वनियों का उच्चारण मूर्धा से होता है, उसे मूर्धन्य व्यंजन कहते हैं। इसके उच्चारण में जीभ की नोंक लगभग उलटकर मूर्धा का स्पर्श करती है। टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ) र और ष मूर्धन्य व्यंजन हैं।

वर्त्स्य–जिस व्यंजन का उच्चारण वर्त्स से होता है, उसे वर्त्स्य व्यंजन कहते हैं। इसके उच्चारण में जिह्वा नोंक तालु के अंतिम भाग एवं ऊपरी मसूढ़ों का स्पर्श किया करती है। जैसे–न्ह वर्त्स्य व्यंजन है।

दन्त्य–जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वानोंक ऊपर की दंत पंक्ति का स्पर्श किया करती है। तवर्ग (त, थ, द, ध) ल और स दन्त्य व्यंजन हैं।

ओष्ठ्य–जिन व्यंजनों का उच्चारण ओष्ठों से होता है, उन्हें ओष्ठ्य व्यंजन कहते हैं। ओष्ठ्य ध्वनियों के दो भेद होते हैं– द्वयोष्ठ्य और दन्त्योष्ठ्य। जिन व्यंजनों का उच्चारण दोनों ओष्ठों से होता है, वे 'द्वयोष्ठ्य व्यंजन' कहलाते हैं जैसे– प, फ, ब, भ

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 70 8/18/2021 12:21:38 PM

द्वयोष्ठ्य व्यंजन हैं। दन्त्योष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में नीचे का ओंठ ऊपर की दन्त पंक्तियों को छूता है। जैसे फ़ और व दंत्योष्ठ्य व्यंजन हैं।

जिह्वामूलीय–जिन व्यंजनों का उच्चारण जिह्वा के मूल से होता है, उन्हें जिह्वामूलीय–व्यंजन कहते हैं। जैसे– क़, ख़, ग़ जिह्वामूलीय–व्यंजन हैं।

4.9.2 प्रयत्न के आधार पर

ध्वनियों के उच्चारण के लिए अन्दर से आने वाली निःश्वास वायु को विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों से विकृत या परिवर्तित रूप में बाहर आने दिया जाता है, इसी प्रयास को 'प्रयत्न' कहा जाता है।

प्रयत्न मुख्यतः दो प्रकार के हैं–आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर और बाह्य का संबंध मुखविवर के भीतरी और बाहरी भाग से है। ओष्ठ से कण्ठ तक यानी मुख के भीतर जो प्रयत्न किये जाते हैं, वे आभ्यन्तर कहलाते हैं और कण्ठ के बाद (नीचे) जो प्रयत्न होते हैं, वे बाह्य प्रयत्न कहलाते हैं।

4.9.2.1 आभ्यन्तर प्रयत्न

व्यंजनों के उच्चारण में ध्वनियंत्र के विभिन्न अवयवों को अनेक प्रकार से प्रयत्न करने पड़ते हैं। इस प्रयत्न अवधि में निर्गत वायु के अवरोध की क्रिया भी घटित होती है। इस अवरोध की प्रकृति के आधार पर व्यंजनों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–पूर्णतः अवरोधी और आंशिक अवरोधी।

पूर्णतः अवरोधी–मुख से बाहर निकलती वायु के पूर्णतः अवरोध द्वारा उत्पन्न ध्वनि पूर्णतः अवरोधी कहलाती है। पूर्णतः अवरोधी ध्वनियों को भी प्रयत्न के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) **स्पर्श (Stop or explosive)**–स्पर्श को स्फोट भी कहा जाता है। स्पर्श उच्चारण की वह अवस्था है जिसमें दो उच्चारण अवयव एक दूसरे का स्पर्श करके हवा को अवरुद्ध करते हैं और फिर एक दूसरे से हटकर हवा को जाने देते हैं। इसकी तीन अवस्थाएँ हैं– निःश्वास वायु का आगमन, अवरोध और स्फोट। ये तीनों स्थितियाँ पूर्ण उच्चारण में मिलती हैं। क,ख,ग,घ, त,थ,द,ध, ट,ठ,ड,ढ,प, फ,ब,भ हिन्दी के स्पर्श व्यंजन हैं।

(ख) **स्पर्श संघर्षी (Affricative)**–वे ध्वनियाँ जिनका आरम्भ तो स्पर्श से होता है, अर्थात् जिह्वा एक खास स्थान पर हवा को क्षणभर के लिए रोक देती है, किन्तु इस अवरोध के पश्चात अवरोधक अंग झटके से अलग नहीं होता और वायु भी झटके से निकलने नहीं पाती अपितु अवरोधक अंग धीरे–धीरे हटता हुआ घर्षण के साथ वायु को बाहर निकल जाने का मार्ग प्रदान करता है। च, छ, ज, झ हिन्दी की स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ हैं।

आंशिक अवरोधी–जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में निर्गत वायु का पूर्ण रूप से अवरोध नहीं होता, वे आंशिक अवरोधी कहलाती हैं। उन्हें मुख्य रूप से निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) **संघर्षी (Fricative)**–जब ध्वनि के उच्चारण में उच्चारण अवयव के दो अंग एक दूसरे के इतने अधिक समीप आ जाते हैं कि वायु अबाध गति से बाहर नहीं निकल पाती, अपितु वह घर्षण कर धीरे–धीरे बाहर निकलती है– ऐसी ध्वनि संघर्षी कहलाती है। इस प्रकार की ध्वनियों के उत्पादक कारण हैं– दोनों ओंठ, ऊपर नीचे के दाँत, जीभ एवं वर्त्स। इस प्रकार की हिन्दी ध्वनियाँ हैं–

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 71 8/18/2021 12:21:38 PM

फ़, ख़, ग़, ज़, स, श, ष। इन ध्वनियों में एक प्रकार की सीत्कार (hiosing) ध्वनि सुनाई देती है।

(ख) **लुण्ठित (Rolled)**–जीभ की नोंक को बेलन की भाँति कुछ लपेटकर या लोड़ित करके लुण्ठित व्यंजन उत्पन्न किया जाता है। जैसे –र।

(ग) **नासिक्य (Nasal)**–जिसमें दोनों ओंठ, जीभ–दाँत, जीभ–मूर्धा या जीभपश्च और कोमल तालु आदि का उसी प्रकार स्पर्श किया जाता है; जैसे स्पर्श व्यंजनों में; किन्तु वायु प्रवाह कोमल तालु के नीचे झुक जाने के कारण नासिका विवर से निकल जाती है। ड़, ञ्,ण्, न् तथा म् इसी कोटि में आते हैं।

(घ) **पार्श्विक (Lateral)**–पार्श्विक ध्वनियों के उच्चारण में मुख के मध्य रेखा पर कहीं भी जिह्वा के सहारे वायु मार्ग को अवरुद्ध कर दिया जाता है। फलतः हवा जिह्वा के एक या दोनों पार्श्वों से बाहर निकलती है। जैसे– ल्।

(ड.) **उत्क्षिप्त (Fllapped)**–जीभ की नोंक को उठाकर जिह्वा को कठोर तालु पर करने एवं तुरन्त सीधा कर लेने से उत्पन्न ध्वनि उत्क्षिप्त कहलाती है। हिन्दी के ड़ और ढ़ उत्क्षिप्त व्यंजन हैं।

(च) **अर्द्धस्वर (Semi-Vowel)**–इनकी स्थिति स्वर और व्यंजन के मध्य की होती है, वैसे इनका झुकाव व्यंजन की ओर अधिक रहता है, क्योंकि ये स्वरों की तुलना में व्यंजन की तरह कम मुखर हैं, कम मात्रा के हैं, साथ ही इन पर बलाघात नहीं पड़ता, फिर भी इन्हें अर्द्धस्वर कहते हैं। इसका कारण यह है कि इनके उच्चारण का आरम्भ स्वर–स्थिति से होता है। ये ध्वनियाँ हैं– य, व। इन दोनों के उच्चारण में क्रम से उच्चारण अवयव पहले इ या उ की स्थिति में आते हैं और वहाँ थोड़ी देर रुकने के बाद आगामी स्थिति में चले जाते हैं। इनके उच्चारण में हवा का प्रवाह बहुत धीमा होता है। संस्कृत में इनको अन्तस्थ कहा जाता है। अन्तस्थ का अभिप्राय यह है कि ये ध्वनियाँ न तो स्वर की तरह पूर्णतया अवरोध–रहित हैं न व्यंजन की तरह पूर्णतया अवरुद्ध।

4.9.2.2 बाह्यप्रयत्न

बाह्यप्रयत्न में मुख्यतः स्वरतंत्री और अलिजिह्वा के व्यापार लिए जाते हैं। स्वरतंत्री की अवस्था, प्राणवायु की गति तथा स्वरतंत्री की अवस्था एवं प्राणवायु की गति के कारण होने वाले घषर्ण; के आधार पर बाह्य प्रयत्न ग्यारह होते हैं–विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

स्वरतंत्री की अवस्था के आधार पर–विवार एवं संवार प्रयत्न होते हैं। विवार का अर्थ है–खुलना। जब स्वरतंत्री पूर्णतः खुली रहती है तो विवार प्रयत्न होता है। संवार का अर्थ है–बन्द होना। इसमें स्वरतंत्रियाँ बंद रहती हैं।

प्राणवायु की गति के आधार परश्वास एवं नाद प्रयत्न होते हैं। जब स्वरतंत्रियाँ विवार की स्थिति में (खुली) रहती हैं, उस समय निःश्वास वायु निर्बाध रूप से चलती है। इसे ही श्वास प्रयत्न कहा जाता है। नाद में स्वरतंत्रियाँ मिलती है तथा निःश्वास में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे नाद या आवाज होती है।

दोनों को मिलाकर होने वाले घर्षण के आधार परघोष एवं अघोष प्रयत्न होते हैं। श्वास प्रयत्न में घर्षण के अभाव को ही अघोष कहते हैं। प्रत्येक वर्ग के प्रथम और द्वितीय वर्ण (क ख,च छ, ट ठ,त थ,प फ) अघोष हैं। नाद प्रयत्न में स्वरतंत्री में हांने वाले घर्षण का दूसरा नाम घोष है। नागरी वर्णमाला में प्रत्येक वर्ग के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण (ग घ ड., ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म) घोष हैं।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 72 8/18/2021 12:21:38 PM

प्राणवायु की मात्रा **अल्पप्राण एवं महाप्राण** का निर्धारण करती है। कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिनमें वायु का प्रयोग अत्यल्प होता है; जैसे–क प। अल्पमात्रा में वायु के प्रयोग के कारण इन्हें अल्पप्राण कहते हैं। नागरी वर्णमाला के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण (क ग ङ., च ज ञ, ट ड ण, त द न, प ब म) अल्पप्राण हैं। महाप्राण में वायु का प्रयोग अधिक होता है। प्रत्येक वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ वर्ण (ख घ, छ झ, ठ ढ, थ ध, फ भ) महाप्राण हैं।

उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का सम्बन्ध केवल सुरों से है। उदात्त का अर्थ है–ऊपर उठा हुआ, अर्थात् आरोही सुर; अनुदात्त का अर्थ है–नीचे गिरा हुआ, अर्थात अवरोही स्वर और स्वरित का अर्थ है–सम अर्थात् जो न आरोही हो और न अवरोही।

4.9.2.3 अनुस्वार और अनुनासिक में अंतर

अनुस्वार (ं) और अनुनासिक (ँ) हिन्दी में अलग–अलग ध्वनियाँ हैं। संस्कृत में अनुस्वार की परिभाषा है–'मोऽनुस्वारः' और अनुनासिक की परिभाषा है–'मुखनासिकावचनोनुनासिकः'। अनुस्वार के उच्चारण में निःश्वास वायु नाक से अधिक निकलती है और मुख से कम। जैसे– अंक, पंच, गंग, अंग, अंश आदि। जबकि अनुनासिक के उच्चारण में नाक से बहुत कम श्वास निकलती है और मुख से अधिक निकलती है, जैसे– आँत, गाँव, चिड़िया आदि। अनुस्वार पूर्ण नासिक्य ध्वनि है। इस ध्वनि के उच्चारण में मुँह बंद कर नाक से पूरी साँस ली जाती है। अनुनासिक स्वर है और अनुस्वार मूल रूप से व्यंजन है। अनुस्वार स्वर के बाद आने वाला व्यंजन है। इसकी ध्वनि नाक से निकलती है। अनुस्वार का प्रयोग पंचम वर्ण (ङ., ञ्, ण्, न् तथा म्) के स्थान पर किया जाता है। जैसे –

गङ्.गा–गंगा,

चञ्चल–चंचल,

झण्डा–झंडा ,

गन्दा–गंदा,

कम्पन–कंपन

अनुनासिक स्वर में ध्वनि मुख के साथ नासिका द्वार से भी निकलती है। अतः अनुनासिका को प्रकट करने के लिए शिरोरेखा के ऊपर चंद्र बिंदु या बिंदु का प्रयोग करते हैं। जिन स्वरों की मात्राएं शिरोरेखा के ऊपर नहीं लगती, उनमें चंद्रबिंदु का प्रयोग करते हैं– जैसे– अ, आ उ, ऊ। उदाहरण के रूप में –हँस, चाँद, पूँछ। शिरोरेखा के ऊपर लगी मात्राओं वाले शब्दों में अनुनासिका के स्थान पर अनुस्वार अर्थात् बिंदु का प्रयोग ही होता है। जैसे–गोंद, कोंपल।

बोध प्रश्न

7. चवर्ग के व्यंजनों को कहा जाता हैः

   (क) कण्ठ्य (ख) तालव्य (ग) मूर्धन्य (घ) वर्त्स्य।

8. निम्नलिखित में से कौन सा आंशिक अवरोधी व्यंजन ध्वनियों का भाग नहीं है ?

   (क) लुण्ठित (ख) नासिक्य (ग) स्पर्श संघर्षी (घ) पार्श्विक।

4.10 द्वित्व व्यंजन और संयुक्त व्यंजन

जब दो या दो से अधिक स्वर–रहित व्यंजन, स्वर–युक्त व्यंजन से मिलते हैं, तब संयुक्त व्यंजन ध्वनि बनती है। ये दो प्रकार के हो सकते हैं– समध्वनि और विषम

ध्वनि। जहाँ पर मिलने वाले दोनों व्यंजन एक ही होते हैं, उसे द्वित्व व्यंजन कहते हैं। जैसे– धिक्कार, उच्च, छिन्न, बत्ती आदि। इसमें एक समान दो ध्वनियों का संयोग है। ऐसे स्थानों पर जिह्वा या ओष्ठ आदि उसी स्थान पर कुछ रुककर उसी अवस्था में दूसरी ध्वनि का उच्चारण करते हैं। जहाँ पर विभिन्न स्थानों से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ मिलती हैं, उन्हें संयुक्त व्यंजन कहते हैं। जैसे–क्त, ष्ट, स्फ, प्त (रक्त, वक्त, स्पष्ट, स्फटिक, सप्त) संयुक्त व्यंजनों में एक साथ दो स्थानों पर स्पर्श व अवरोध होता है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. भाषिक ध्वनि किसे कहते हैं?
2. भाषिक ध्वनियों के विभाजन के आधार क्या हैं?
3. वागिन्द्रिय से क्या तात्पर्य है?
4. स्वर और व्यंजन में क्या अंतर है?
5. स्वरों के वर्गीकरण के प्रमुख आधार कौन–कौन से हैं?
6. मूलस्वर और संयुक्त स्वर में क्या अंतर है?
7. उच्चारण स्थान के आधार पर व्यंजनों के कितने भेद हैं?
8. बाह्य प्रयत्न से क्या तात्पर्य है?
9. बाह्य प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण कीजिए?
10. आभ्यंतर प्रयत्न से क्या तात्पर्य है?
11. अल्पप्राण और महाप्राण किसे कहते हैं?
12. घोष और अघोष ध्वनियाँ किसे कहते हैं?
13. अनुस्वार और अनुनासिक में क्या अंतर है?
14. द्वित्व व्यंजन और संयुक्त व्यंजन से आप क्या समझते हैं?
15. संवृत विवृत और अग्र–पश्च स्वरों का अन्तर स्पष्ट कीजिए?
16. होठों के आकार के अनुसार इ, ऊ, ओ, ए स्वरों का भेद बताइए।
17. सघोष और महाप्राण व्यंजन की परिभाषा बताकर उदाहरण दीजिए ?

4.11 सारांश

स्वन विज्ञान की इस इकाई में आपने ध्वनि की परिभाषा, वागिन्द्रिय, वाग्यंत्र के वर्गीकरण, स्वर–व्यंजन की परिभाषाओं एवं वर्गीकरण का अध्ययन किया और जाना कि भाषा ध्वनि और प्रतीकों की संरचना है। जिन अवयवों या अंगों की सहायता से भाषा ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है, उन्हें वागिन्द्रिय या उच्चारण अवयव कहा जाता है। ध्वनि निःश्वास वायु की उपजात या बाइप्रोडक्ट है। श्वसन–तंत्र में नासिका–विवर, स्वर–यंत्र और फेफड़े भाषण के काम आते हैं तथा पाचन–तंत्र में मुख–विवर और ग्रसनिका या गलबिल (गले का छेद)। इस प्रकार इन दोनों तंत्रों के कुछ अवयव भाषा की उत्पत्ति में सहायक होते हैं, जिन्हें वागिन्द्रिय या भाषणेन्द्रिय नाम से पुकारा जाता है। वाग्यंत्र के समस्त अवयवों को कार्य और उपयोगिता की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– उच्चारण स्थान और करण। स्थान और करण में वस्तुतः स्थिरता और चंचलता का अंतर होता है। ध्वनियों के दो प्रसिद्ध

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 74 8/18/2021 12:21:38 PM

भेद हैं—स्वर और व्यंजन। स्वर और व्यंजन में अन्तर प्रायः यह बताया जाता है कि स्वर उसे कहते हैं, जिसका उच्चारण स्वयं हो और व्यंजन वह है जिसके उच्चारण में स्वर की सहायता लेनी पड़े। आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के अनुसार स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण करते समय निःश्वास में कहीं कोई अवरोध नहीं होता। व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण करते समय निःश्वास में कहीं न कहीं अवरोध होता है। स्वर और व्यंजन में दूसरा भेद यह है कि दोनों की मुखरता (Sonority) में अंतर रहता है। जो ध्वनि अधिक दूर तक सुनाई देती है, वह उतनी ही मुखर मानी जाती है। व्यंजनों की अपेक्षा स्वर अधिक मुखर होते हैं। स्थान और प्रयत्न की दृष्टि से स्वर और व्यंजन का वर्गीकरण भी आपने समझ लिया है।

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान और भाषा शास्त्र – कपिल देव द्विवेदी
2. ध्वनि विज्ञान– गोलोक बिहारी
3. हिस्ट्री ऑफ लैंग्वेज़– हेनरी स्वीट
4. भारतीय भाषा विज्ञान – किशोरी दास वाजपेयी

4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) ध्वनि (ख) संरचना (ग) प्रतीक (घ) अलग
2. (क) अर्थपूर्ण (सार्थक) (ख) स्वन (ग) ध्वनि अनुक्रम (घ) भाषा विज्ञान
3. (क) श्रुतिमूलक स्वनविज्ञान
4. (क) सही (ख) सही (ग) सही (घ) सही
5. (वर्त्स)
6. (क) कहीं कोई अवरोध (ख) कहीं न कहीं अवरोध (ग) अधिक (घ) स्वर
7. (ख) तालव्य
8. (ग) स्पर्श संघर्षी

अभ्यासों के उत्तर आप स्वयं देने का प्रयास कीजिए।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 75 8/18/2021 12:21:38 PM

इकाई 5 : स्वनिम विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वनिम की परिभाषा

5.2.1 स्वन, स्वनिम और संस्वन

5.2.2 स्वनिम और अक्षर

5.3 स्वनिम की विशेषताएँ

5.4 खण्ड्य स्वनिम

5.4.1 स्वर

5.4.2 व्यंजन

5.5 खण्ड्येतर स्वनिम

5.6 हिंदी में आगत विदेशी ध्वनियाँ

5.6.1 नुक्ता

5.6.2 अर्धचंद्रकार

5.7 स्वन परिवर्तन के कारण

5.7.1 आभ्यन्तर कारण

5.7.2 बाह्य कारण

5.8 सारांश

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- स्वनिम की परिभाषा बता सकेंगे;
- स्वन, स्वनिम और संस्वन को स्पष्ट कर सकेंगे;
- स्वनिम और अक्षर का संबंध समझ सकेंगे;
- स्वनिम की विशेषताएँ जान सकेंगे;
- खण्ड्य स्वनिम और खण्ड्येतर स्वनिम से परिचित हो सकेंगे;
- हिंदी में आगत विदेशी ध्वनियों को चिन्हित कर सकेंगे और
- स्वन परिवर्तन के कारणों को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

स्वन विज्ञान के अंतर्गत मानवीय उच्चारण अवयवों की औच्चारिक कार्यविधि के आधार पर वाग्ध्वनियों के भौतिक गुणों का विवेचन होता है। इसमें किसी भी भाषा के स्वनों (भाषिक व्यवहार में प्रयुक्त ध्वनियों) का उच्चारण, संवहन और श्रवण के आधार पर

अध्ययन किया जाता है। इस दृष्टि से स्वन विज्ञान के तीन भेद होते हैं–उच्चारणमूलक स्वन विज्ञान, संवहनमूलक स्वन विज्ञान और श्रवणमूलक स्वन विज्ञान। इसमें से उच्चारणमूलक स्वनविज्ञान का अध्ययन आपने पिछली इकाई में किया। स्वनिम विज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमें किसी भाषा विशेष में पाए जाने वाले स्वनिमों और उसकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। स्वन विज्ञान में किसी भाषा विशेष की बात नहीं होती बल्कि भाषामात्र की बात होती है, इसके विपरीत स्वनिम विज्ञान में किसी भाषा विशेष की स्वानिमिक व्यवस्था (ध्वनि व्यवस्था) को देखा जाता है; भाषा विशेष में प्राप्त ध्वन्यात्मक संरचनाओं और व्यवस्थाओं का विश्लेषण वर्णन होता है।

स्वनिम किसी भाषा की लघुतम व्यवस्थापरक इकाई है। मनुष्य के वाग्यंत्र में अनन्त ध्वनियों के उत्पादन की क्षमता है, किन्तु वह सबका उपयोग नहीं करता, क्योंकि किसी भी भाषा की मूलभूत ध्वनियों की संख्या पचास से अधिक नहीं पाई जाती। भाषा की इन्हीं मूलभूत ध्वनियों का विश्लेषण और निर्धारण स्वनिम विज्ञान का लक्ष्य है। स्वनिम सिद्धांत आधुनिक भाषावैज्ञानिक प्रविधि और पद्धति का अपरिहार्य अंग है। स्वनिम का ज्ञान भाषा के शुद्ध उच्चारण को जानने में सहायक होता है। भाषाविज्ञान की दूसरी शाखाएँ जैसे– पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान या अर्थविज्ञान मूलतः स्वनिम पर ही आधारित हैं। पद अनेक स्वनिमों का समुच्चय है और वाक्य अनेक पदों का। इसप्रकार इन तीनों के मूल में स्वनिम की ही सत्ता दिखाई देती है। अतः जब तक स्वनिम का यथावत ज्ञान न होगा, तब तक पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान या अर्थविज्ञान का सम्यक् ज्ञान मुश्किल है। स्वनिम का ज्ञान लेखन–पद्धति या लिपि निर्माण के लिए भी जरूरी है। आदर्श लिपि का लक्षण है कि एक स्वनिम के लिए एक लिपि संकेत हो और एक लिपि संकेत से एक स्वनिम का बोध हो। यह तभी सम्भव है जब स्वनिमों को ध्यान में रखकर लिपि–संकेतों को गढ़ा जाए। देवनागरी में यही गुण है जो रोमन में नहीं है। उदाहरणार्थ–अल्पप्राण अघोष कण्ठ्य ध्वनि एक स्वनिम है जिसे देवनागरी में व्यक्त करने वाला लिपि–संकेत है–क। इसके विपरीत इस ध्वनि के लिए रोमन में कम–से–कम छः संकेत हैं–K (king); C (cat); Q (quorum); Ck(cuckoo); Ch (chemistry); cc (hiccough) इसी तरह C से कहीं क का बोध होता है तो कहीं स का; जैसे –cap या citizen में। तात्पर्य यह है कि स्वनिम के ज्ञान के अभाव में वैज्ञानिक लिपि का निर्माण असम्भव है।

ध्वनि परिवर्तन एवं ध्वनि विकास और उसके कारणों के अध्ययन के द्वारा भाषा में हुए परिवर्तन का इतिहास जाना जाता है। संस्कृत के शब्द पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में किस प्रकार परिवर्तित हुए –यह स्पष्ट करता है। सत्य–सच, घृत–घी, संध्या–सांझ, ग्राम–गाँव क्यों और कैसे हो जाते हैं?–यह भी ध्वनि विज्ञान स्पष्ट करता है।

5.2 स्वनिम की परिभाषा

स्वनिम शब्द अंग्रेजी के फ़ोनीम (phoneme) का नवीनतम हिन्दी रूपान्तर है। इसके लिए अब तक 'ध्वनिग्राम' शब्द का प्रयोग होता रहा है, किन्तु भारत सरकार के पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने 'फ़ोनीम' का हिन्दी रूपान्तर 'स्वनिम' किया है। 'स्वनिम' शब्द संस्कृत के स्वन् धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ होता है ध्वनि या आवाज करना। स्वनिम उच्चरित भाषा का वह न्यूनतम अंश है जो दो ध्वनियों का अंतर प्रदर्शित करता है। 'क' और 'ख' या 'च' और 'प' में अन्तर इसलिए है कि ये भिन्न स्वनिम हैं। 'गान' और 'कान' में अन्तर स्वनिम भेद के कारण ही प्रतीत होता है। सरस, चरस, परस, बरस शब्दों के केवल आरम्भ में एक–एक ध्वनि के अन्तर के कारण प्रत्येक शब्द का अर्थ बदल जाता है। इन शब्दों के अर्थ में

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 77 8/18/2021 12:21:39 PM

भेद का कारण स, च, प, ब ध्वनियाँ हैं, जो भिन्न–भिन्न स्वनिम हैं। इसलिए स्वनिम की परिभाषा में 'अन्तर' शब्द पर बल दिया गया है। पूर्व चर्चा से स्पष्ट है कि ध्वनि उच्चारण में स्वरतंत्रियों का विशेष महत्व है। स्वरतंत्रियों के आकार–प्रकार में आयु और लिंग के अनुरूप परिवर्तन मिलता है। बच्चों तथा स्त्रियों की स्वरतंत्रियाँ पतली व लचीली तथा पुरुषों और वयस्कों की कम लचीली होती हैं। अतः भौतिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ अन्य व्यक्तियों से भिन्न होती हैं। यही कारण है कि किसी व्यक्ति की आवाज से हम उसे पहचान लेते हैं। एक ही शब्द न केवल भिन्न–भिन्न वक्ताओं द्वारा अपितु एक ही वक्ता द्वारा बार–बार बोले जाने पर कुछ न कुछ पृथक अवश्य होता है। इसके अलावा भावों (क्रोध, प्रसन्नता आदि) के अनुरूप ध्वनियों के उच्चारण में सुर ताल बदल जाता है अर्थात् ध्वनि का रूप बदल जाता है किन्तु इससे शब्द के अर्थ में परिवर्तन नहीं आता। किसी भाषा की एक ध्वनि अनेक शब्दों में व्यवहृत होती है। यथा हिन्दी की 'क' ध्वनि कमल, शक्ति, अचानक, पक्का शब्दों में अलग–अलग स्थिति व भिन्न–भिन्न संयोजन क्रम में आइ है। इन सभी स्थितियों में 'क' का उच्चारण समान नहीं है, क्योंकि शब्द की अन्य ध्वनियाँ भी ध्वनि के उच्चारण पर प्रभाव डालती हैं। ध्वनियाँ अपने परिवेश, सन्दर्भ और पर्यावरण से प्रभावित होने के कारण सम्भाषण तारतम्य में बहुधा एकदूसरे में अन्तर्लीन हो जाती हैं अथवा पूर्वापर की ध्वनियों की विशेषता उन पर आच्छादित हो जाती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भाषा विशेष की ध्वन्यात्मक व्यवस्था विशिष्ट होती है और भाषिक ध्वनियों पर अनेक तत्व प्रभाव डालते हैं। उदाहरणार्थ 'फालूदा' और उल्टा' के 'ल' ध्वनि के उच्चारण में भिन्नता है। जबकि सामान्यतया हम उन्हें एक ही मानते हैं। साधारणतया हम उन्हीं भिन्नताओं को जान पाते हैं जो अर्थगत भिन्नता रखती हैं। जैसे काल, खाल, गाल, माल, चाल आदि शब्दों में प्रथम ध्वनि शब्द के अर्थ को परिवर्तित करती है, अतः हम इसके अन्तर को समझते हैं और इनके प्रति सचेत रहते हैं, जबकि पहले दिए गए उदाहरण में 'क' ध्वनि सार्थक परिवर्तन नहीं लाती । अतः वक्ता इसकी भिन्नता के प्रति उदासीन रहता है। भाषा विशेष की ध्वनियों की जिन भिन्नताओं के प्रति भाषाभाषी उदासीन रहते हैं और उन्हें समान ध्वनि के रूप में मान्यता देते हैं–सदृश ध्वनियों के ऐसे समूहों का पारिभाषिक नाम 'स्वनिम' है। इसप्रकार 'स्वनिम भाषा की वह लघुतम इकाई है, जो समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है। यह अन्य ध्वनियों से भिन्न होती है। इसका सम्बन्ध किसी भाषा विशेष से होता है।' (ब्लॉक एण्ड ट्रेगर) देंवेद्रनाथ शर्मा के अनुसार "स्वनिम उच्चरितभाषा का वह न्यूनतम अंश है, जो ध्वनियों का अन्तर प्रदर्शित करते हैं।" ग्लीसन के अनुसार स्वनिम किसी भाषा अथवा बोली में समान ध्वनियों का समूह है। स्वनिम वर्णमाला को द्योतित करता है। भाषा ध्वनि या वर्णमाला के अर्थ में स्वनिम शब्द का प्रयोग अर्वाचीन है। प्रत्येक स्वनिम स्वतंत्र रूप से एक ही संकेत से संकेतित किया जाता है। उच्चारण स्थान और प्रयत्न की समानता के आधार पर स्वनिमों का निर्धारण किया जाता है। क, ख, ग, घ ड., च, छ, ज, झ ञ, ट, ठ, ड, ढ ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ओ, औ आदि हिन्दी के स्वनिम हैं। कुल मिलाकर हिन्दी में 54 स्वनिम हैं। 11 स्वर स्वनिम हैं और 33 व्यंजन स्वनिम। एक विकेन्द्रिय स्वनिम (ऑ), 5 विकेन्द्रिय व्यंजन स्वनिम, दो अन्तस्थ स्वनिम, अनुस्वार स्वनिम, विसर्ग स्वनिम। 11+33+1+5+2+1+1=54 हिन्दी के इन स्वनिमों से अनन्त शब्द निर्मित होते हैं। भाषा की न्यूनतम इकाई स्वन या ध्वनि है। कोई व्यक्ति एक ही ध्वनि का उच्चारण बार–बार एक ही समान नहीं कर सकता। कमल, कपट, कान, कोट, कर्म, कर्ण कठिन आदि शब्दों के आरम्भ में 'क' ध्वनि है। लेकिन प्रत्येक 'क' ध्वनि का उच्चारण भिन्न–भिन्न है। ध्यान देने पर यह उच्चारण भिन्नता साफ दिखाई देगी। एक ही ध्वनि को सौ बार बोलने पर उनमें उच्चारण

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 78 8/18/2021 12:21:39 PM

भिन्नता आ जाएगी। लेकिन इस उच्चारण भिन्नता को अंकित करना नामुमकिन है। स्वनिमों की इस उच्चारण भिन्नता को संस्वन कहते हैं। अर्थात एक ही ध्वनि के उच्चारण में जो भिन्नता हो, जो अन्तर हो, वह संस्वन है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वनिम, संस्वनों का एक वर्ग है। जिन परिस्थितियों में एक स्वनिम, आता है ठीक उन्हीं परिस्थितियों में दूसरा स्वनिम नहीं आ सकता।

5.2.1 स्वन, स्वनिम और संस्वन

स्वन एक भौतिक घटना मात्र है; भाषा निरपेक्ष है। जबकि स्वनिम भाषा सापेक्ष है और सार्थक ध्वनिगत भेद है। स्वन स्थान प्रयत्न आदि भेद से अनन्त हैं; स्वनिमों की संख्या भाषा–विशेष के आधार पर 15 से लेकर 60 तक ही है। स्वन का उच्चारण होता है, स्वनिम का उच्चारण नहीं होता। मानसिक प्रक्रिया में स्वनिम रहते हैं, जबकि बोलने और सुनने में स्वन का ही प्रयोग होता है। परन्तु बोलने से पहले मानसिक चिन्तन में और सुनने के बाद मानसिक ग्रहण में स्वनिम ही रहते हैं। स्वन, स्वनिम का व्यंजक है। क को 100 बार बोलेंगे तो 100 स्वन होंगे। इसका अर्थ है कि कण्ठ से उच्चरित ध्वनि 100 बार बोली गयी जबकि 100 या असंख्य बार बोलने पर भी 'क' एक इकाई है; एक स्वनिम है। कत्व जाति है। स्वनविज्ञान में प्रत्येक ध्वनियाँ छाँटी जाती हैं, उसके आधार पर स्वनिमविज्ञान में उन ध्वनियों के वर्ग या स्वनिम बनाए जाते हैं। हिन्दी भाषा के 'किया' और 'कुआँ' इन दो शब्दों में पाए जाने वाली कण्ठय् ध्वनि के, जिसे हम साधारणतया 'क' कहते हैं, सूक्ष्म विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उक्त दोनों शब्दों में 'क' पूर्णतया एक समान नहीं है। यद्यपि सुनने में यह ध्वनि उक्त उदाहरणों में एक–सी प्रतीत होती है तथापि वास्तव में स्थिति इस प्रकार की नहीं है। इनमें पारस्परिक भिन्नता है, जो इनके उच्चारण के प्रयत्नों की विभिन्नता के कारण है। 'किया' शब्द की 'क' ध्वनि के उच्चारण में जिह्वापश्च कोमलतालु के आगे के स्थान पर मिलता है, परन्तु 'कुआँ' शब्द की क ध्वनि में पीछे के स्थान पर। परिणाम स्वरूप इनके श्रवण–गुण में अंतर पड़ जाता है, किंतु यह अंतर आसानी से मालूम नहीं पड़ता। विषय के स्पष्टीकरण के लिए यदि हम चाहें तो उक्त शब्दों में 'क' ध्वनियों को क्रमशः क1 क2 रूपों में प्रकट कर सकते हैं। इनके सूक्ष्म विश्लेषण में चाहे कितना भी अंतर हो, परन्तु इनका ध्वन्यात्मक रूप एक वर्ग के अंतर्गत है अर्थात् दोनों अल्पप्राण कण्ठ्य ध्वनियाँ हैं। क1 क2 ध्वनियों की सृष्टि प्रक्रिया तथा ध्वन्यात्मक गुण में साम्य होने के कारण सामान्यतः ये एक ही श्रेणी के अतर्गत समझे जाते हैं। इस श्रेणी को स्वनिम कहा जाता है। अतः यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वनिम एक वंश या परिवार का परिचायक है, जिसके भीतर अलग–अलग भाषण ध्वनियों –यथा– क1 क2 की सत्ता सदस्य के रूप में विद्यमान है। अतः क स्वनिम है तो क1 क2 में से प्रत्येक को संस्वन कहा जाता है। यदि प्रत्येक संस्वन के लिए एक–एक लिपि–संकेत का प्रयोग करें तो उनकी संख्या अनन्त हो जाएगी। अतः लेखन की सुविधा की दृष्टि से क1 क2 ध्वनियों के लिए दो अलग–अलग संकेतों के स्थान पर हम केवल एक संकेत –'क' का प्रयोग करते हैं। किसी भी ध्वनि विज्ञान की पुस्तक में ध्वनियों का जो वर्णन मिलता है, वह संस्वन का नहीं, वरन स्वनिम का होता है। प्राचीन भाषाविदों ने जिसे वर्ण या अक्षर कहा है, आधुनिक पाश्चात्य ध्वनिविद प्रायः उसी को फोनीम या स्वनिम कहते हैं। स्वनिम ध्वन्यात्मक रूप से समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है, एक समान ध्वनियों का एक समूह है, तो संस्वन उस समूह का सदस्य है। स्वनिम की एकाकी ध्वनियाँ संस्वन हैं। संस्वन, स्वनिम के व्यवहृत रूप हैं। भाषा में संस्वन का ही प्रयोग होता है, स्वनिम का नहीं। स्वनिम को जाति कहेंगे तो संस्वन को व्यक्ति। काल, कला आदि में कत्व जाति (क् स्वनिम) है, परन्तु व्यवहार में संस्वन का ही

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 79 8/18/2021 12:21:39 PM

प्रयोग होता है। एक स्वनिम के अनेक संस्वन हो सकते हैं। संस्वन के भेद से स्वनिम में भेद नहीं होता। संस्वन में अर्थभेदकता नहीं होती। संस्वन इकाई है, स्वनिम जाति या वंश। स्वनिमों की संख्या निश्चित होती है, संस्वन अनिश्चित होते हैं।

5.2.2 स्वनिम और अक्षर

स्वनिम किसी भाषा की सबसे छोटी इकाई है, जबकि एक ही श्वासाघात या बल में बोले जाने वाले स्वन या स्वन–समुदाय की इकाई को अक्षर कहा जाता है। अक्षर में स्वर ही मेरुदण्ड है। एक अक्षर में एक स्वनिम भी हो सकता है और एक से अधिक स्वनिम भी हो सकते हैं। हिन्दी में सभी स्वर स्वतंत्र अक्षर हैं। चूँकि व्यंजनों का स्वतंत्र उच्चारण नहीं होता, वे किसी न किसी स्वर के साथ जुड़कर ही आते हैं, इसलिए व्यंजन स्वनिम तो हैं किंतु प्रायः स्वतंत्र रूप से अक्षर का निर्माण नहीं करते। हिन्दी में एक से अधिक स्वनिमों के योग से बने शब्दों में अक्षरों की संख्या जानने के लिए देखना होगा कि उस शब्द में कितने स्वर आए हैं। उदाहरण के लिए 'दम' और 'दाम' दोनों शब्द एकाक्षरी हैं इनका विश्लेषण इसप्रकार होगा– द्अम् एवं द्आम्। चूँकि हिन्दी में अन्तिम व्यंजन के बाद स्वर की गणना नहीं होती, अतः 'म' के बाद का 'अ' नहीं दिखाया गया है। हिन्दी में 'क्या', क्यों भी एकाक्षरी हैं। 'स्वास्थ्य' शब्द हिन्दी का सबसे बड़ा एकाक्षरी शब्द है, जिसमें छः स्वनिम हैं। अक्षर को और स्पष्ट करने के लिए आइए कुछ अभ्यास करते हैं। निम्नलिखित शब्दों को बोलिए–**जी, आ साँप, प्राप्त**। क्या इन शब्दों को टुकड़े–टुकड़े करके बोला जा सकता है? क्या कभी बोलते समय 'ज' और 'ई' अलग या साँ और प अलग बोल सकते हैं? सब स्वनिमों को एक ही श्वास में बोलना पड़ेगा। ये सब एकाक्षरी शब्द हैं।

निम्नलिखित शब्द में दो–दो अक्षर हैं–

आटा, प्यासा, बिल्ली ,बाजार, हानि।

निम्नलिखित शब्दों में तीन–तीन अक्षर हैं–

आगंतुक, प्रलोभन, स्वच्छंदता, अँगीठी

निम्नलिखित शब्दों में चार–चार अक्षर हैं–

अनुवादक, एकीकरण, सांप्रदायिक, रजिस्टरी

ध्यान रहे एक अक्षर में वर्ण या स्वनिम तो कई हो सकते है, किंतु स्वर एक ही होगा।

बोध प्रश्न

1. भाषा की न्यूनतम इकाई है?

   (क) स्वन (ख) स्वनिम (ग) संस्वन (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. निम्नलिखित वाक्यों में से सही और गलत वाक्यों को पहचानिए।

   (क) स्वनिम वर्णमाला को द्योतित नहीं करता ( )

   (ख) उच्चारण स्थान और प्रयत्न की समानता के आधार पर स्वनिमों का निर्धारण किया जाता है। ( )

   (ग) हिंदी वर्णमाला में 11 स्वर स्वनिम और 33 व्यंजन स्वनिम हैं। ( )

   (घ) एक ही ध्वनि के एकाधिक उच्चारण में जो भिन्नता या अंतर होता है उसे संस्वन कहते हैं। ( )

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (क) स्वनिम समीपवर्ती ध्वनियों से .... होते हैं।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 80 8/18/2021 12:21:39 PM

(ख) स्वनिम में .... की शक्ति होती है।

(ग) स्वनिम का संबंध .... से है, ... से नहीं।

(घ) एक ही भाषा का प्रत्येक स्वनिम एक–दूसरे से .... होता है।

5.3 स्वनिम की विशेषताएँ

आइए स्वनिम की विशेषताओं पर विचार करते हैं। ये विशेषताएँ इस प्रकार हैंः

1. स्वनिम किसी भाषा की लघुतम अखण्ड्य इकाई होता है। जैसे अ, क, च, ट, त, प। यह एक जाति या श्रेणी है।

2. स्वनिम समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। एक ही ध्वनि यदि अनेक प्रकार से उच्चरित होती है तो स्वनिम एक ही होगा।

3. स्वनिम में अर्थ–परिवर्तन की शक्ति होती है, जैसे –काल, गाल, चाल, लाल में क, ग, च, ल स्वतंत्र स्वनिम हैं। अतः इनके भेद से अर्थ में परिवर्तन हो जा रहा है। 'प' और 'क' भिन्न स्वनिम हैं। 'पल' और 'कल' में 'ल' दोनों शब्दों में है। लेकिन 'प' और 'क' के कारण कल और पल में अर्थ भेद हो गया है।

4. स्वनिम समीपवर्ती ध्वनियों से प्रभावित होते हैं। जैसे 'लाल', 'लूटा', 'उल्टा' में 'ल' ध्वनि। 'लाल' में ल् आ के कारण कण्ठस्थान से प्रभावित है; 'लूटा' में ऊ से तथा 'उल्टा' में 'ट' से। इसप्रकार तीनों 'ल' के उच्चारण में अन्तर है।

5. स्वनिम का सम्बन्ध उच्चरित भाषा से है, लिखित भाषा से नहीं। लिखित भाषा में इसी तरह की इकाई लेखिम होती है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी के though शब्द में स्वनिम केवल दो(द्ओ) हैं, पर लेखिम छः हैं।। इसी तरह अंग्रेजी का 'फ़' एक स्वनिम है, पर उसे लिपि में अभिव्यक्त करने के कई लेखिम हैं,जैसे–f-fine, ff-sufficient, ph-philosophy, pph-sapphire, gh-laugh। इस तरह एक ही 'फ़' स्वनिम को पाँच प्रकार से लिखा गया है।

6. प्रत्येक भाषा के अपने स्वनिम होते हैं, जो दूसरी भाषा से सर्वथा भिन्न होते हैं। जैसे हिन्दी का द्वयोष्ठ्य 'फ' अंग्रेजी में नहीं है, वहाँ केवल दंत्योष्ठ्य 'फ़' है। हिन्दी का 'अ' वृत्ताकार नहीं है, जबकि बांग्ला के 'अ' ओष्ठ को वृत्ताकार करके बोला जाता है।

7. स्वनिम दो प्रकार के हैं–खण्ड्य और खण्ड्येतर। खंड्य में स्वर और व्यंजन आते हैं, क्योंकि इनको पृथक–पृथक किया जा सकता है। खण्ड्येतर में सुर, मात्रा, बलाघात, संगम, अनुनासिकता आदि हैं। अतः केवल स्वरों और व्यंजनों को ही स्वनिम समझना त्रुटिपूर्ण है।

8. एक ही भाषा का प्रत्येक स्वनिम एक दूसरे से भिन्न होता है।

बोध प्रश्न

4. खण्ड्य स्वनिम से संबंधित सही विकल्प पर विचार कीजिए।

(क) इनका विश्लेषण एक स्वतंत्र इकाई के रूप में किया जा सकता है।

(ख) खण्ड्य स्वनिम में वे ध्वनियाँ आती हैं, जिनको पृथक–पृथक बोला जा सकता है और स्वतंत्रत रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है।

(ग) काल और प्रयत्न की दृष्टि से इनका विश्लेषण किया जा सकता है।

(घ) उपर्युक्त सभी

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 81 8/18/2021 12:21:39 PM

5.4 खण्ड्य स्वनिम

जिनका विश्लेषण एक स्वतंत्र इकाई के रूप में किया जा सके, उन्हें खण्ड्य स्वनिम कहते हैं, इनके उच्चारण में मात्रा, सुरों आदि गुणों की आवश्यकता नहीं होती। इन्हें अलग–अलग खण्डित किया जा सकता है। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है। खण्ड्य स्वनिम में वे ध्वनियाँ आती हैं, जिनको पृथक–पृथक बोला जा सकता है और स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है। काल और प्रयत्न की दृष्टि से इनका विश्लेषण किया जा सकता है। खण्ड्य स्वनिम में स्वर और व्यंजन आते हैं। अ, इ, उ, क, च, ट, प आदि को स्वतंत्र रूप से पृथक–पृथक बोला और लिखा जा सकता है। खण्ड्य स्वनिम व्यक्त और विभाज्य होते हैं।

5.4.1 स्वर

भाषा आवश्यक विरामयुक्त एक निर्बाध प्रक्रिया है। बोलते समय उच्चारण अवयव न्यूनाधिक मात्रा में निरन्तर गतिशील रहते हैं। जब हम बोलते हैं तो प्रयुक्त ध्वनियों के क्रम में कोई संकीर्ण व्यवस्था नहीं रहती तथा वैसी स्पष्टता नहीं पाई जाती जैसी लिखित रूप में मिलती है। फिर भी उसका विश्लेषण सम्भव है। परम्परागत रूप में भाषा ध्वनियाँ स्वरों और व्यंजनों में वर्गीकृत हैं। स्वर उसे कहते हैं जिसका उच्चारण स्वयं हो और व्यंजन वह है जिसके उच्चारण में स्वरों की सहायता लेनी पड़ती है। स्वतो राजन्ते इति स्वराः अर्थात् जो स्वयं कायम रहे, वह स्वर है। किंतु यह परिभाषा सर्वथा ग्राह्य नहीं है। जैसे 'संयुक्त' शब्द के उच्चारण में 'क्' ध्वनि का उच्चारण बिना स्वरों की सहायता के हो रहा है। अतः आधुनिक दृष्टि से स्वर वे भाषिक ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है और जिनके उच्चारण में मुख विवर से निःश्वास के मार्ग में कोई अवरोध नहीं होता। बाबूराम सक्सेना ने स्वर की परिभाषा इस प्रकार दी है– "स्वर वह सघोष ध्वनि है जिसके उच्चारण में श्वास नलिका से आती हुई श्वास धाराप्रवाह रूप से अबाध गति से मुख से निकलती है और मुख–विवर में ऐसा कोई संकोच नहीं होता कि किंचितमात्र भी संघर्ष या स्पर्श हो।" उदय नारायण तिवारी के अनुसार "वे ध्वनियाँ जिनके उच्चारण में निर्गत श्वास में कहीं कोई अवरुद्धता न हो, स्वर कहलाती हैं।" देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार" स्वर वह घोष (कभी–कभी अघोष भी) ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख–विवर से निकल जाती है।" इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चार पर अबाध गति से होता है, जिनके उच्चारण के समय निःश्वास वायु में कहीं कोई अवरोध उपस्थित नहीं होता। सामान्यतया ये घोष होती हैं, लेकिन कतिपय भाषाओं में अघोष स्वर भी होते हैं। व्यंजनों के उच्चारण में उच्चारक और उच्चारण स्थान का परस्पर स्पर्श/संघर्ष आदि होता है लेकिन स्वरों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। हिन्दी में 101 स्वर स्वनिम हैं। इनमें से आठ सामान्य स्वर–स्वनिम हैं– अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ए,ओ तथा दो मिश्रित स्वर स्वनिम हैं–ऐ और औ एवं ऑ विदेश से आगत स्वर स्वनिम है। ऐ और औ क्रमशः अइ और अउ के मिश्रित रूप हैं। ऐ और औ स्वतंत्र स्वनिम है, इन्हें ए और ओ का संस्वन नहीं माना जा सकता क्योंकि इनमें उच्चारण स्थान का भेद है और प्रयोग करने पर अर्थ का भेद होता है–जैसे– मेल–मैल, ओर–और।

हिन्दी में अ, इ, उ को मूल स्वर एवं आ, ई, ऊ को उनका दीर्घीकृत रूप मानकर उनको स्वतंत्र स्वनिम न मानना भी सही नहीं है। ऐ, औ की भाँति स्थानभेद और अर्थभेद के कारण इन तीन दीर्घ स्वरों को भी स्वतंत्र स्वनिम मानना उचित है। जैसे– हर–हार, चिर–चीर, सुना–सूना।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 82 8/18/2021 12:21:39 PM

स्वर स्वनिमों में ऋ, अं, अः को नहीं लिया जाता, क्योंकि संस्कृत में इसका उच्चारण स्वर की तरह होता था किंतु हिन्दी में 'ऋ' का उच्चारण अब स्वर की तरह बिना अवरोध के नहीं होता। अब 'ऋ' का उच्चारण 'रि' की तरह होता है। अतः हिन्दी में यह व्यंजनात्मक हो गया है। अं और अः का प्रयोग अनुस्वार(ं), अनुनासिक (ँ) और विसर्ग (:) के रूप में होता है, जो किसी स्वर या व्यंजन के साथ प्रयुक्त होते हैं इसलिए इन्हें भी स्वतंत्र स्वर स्वनिम नहीं माना जा सकता। अनुस्वार (ं), अनुनासिक (ँ) और विसर्ग (:) को अयोगवाह कहा जाता है क्योंकि ये न तो स्वर के अंतर्गत आते हैं न ही व्यंजन के अंतर्गत। अयोगवाह से तात्पर्य उन वर्णों से है जो न स्वर हैं न व्यंजन।

इसप्रकार हिन्दी में (अंग्रेज़ी से आगत 'ऑ' सहित) 11 स्वर माने जाते हैं–

अ, आ, ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

5.4.2 व्यंजन

व्यंजन वे भाषिक ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में मुख विवर में कहीं न कहीं वायु प्रवाह को अवरुद्ध किया जाता है। प्रायः व्यंजनों का स्वतंत्र रूप से उच्चारण नहीं किया जाता। भोलानाथ तिवारी के अनुसार "व्यंजन वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती। या तो उसे पूर्ण अवरुद्ध होकर आगे बढ़ना पड़ता है या संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए निकलना पड़ता है या मध्य रेखा से हटकर एक या दोनों पार्श्वों से निकलना पड़ता है या किसी भाग को कम्पित करते हुए निकलना पड़ता है। इसप्रकार वायु मार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है।" ब्लॉक एण्ड ट्रेगर के अनुसार "व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में फेफड़े से आने वाली वायु स्वरतंत्री या मुखमार्ग में कहीं पूर्णतया रोकी जाती है या अत्यंत संकुचित मार्ग से निकलती है या मुखविवर की स्वर–सीमा से हटती हुई जिह्वा के एक या दोनों ओर से निकलती है, या स्वरतंत्री के ऊपर वाले किसी वाग् अवयव में कम्पन पैदा करती है।'' इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि 1. व्यंजन के उच्चारण में उस प्रकार की निर्बाधता नहीं रहती जिस प्रकार की निर्बाधता स्वर के उच्चारण में रहती है। 2. व्यंजन का स्वतंत्र उच्चारण सम्भव नहीं। व्यंजन घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, स्पर्श, संघर्षी, स्पर्श संघर्षी होते हैं। 3. व्यंजन मौखिक और अनुनासिक दोनों प्रकार के होते हैं। पिछली इकाई में इस पर विस्तार से बात हो चुकी है। हिन्दी में निम्नलिखित व्यंजन हैं–

क ख ग घ ङ **क़ ख़ ग़**

च छ ज झ **ञ**

ट ठ ड ढ ण **ड़ ढ़**

त थ द ध न

प फ ब भ म **फ़**

य र ल व

श ष स ह **ज़**

व्यंजन ध्वनियों में क्ष त्र ज्ञ को नहीं लिया गया है। ये स्वतंत्र स्वनिम न होकर संयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ हैं। जैसे– क्ष = क्ष्, त्र = त्र्, ज्ञ = ज्ञ्। लिखित रूप अलग होने के कारण इन्हें वर्णमाला में रखा जाता है।

हिन्दी में ञ भी स्वतंत्र स्वनिम न होकर न् का संस्वन है। चवर्ग से पहले न् के स्थान पर इसका प्रयोग होता है। ड़ ढ़ को भी स्वतंत्र स्वनिम मानने से कुछ भाषावैज्ञानिकों को आपत्ति है। इन्हें ड और ढ का संस्वन माना जाता है।

क़ ख़ ग़ फ़ ज़ मूलतः विदेश से आयातित ध्वनियाँ हैं।

5.5 खण्ड्येतर स्वनिम

खण्ड्येतर स्वनिम की स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। ये खण्ड्य स्वनिम पर निर्भर रहते हैं। ये अव्यक्त एवं अविभाज्य होते हैं। इन्हें खण्ड्य स्वनिमों से अलग करके नहीं उच्चरित किया जा सकता, किंतु इनमें अर्थ परिवर्तन करने की क्षमता होती है। हिंदी में पूर्वोक्त खण्ड्य स्वनिमों के अतिरिक्त पाँच खण्ड्येतर स्वनिम माने जाते हैं–

(1) **मात्रा या दीर्घता – (Length)**

स्वर और व्यंजन दोनों में मात्रा या दीर्घता के कारण अन्तर होता है। किसी स्वन को उच्चरित करते समय लगने वाली समयावधि को मात्रा कहते हैं। इस दृष्टि से भारतीय आचार्यों द्वारा मात्रा के तीन स्तर बताए गए हैं– ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। इसी कारण अ आ और अ में भेद है। स्वरों में आ, ई, ऊ इन दीर्घ स्वरों को अलग स्वनिम माना गया है। प्लुत या अतिदीर्घीकरण किसी स्वर पर तिगुना या उससे अधिक बल देकर किया जाता है। इसके लिए 3 अंक वर्ण के बाद लिखा जाता है। पुकारने आदि में अन्तिम स्वर पर ऐसा बल दिया जाता है। जैसे– देवदत्तऽ। व्यंजनों में किसी वर्ण के द्वित्व होने पर दीर्घता आती है, उसके उच्चारण में दोगुना समय लगता है और अर्थभेद भी होता है, अतः दीर्घता को स्वतंत्र स्वनिम माना जाता है। जैसे–गदा–गद्दा, बला–बल्ला, सजा–सज्जा, पिला–पिल्ला, बचा–बच्चा, पता–पत्ता ।

(2) **सुर और अनुतान (Intonation)**

हिंदी में सुर या सुर लहर के कारण भी अर्थभेद होता है, अतः इसे स्वनिम माना जाता है। यह पद और वाक्य दोनों में होता है। स्वरतंत्रियों पर कितना तनाव आता है, उस आधार पर इसका भेद किया जाता है। कई बार यह सुर भावनात्मक स्थिति से भी परिवर्तित होते हैं। वैदिक साहित्य में सुर के तीन भेद किये गए हैं–उदात्त (उच्च), अनुदात्त (निम्न) और स्वरित (मध्यम)। एच. ए. ग्लीसन ने सुर या pitch के चार भेद किये हैं–अत्युच्च (extra high), उच्च (high) मध्य (middle) निम्न (low)। जैसे–

राम–राम (सम्बोधन, प्रणाम) — पदों को खींचकर बोलना।

राम–राम (घृणा सूचक) — पदों को शीघ्रता से बोलना।

चोर घड़ी चुरा ले गया। (समान ध्वनि, साधारण वाक्य)

चोर घड़ी चुरा ले गया? ('चुरा' पर बल, प्रश्नसूचक वाक्य)

चोर घड़ी चुरा ले गया! ('ले गया' पर बल, आश्चर्यसूचक वाक्य)

(3) **संगम या संहिता (Juncture)**

शब्दों और वाक्यों में कुछ ध्वनियाँ इस प्रकार संयुक्त रूप में मिलती हैं कि पदच्छेद या यति द्वारा उसके विभिन्न अर्थ निकलते हैं। जैसे–

वरदे (हे वर देने वाली) — वर दे (वर दो)

आजा (दादा) — आ जा (आ जाओ)

पीली (रंग विशेष) — पी ली (पी लिया)

खाली — खा ली

तुम हारे — तुम्हारे

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 84 8/18/2021 12:21:39 PM

(4) **बलाघात (stress)** संस्कृत व हिन्दी में बलाघात पाया जाता है। बलाघात फेफड़े से आने वाली वायु प्रवाह की तीव्रता पर निर्भर होता है। किसी शब्द विशेष पर बल देने से उसके अर्थ में अंतर हो जाता है। वाक्य में जिस शब्द पर बल देंगे, वह मुख्य हो जाएगा, अन्य गौड़। अर्थभेद होने के कारण बलाघात को स्वतंत्र स्वनिम माना जाता है। जैसे–

प'ढ़ा, लि'खा, उ'ठा, बै'ठा (केवल भूतकाल, प्रथम स्वर पर बल)

पढ़ा', लिखा', उठा', बैठा' (द्वितीय स्वर पर बल, प्रेरणार्थक पढ़ाओ आदि)

मैं विद्यालय गया। (सामान्य)

'मैं' विद्यालय गया। (मैं पर बल, अर्थात मैं ही विद्यालय गया, कोई अन्य नहीं)

मैं 'विद्यालय' गया। (विद्यालय पर बल, अर्थात् विद्यालय ही, कहीं अन्यत्र नहीं)

इसी तरह–

रोको, मत जाने दो। रोको मत, जाने दो।

मारो मत, छोड़ो। मारो, मत छोड़ो।

(5) **अनुनासिकता (Nasalization)** अनुनासिकता के कारण शब्दों में अर्थभेद हो जाता है। अतः हिन्दी में यह भी एक स्वतंत्र स्वनिम है। जैसे– गोद–गोंद, रग–रंग, बेदी–बेंदी, पूछ–पूँछ, सास–साँस, सवार–सँवार आदि।

बोध प्रश्न

5. खण्ड्येतर स्वनिम से संबंधित सही और गलत वाक्यों को पहचानिए।
   - (क) खण्ड्येतर स्वनिम की स्वतंत्र सत्ता नहीं होती है। ( )
   - (ख) ये खण्ड्य स्वनिम पर निर्भर रहते हैं। ( )
   - (ग) इन्हें खड्य स्वनिमों से अलग करके उच्चरित नहीं किया जा सकता है। ( )
   - (घ) इनमें अर्थ परिवर्तन की क्षमता नहीं होती है। ( )
6. निम्नलिखित में कौन हिंदी के खण्ड्येतर स्वनिम के अंतर्गत नहीं है।
   - (क) मात्रा या दीर्घता
   - (ख) सुर या अनुतान
   - (ग) बलाघात
   - (घ) अर्द्धस्वर

5.6 हिंदी में आगत विदेशी ध्वनियाँ

5.6.1 नुक्ता

हिंदी में अंग्रेजी तथा अरबी फ़ारसी के शब्द निरन्तर प्रवेश कर रहे हैं। इनका शुद्ध उच्चारण करने के लिए हिन्दी के व्यंजनों के नीचे एक बिंदु लगाया जाता है, इसे ही नुक्ता कहते हैं। जैसे– परम्परागत स्वन है–क, ख, ग, ज, फ। नुक्ता का प्रयोग कर विकसित की गई ध्वनियाँ हैं– क़, ख़, ग़, ज़, फ़।

क़,ख़, ग़, अरबी फारसी की ध्वनियाँ हैं, ज, फ से अंग्रेज़ी व उर्दू दोनों के शब्द बनते हैं। क़,ख़, ग़, ध्वनियों से बनने वाले शब्द हैं–क़यामत, ख़ता, ग़रीब आदि।

ज़ से बनने वाले उर्दू के शब्द हैं–कर्ज़, ताज़ा, ज़िंदगी, ज़िल्लत आदि।

ज़ से बनने वाले अंग्रेज़ी के शब्द हैं– रोज़, इज़, ज़ीरो, प्राइज़, न्यूज़ आदि।

फ़ से बनने वाले उर्दू के शब्द हैं–फ़रियाद, फ़तवा, काफ़िला, फ़साद आदि।

फ़ से बनने वाले अंग्रेज़ी के शब्द हैं–फ़िट, फ़ाइन, फ़ादर, फ़िंगर, कफ़ आदि।

5.6.2 अर्धचंद्रकार

हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ शब्दों में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि हिंदी से भिन्न है। यह ध्वनि 'आ' और ओ' के बीच की है। इसलिए हिंदी में इसके शुद्ध उच्चारण तथा लेखन के लिए अर्धचंद्राकार नामक चिह्न विकसित किया गया है। इसका चिह्न है–ॅ। उदाहरणार्थ–

हॉट(गरम)–हाट(बाज़ार); बॉल(गेंद)–बाल(केश); कॉफी(पेय)–काफी(भरपूर)

बोध प्रश्न

7. हिंदी में आगत विदेशी ध्वनियाँ हैं ?

   (A) नुक्ता (B) अनुस्वार (C) अनुनासिक (D) अर्धचंद्रकार

   (क) केवल A (ख) केवल A, D (ग) केवल D (घ) A, B, C, D सभी।

8. ध्वनि–विकार का बाह्य कारण नहीं है।

   (क) भौगोलिक प्रभाव (ख) सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ
   (ग) प्रयत्न लाघव या मुखसुख (घ) ऐतिहासिक परिस्थितियाँ या काल प्रभाव।

5.7 स्वन परिवर्तन के कारण

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। विश्व की प्रत्येक वस्तु में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। संसार की प्रत्येक वस्तु संसरणशील, परिवर्तनशील है। प्रत्येक भाषा की ध्वनियों में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इसी परिवर्तन के कारण एक–एक शब्द के अनेक अपभ्रंश हो जाते हैं। जैसे– मनुष्य, मानुष, मानस, मनुज आदि। भाषा का प्रमुख तत्व ध्वनि है। वक्ता इसका उच्चारण करता है और श्रोता इसे सुनता है। वक्ता की ध्वनि पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ता है– 1. आभ्यन्तर, 2. बाह्य। वक्ता और श्रोता से संबद्ध कारणों को आभ्यन्तर कारण कहते हैं। जैसे– प्रयत्नलाघव, मुखसुख, अज्ञान, शीघ्रभाषण आदि। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों को बाह्य कारण कहते हैं। ये कारण बाहर से ध्वनि को प्रभावित करते हैं। जैसे– सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक आदि कारण।

इस प्रकार ध्वनि–परिवर्तन के कारणों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है (क) आभ्यन्तर कारण (ख) बाह्य कारण।

5.7.1 आभ्यन्तर कारण

प्रयत्नलाघव या मुखसुख (Economy of effort): इसको उच्चारण सुविधा या उच्चारण–सौकर्य भी कहते हैं। यह ध्वनि–परिवर्तन का सबसे प्रमुख कारण है। मनुष्य स्वभाव से ही कम प्रयत्न करके अधिक लाभ उठाना चाहता है। कम प्रयत्न से ही अपने भावों को स्पष्ट करना चाहता है। मुख की सुविधा के कारण इसे मुख–सुख और उच्चारण की सुविधा या सरलता के कारण उच्चारण–सुविधा आदि कहते हैं। मुख–सुख के लिए कठिन शब्दों को सरल बनाया जाता है और क्लिष्ट उच्चारणों को आदि–स्वरागम, मध्य स्वरागम आदि के द्वारा सरल बनाया जाता है। जैसे– सत्य>सच,

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 86 8/18/2021 12:21:39 PM

कर्म > काम, चक्र > चक्कर, ब्राह्मण > बाम्हन, प्रचार > परचार, स्टेशन > इस्टेशन, हॉस्पिटल > अस्पताल।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। शिलालेखों में शुक्लपक्ष दिवस को शु दि > सुदी, बहुल पक्ष (कृष्ण पक्ष) दिवस को ब दि > बदी लिखा गया है। इससे सुदी और बदी शब्द प्रचलित हुए हैं।

लघुकरण की प्रवृत्ति– लंबे शब्दों को संक्षिप्त या लघु कर दिया जाता है। इसके मूल में भी प्रयत्नलाघव की प्रवृत्ति है। यह प्राचीन प्रवृत्ति है। वार्तिककार कात्यायन ने भी इसका निर्देश दिया है कि नामों आदि में एक अंग के उच्चारण से काम चलाया जाता है। जैसे– देवदत्तः को देवः या दत्तः, सत्यभामा को सत्या या भामा।

इसी प्रकार उपाध्याय > ओझा > झा, नेफा, पेप्सू, मीसा, यूनेस्को आदि शब्द हैं। अंग्रेजी में पूरे नाम के स्थान पर प्रथम अक्षर ले लिए जाते हैं। जयदेव–ज. दे, राम–दत्त > रा. द.। हाईस्कूल–H.S., मास्टर ऑफ आर्टस्–M.A. आदि। इसी प्रकार भारत–यूरोपीय > भारोपीय शब्द है। अंग्रेजी में Break fast + Lunch = Brunch जैसे शब्द प्रचलित हो गए हैं। इस प्रकार नाश्ता, भोजन = नाभो कहा जा सकता है।

अनुकरण की अपूर्णता–अनुकरण के द्वारा ही भाषा सीखी जाती है। वाग्यंत्र की त्रुटि या अज्ञान आदि के कारण अनुकरण पूर्ण नहीं हो पाता है, अतः कुछ शब्दों में परिवर्तन हो जाता है। 'र' का उच्चारण कठिन है, अतः बच्चे राम को लाम, रोटी को लोटी या नोटी कहते हैं। अपढ़ आदमी ज्वायंट को जाइन, इन्स्पेक्टर को सिपट्टर, कोर्ट इन्स्पेक्टर को कोट साहब आदि कहते हैं। अंग्रेजी के प्रभाव से दीप्तिशंकर > डिप्टी शंकर हो गया है।

अशिक्षा–अशिक्षा या अज्ञान के कारण ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। लैन्टर्न > लालटेन, गार्ड > गारद, लाइन > लैन। यह उपर्युक्त दोनों कारणों के साथ मिलकर भी काम करता है। जैसे– मास्टर साहब > मास्साब, साधु > साहु, साहु > साव, गोस्वामी > गोसाईं। अंग्रेजी और अरबी–फारसी आदि के शब्दों में ज़ को ज, क़ को क, ग़ को ग, आदि कर देते हैं। वन्द्योपाध्याय > बनर्जी, मुख्योपाध्याय > मुकर्जी, गंगोपाध्याय > गांगुली भी इसी प्रकार बने हैं।

शीघ्र भाषण – शीघ्र बोलने के कारण भी ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। इसमें मध्यगत ध्वनियों का प्रायः लोप हो जाता है। इसके साथ लघुकरण की प्रवृत्ति भी देखी जाती है। जैसे– भातृजाया > भौजी, उन्होंने > उन्ने, किसने > किन्ने, अब ही > अभी, तब ही > तभी किस ही > किसी, अंग्रेजी में Do not > Don't, will not > won't.

भावातिरेक प्रेम, क्रोध आदि भावावेश में शब्दों में ध्वनि–परिवर्तन हो जाता है। राम > रामू, कृष्ण > कान्हा, कन्हैया, लालचन्द > लल्लू, पुरुषोत्तम > परसू, बेटी > बिटिया, बहू > बहुरिया, बच्चा > बाचा, बचवा, बाबू > बबुआ, बब्बू आदि। ऐसे शब्दों की संख्या न्यून है।

काव्यात्मकता

काव्य में छन्द के कतिपय नियमों का पालन करना पड़ता है। इसके लिए कभी ह्रस्व को दीर्घ, दीर्घ को ह्रस्व, कुछ वर्णागम आदि किया जाता है। हिन्दी के सभी काव्यों में, विशेषकर सूर, तुलसी और रीतिकालीन कवियों के काव्यों में यह प्रवृत्ति बहुत है। फलस्वरूप ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। लय एवं तुक के लिए बहुत से शब्दों में ध्वनि–परिवर्तन किया जाता है। जैसे–वीर से वीरा, कबीर से कबिरा, सूर से सूरा, नदी से नदिया, द्वार से दुआर, स्थिर से थिर, नहीं से नाहीं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 87 8/18/2021 12:21:39 PM

बलाघात

ध्वनिपरिवर्तन में बलाघात का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस ध्वनि पर बल दिया जाता है, वह शेष रहती है, अन्य निर्बल ध्वनियाँ क्षीण हो जाती हैं। अतएव संस्कृत में चतुरीय और चतुर्य के तुरीय और तुर्य (चतुर्थ) रूप हो जाते हैं। इसी प्रकार अभ्यन्तर > भीतर, उपरि > पर, एकादश > ग्यारह, द्वादश > बाहर।

कृत्रिमता या आत्मप्रदर्शन

बनकर बोलने की प्रवृत्ति आत्मप्रदर्शन कहलाती है। बनकर बोलने से ध्वनियों में अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। यथा– इच्छा से इक्षा, शाप से श्राप, बहिनों से भैनों आदि।

भ्रामक व्युत्पत्ति

भ्रमवश कुछ शब्दों को स्वभाषा के अनुरूप बना लिया जाता है। अन्य भाषा के शब्दों को दूसरी भाषा में लेते समय प्रायः इस प्रकार के ध्वनिपरिवर्तन होते हैं। मैक्समूलर > मोक्षमूलर, इन्तिकाल (अरबी) > अन्तकाल, प्रोग्राम > पुरोगाम, गो डाउन > गोदाम।

वाग्यंत्र की विभिन्नता–जिसप्रकार संसार के हर मनुष्य की शारीरिक रचना अलग–अलग प्रकार की होती है, उसी प्रकार उसका वाग्यंत्र भी एक दूसरे से भिन्न होता है। परिणाम स्वरूप वाग्यंत्र से उच्चरित ध्वनियों में भी अंतर आ जाता है।

श्रवणेन्द्रिय की विभिन्नता–वाग्यंत्र की ही भाँति व्यक्ति के श्रवणेन्द्रिय में भी विभिन्नता होती है। भाषा अनुकरण से सीखी जाती है, अनुकरण में श्रवणेन्द्रिय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यदि किसी ध्वनि को ठीक रूप में नहीं सुना जा सका तो गलत रूप में सुनी ध्वनि धीरे–धीरे सही रूप की ध्वनि का स्थान ग्रहण कर लेती है। इसप्रकार धीरे–धीरे ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती हैं।

आत्मप्रदर्शन–बनकर बोलने की स्थिति आत्मप्रदर्शन कहलाती है। बनकर बोलने से ध्वनियों में अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। जैसे– इच्छा से इक्षा, शाप से श्राप आदि।

उच्चारण त्वरा

कुछ व्यक्ति बड़ी जल्दी–जल्दी बोला करते हैं और उनके जल्दी बोलने के कारण बहुत से शब्दों के रूप परिवर्तित होकर कुछ का कुछ हो जाया करते हैं। जैसे– चावल–दाल को चाल–दावल, बाटी–चोखा को चोखी–बाटा।

प्रतिध्वनि–प्रवृत्ति– कुछ व्यक्तियों में प्रायः यह मनोवृत्ति पाई जाती है कि वे जब कुछ बोलते हैं, उनकी बोलचाल में कुछ ऐसे शब्द अनायास आ जाते हैं, जो पूर्व उच्चरित ध्वनि के अनुकरण पर ही होते हैं और जिनमें पूर्व उच्चरित शब्द की प्रतिध्वनि पूर्णतया सुनाई पड़ती है। जैसे– रोटी–वोटी, पानी–वानी, नाश्ता–वाश्ता, पापड़–शापड़ आदि।

लिपि की अपूर्णता–बहुत से ध्वनि–विकार इसलिए भी हो जाते हैं कि सभी लिपियों में सभी भाषाओं की ध्वनियों को अंकित करने वाले ध्वनि–चिह्न नहीं होते। जैसे रोमन लिपि में Rama लिखा जाए, तो इसे रमा, रामा, राम और रम पढ़ा जा सकता है।

5.7.2 बाह्य कारण

ध्वनि–विकार के बाह्य कारण मुख्यतया चार होते हैं–

व्यक्तिगत, भौगोलिक और सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा ऐतिहासिक परिस्थितियाँ या काल का प्रभाव।

व्यक्तिगत कारण

ध्वनि का सम्बन्ध व्यक्ति से अत्यन्त गहन होता है। क्योंकि प्रायः एक व्यक्ति दूसरे को अनुकरण करके ही भाषा सीखता है। इस अनुकरण में दो इन्द्रियों की जरूरत होती

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 88 8/18/2021 12:21:39 PM

है–श्रवण इन्द्रियाँ और वाग् इन्द्रियाँ। श्रवणेन्द्रिय से ध्वनि को सुनता है और वागिन्द्रिय से उस ध्वनि का उच्चारण करता है। संसार में जितने व्यक्ति होते हैं, उतनी ही श्रवणेन्द्रिय और वागिन्द्रियाँ होती हैं। श्रवणेन्द्रिय की विविधता के कारण कभी–कभी यह होता है कि एक व्यक्ति कुछ कहता है और दूसरे कुछ और ही सुना करते हैं। कहने वाला बोलता है–'ओऽम नमः सिद्धम्' और सुनने वाला सुनता है–'ओनामासीधम'। श्रवण की अपूर्णता के कारण ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। ऐसे ही वागिंद्रिय की विविधता के कारण कोई 'त' को 'ट' कहता है, कोई 'ट' को 'त'। जैसे–एक अंग्रेज़ 'तोताराम' को 'टोटाराम' कहता है और छोटे बच्चे 'रोटी' को 'रोती'।

भौगोलिक प्रभाव

भौगोलिक कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। मानव जिस वाग्यंत्र से ध्वनियों का उच्चारण करता है, उसकी रचना पर भौगोलिक वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। जो शीत प्रधान देश हैं, वहाँ के निवासियों का वाग्यंत्र पूर्णरूप से खुल नहीं पाता, इसलिए वो प्रायः दन्त्य ध्वनियों (त, थ, द) का उच्चारण ठीक नहीं कर पाते। इसीलिए 'स' को 'श', 'त' को 'ट', 'थ' को 'ठ', 'द' को 'ड' बोला करते हैं। पहाड़ी जिलों में स को श बोलते हैं। समाचार > शमाचार, सन्देश > शन्देश, सीट > शीट। फारसी में स को ह हो जाता है। जैसे– सिन्धु > हिन्दु, सप्ताह > हफ्ता।

सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ

सामाजिक एवं राजनीतिक उन्नति या अवनति के कारण शब्दों में ध्वनि–परिवर्तन हो जाता है। उन्नति की अवस्था में शब्दों के शुद्धरूप पर बल दिया जाता है और अवनति से समय अपभ्रंश रूपों की अधिकता होती है। पण्डित > पंडा, यजमान > जजमान, दिल्ली > देहली, Delhi, मुंबई > बम्बई, Bombay, कलिकाता > कलकत्ता, बुद्ध > बुद्धू, लुंचितकेश > लुच्चा, आर्डर्ली > अर्दली, वाराणसी > बनारस।

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ या काल प्रभाव– विशिष्ट काल की परिस्थितियाँ भी विशिष्ट होती हैं। प्राचीन काल से आजतक हम किन–किन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से होकर गुजरे तथा किन–किन कालों में हमारा सम्पर्क किस–किस जाति या देश के लोगों से हुआ, ये सब बातें हमारे इतिहास से संबंधित हैं। लेकिन इसका प्रभाव भी हमारी भाषा पर ध्वनि परिवर्तन आदि रूपों में होता है। वैदिक ध्वनियाँ ही संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी में आयी हैं। परम्परागत ध्वनि समूह विदेशियों के सम्पर्क से भी प्रभावित हुआ है। यथा– द्रविड़ के सम्पर्क से मूर्धन्य, अंग्रेजी के सम्पर्क से ऑ ध्वनि तथा मुगलों के सम्पर्क से क़, ग़ ज़ आदि ध्वनियाँ हिन्दी को प्राप्त हुई हैं।

अभ्यास

1. स्वनिम का क्या अर्थ है? उदाहरण सहित समझाइए।
2. स्वन, स्वनिम और संस्वन के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
3. अक्षर किसे कहते हैं? एकाक्षरी और तीन अक्षरी के उदाहरण दीजिए।
4. नीचे लिखे शब्दों के अक्षर अलग–अलग कीजिए– सन्नाटा, प्रारम्भिक, प्रलोभन, बाजार, अनुवादक।
5. स्वनिम की पाँच प्रमुख विशेषताएं बताइए।
6. खण्ड्य और खण्ड्येतर स्वनिम से क्या आशय है? हिन्दी के खण्ड्य स्वर स्वनिम कौन–कौन से हैं?
7. हिन्दी में कुल कितने मूल और आगत व्यंजन हैं?

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 89 8/18/2021 12:21:39 PM

8. हिन्दी में आगत विदेशी ध्वनियाँ कौन–कौन सी हैं?

9. सुर या तान से अर्थ परिवर्तन के उदाहरण दीजिए।

10. ध्वनि परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य कारण से क्या आशय है? उदाहरण से समझाइए।

11. निम्नलिखित शब्दों में होने वाले ध्वनि परिवर्तन के कारण बताइए–

    वाराणसी > बनारस, सन्देश> शन्देश, तोताराम > टोटाराम, बाटी–चोखा को चोखी बाटा, गो डाउन > गोदाम, अब ही > अभी, तब ही > तभी, कृष्ण > कान्हा, प्रचार > परचार, स्टेशन > इस्टेशन

5.8 सारांश

जिस प्रकार ध्वनि विज्ञान में ध्वनियों की प्रकृति तथा उसके स्वरूप परविचार की आवश्यकता है, उसी प्रकार मुख से निःसृत ध्वनियों का ठीक–ठीक प्रतिलेखन भी आवश्यक है; क्योंकि किसी भी भाषा के विश्लेषण में मुख से निःसृत ध्वनियों को ध्वनि लिपि की सहायता से संकेतित करना ध्वन्यात्मक विवेचन के लिए परम आवश्यक है। इसलिए विद्वानों ने एक स्वतंत्र लिपि स्वीकार कर ली, जिसमें एक फोनीम या स्वनिम को केवल एक ही संकेत के द्वारा संकेतित किया जाता है, अर्थात् शब्द में आई हुई एक सार्थक ध्वनि के लिए केवल एक ही संकेत का प्रयोग किया जाता है। अतः किसी भी भाषा विषयक विवेचन में फोनीम या स्वनिम के विषय में स्पष्ट धारणा का होना आवश्यक है। पिछली इकाई में आपने भाषण–ध्वनि के ध्वन्यात्मक स्वरूप को जाना और इस इकाई में आपने स्वनिमीय स्वरूप को। संस्कृत में फोनीम के अर्थ में 'वर्ण' का प्रयोग हुआ है, परन्तु वर्ण शब्द इतना व्यापक है कि इसका प्रयोग विभिन्न प्रकारों से किया जाता है। इसलिए फोनीम के लिए वर्ण शब्द का व्यवहार उचित नहीं है। हिन्दी में इसके लिए स्वनिम या ध्वनिग्राम शब्द का प्रयोग होता है। संक्षेप में भाषण–ध्वनि एक ध्वन्यात्मक इकाई है, जिसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं, परंतु स्वनिम एक वंश है, जिसमें कई ध्वनियाँ समाविष्ट हैं। ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान भाषण ध्वनियों को स्वनिम कहते हैं। स्वनिम अर्थ–विभेदक होता है, उसमें किसी भाषा के अंतर्गत अर्थ–भेद करने की क्षमता होती है। जैसे– 'थान' और 'दान' शब्दों के अर्थ–भेदक 'थ' और 'द' हैं। अतः 'थ' और 'द' स्वनिम हैं। दूसरे, स्वनिम की सत्ता मानसिक यथार्थ होती है। याद रखने की बात है कि 'फ़ोन' और 'फ़ोनीम' अर्थात् स्वन और स्वनिम सदैव मौखिक ध्वनि से सम्बन्धित होते हैं, लिखित अक्षर से नहीं। हिन्दी भाषा के 'किया' और 'कुआँ' इन दो शब्दों में पाई जाने वाली कण्ठ्य ध्वनि के, जिसे हम साधारणतया 'क' कहते हैं, सूक्ष्म विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उक्त शब्दों में 'क' पूर्णतया एक समान नहीं है। यद्यपि सुनने में यह ध्वनि उक्त उदाहरणों में एक–सी प्रतीत होती है, तथापि वास्तव में स्थिति इस प्रकार की नहीं है। इनमें पारस्परिक भिन्नता है, जो इनके उच्चारण के प्रयत्नों की भिन्नता के कारण है। जहाँ समान भाषण–ध्वनियों का वर्ग स्वनिम कहलाता है, वहाँ किसी एक स्वनिम में व्यवहृत उच्चारण की दृष्टि से पृथक्–पृथक् भाषण–ध्वनियों को संस्वन कहते हैं। जैसे 'थ' एक स्वनिम है। परन्तु यह 'थ' कहीं किसी शब्द के आदि में आ सकता है (जैसे–'थान'), कहीं मध्य में आ सकता है (जैसे–हथौड़ा) और कहीं अन्त में आ सकता है (जैसे–हाथ) ऐसे ही, कभी यह दो स्वरों के मध्य आ सकता है, कहीं इनके पार्श्ववर्ती स्वर ह्रस्व, दीर्घ, ह्रस्व–दीर्घ या दीर्घ–ह्रस्व हो सकते हैं। प्रत्येक स्थिति में उच्चारण की दृष्टि से यह परिवर्तित होता रहता है। इस तरह एक ही स्वनिम 'थ' अपनी अनेकानेक परिवर्तित स्थितियों के साथ जब पृथक–पृथक भाषण–ध्वनियों के रूप में आता है, तब वे भाषण ध्वनियाँ 'संस्वन' कहलाती हैं। स्वनिम के दो भेद होते हैं–खण्ड्य और खण्ड्येतर। खण्ड्य

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 90 8/18/2021 12:21:40 PM

स्वनिम के अंतर्गत स्वर और व्यंजन तथा खण्ड्येतर स्वनिम के अंतर्गत दीर्घता, अनुनासिकता, बलाघात, अनुतान और संगम आते हैं। हिन्दी में कुल स्वनिमों की संख्या 56 हैं, जिनमें से खण्ड्य स्वनिम के अंतर्गत स्वर स्वनिम के 11 भेद—केन्द्रीय 10 और अकेन्द्रीय 1 (ऑ) तथा खण्ड्य व्यंजन स्वनिम के अंतर्गत 40 भेद—केन्द्रीय—35 औ अकेन्द्रीय 05(क़, ख़, ग़,ज़,फ़); और खण्ड्येतर 5 स्वनिम होते हैं। प्रत्येक सजीव भाषा में सतत् परिवर्तन होता रहता है। भाषा में यह विकास सदैव ध्वनि—विकार के द्वारा हुआ करता हैऔर ध्वनि—विकार के अनेक कारण होते हैं। ध्वनि—विकार के इन कारणों को सुविधा की दृष्टि से बाह्य और आभ्यंतर कारणों में बाँटा जा सकता है।

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. (क) स्वन
2. (क) गलत (ख) सही (ग) सही (घ) सही
3. (क) प्रभावित (ख) अर्थ—परिवर्तन (ग) उच्चरित भाषा, लिखित भाषा (घ) भिन्न
4. (क) घ
5. (क) सही (ख) सही (ग) सही (घ) गलत
6. (घ) अर्द्धस्वर
7. (ख) केवल A, D
8. (ग) प्रयत्न लाघव या मुखसुख।

अभ्यासों के उत्तर स्वयं लिखने का प्रयास करिए।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 91 8/18/2021 12:21:40 PM

इकाई 6 : रूप विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 रूप या पद

6.3 पद और वाक्य

6.4 पद और शब्द

6.5 शब्द और पद में अन्तर

6.6 शब्द के भेद

6.7 पद के भेद या पद–विभाग

6.7.1 संज्ञा

6.7.2 सर्वनाम

6.7.3 विशेषण

6.7.4 आख्यात या क्रिया

6.7.5 अव्यय

6.7.5.1 क्रियाविशेषण

6.7.5.2 संबंधबोधक

6.7.5.3 समुच्चयबोधक

6.7.5.4 विस्मयादिबोधक

6.7.6 निपात

6.8 सम्बन्धतत्व और अर्थतत्व

6.9 सम्बन्धतत्व के प्रकार

6.10 अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का संयोग

6.11 सारांश

6.12 उपयोगी पुस्तकें

6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भाषा की लघुतम सार्थक इकाई रूप या पद का सम्यक् बोध कराना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- शब्द, शब्द निर्माण की प्रक्रिया तथा शब्दों के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे;
- रूप या पद के विषय में बता सकेंगे;
- शब्द और पद में अंतर कर सकेंगे;
- संबंध तत्व और अर्थतत्व को समझ सकेंगे; और
- संबंध तत्व के कार्य, प्रकार और हिंदी के संबंधतत्वों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

रूपविज्ञान में शब्दों की रूप–रचना का अध्ययन होता है। इसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि कौन–कौन सी युक्तियों के सहारे शब्दों को पद या रूप में परिवर्तित किया जाता है। ध्वनि–समूह की सार्थक इकाई को शब्द कहा जाता है। उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द। ध्वनि सार्थक हो ही, यह आवश्यक नहीं है– जैसे : अ, क, च, ट, त, प ध्वनियाँ तो हैं किंतु सार्थक नहीं। अब, कब, चल, टल, पल आदि शब्द हैं, क्योंकि इनमें सार्थकता है अर्थात् अर्थ देने की क्षमता है। शब्द का अर्थ प्रायः निश्चित रहता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसमें प्रयोग–क्षमता भी रहे। शब्द में वाक्यों में प्रयुक्त होने की क्षमता प्रायः नहीं रहती अर्थात् सार्थक हो जाने से ही शब्द में प्रयोग–योग्यता नहीं आ जाती। कोश में हजारों हजार शब्द रहते हैं, उसी रूप में उसका प्रयोग भाषा में नहीं होता। उनमें कुछ परिवर्तन करना होता है। उदाहरणार्थ– कोश में 'पढ़ना' शब्द मिलता है और वह सार्थक भी है, किंतु प्रयोग के लिए 'पढ़ना' रूप ही पर्याप्त नहीं है। साथ ही केवल 'पढ़ना' कहने से उसका अर्थ भी स्पष्ट नहीं होता। 'पढ़ना' के अनेक अर्थ हो सकते है जैसे– पढ़ता है, पढ़ रहा है, पढ़ रहा होगा, पढ़ा, पढ़ता, पढ़ता या पढ़ा है, पढ़ा था, पढ़ा होगा, पढ़ेगा, पढ़ी, पढ़े, पढ़ना, पढ़ने के लिए आदि। 'पढ़ना' के ये अनेक रूप जिस प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं, उसी का अध्ययन पद विज्ञान का विषय है। इसी तरह 'मैं' का प्रयोग करना हो तो उसके भी अनेक रूप हो जाते हैं– मैं, मुझको, मुझमें आदि। इसीलिए संस्कृत के वैयाकरणों ने शब्द के दो भेद किए–शब्द और पद। शब्द में प्रयोग–क्षमता लाने के लिए शब्द को रूप में परिवर्तित करना पड़ता है। इस प्रकार शब्दों के अनेक रूप जिस प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं, उसी का अध्ययन पदविज्ञान या रूप विज्ञान का विषय है। इस इकाई में आप पद–रचना का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

6.2 रूप या पद

रूप विज्ञान में रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। रूप क्या है? इस प्रश्न पर विचार करें तो हम कह सकते हैं कि सार्थक ध्वनियों के समुच्चय को रूप कहते हैं। प्रायः देखा जाता है कि हम मुख से जो भी ध्वनि निकालते हैं, वे सभी सार्थक नहीं होतीं। जैसे– अ, क, र, य, म, प, ओ, उ आदि ध्वनियों का मुख से उच्चारण करें, तो हम देखते हैं कि इन ध्वनियों का स्वयं में कोई अर्थ नहीं है। यदि हम इनको समन्वित करके 'राम', 'रावण', बाण, मारना आदि कहें तो ये सार्थक ध्वनियाँ हो जाएँगी और इन सार्थक ध्वनियों के कुछ रूप बन जाएंगे, जिन्हें हम शब्द कहेंगे। ये शब्द अनेक प्रकार के होते हैं। शब्दों के भेद अनेक दृष्टियों से किए गए हैं। ये अनेक प्रकार के शब्द अभी भी किसी विचार, मनोभाव या इच्छा को व्यक्त करने में सक्षम नहीं होते हैं, जब तक कि इनको विभक्ति, प्रत्यय या परसर्ग द्वारा संयुक्त करके किसी वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य नहीं बनाया जाता। इन सार्थक ध्वनियों के समुच्चय को जब विभक्तियों, प्रत्ययों या परसर्गों से संयुक्त करके व्यवस्थित ढंग से एक वाक्य में व्यक्त किया जाए तब ये शब्द 'रूप' या 'पद' कहलाते हैं। 'राम ने रावण को बाण से मारा' कहने पर ध्वनियाँ वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य रूप ग्रहण कर लेंगी। इस प्रकार रूप से तात्पर्य उन सार्थक ध्वनियों के समुच्चय से है, जो किसी एक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए या किसी एक विचार या भाव की व्यंजना के लिए प्रयोग में लायी जाती हैं। वस्तुतः रूप या पद पर्यायवाची शब्द हैं, जिनका सम्बन्ध शब्दों से भी है और वाक्यों से भी। शब्द ही वाक्य में प्रयुक्त होकर पद या रूप कहलाते हैं। भाषाविज्ञान में दो संरचनाओं को स्वीकार किया गया है–ध्वन्यात्मक संरचना और व्याकरणात्मक संरचना। ध्वन्यात्मक संरचना के अंतर्गत स्वनविज्ञान और स्वनिम विज्ञान की चर्चा हो

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 93 8/18/2021 12:21:40 PM

चुकी है। भाषा की व्याकरणात्मक संरचना भी दो प्रकार की होती है–रूपात्मक संरचना और वाक्यात्मक संरचना। तात्पर्य यह है कि रूप या पद भाषा की व्याकरणात्मक अभिव्यक्ति का लघुतम माध्यम है। भाषा की ध्वनि या स्वनिम में अर्थ की अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं होती। यह क्षमता रूपों या वाक्यों में होती है। रूप या पद ध्वनियों का वह सार्थक युग्म है, जो व्याकरण के अनुरूप परिवर्तित होकर कथन में व्यवहृत होता है। इन्हीं रूपों का छोटा या बड़ा समूह वाक्य कहलाता है।

6.3 पद और वाक्य

सार्थक शब्दों के समूह को वाक्य कहते हैं। जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त किया जाता है तो वह पद बन जाता है। वाक्य में प्रयुक्त एक शब्द को पद कहा जाता है और उसके समूह को वाक्य। भाषा की सार्थक इकाई वाक्य है। वाक्य में पद और पदों में वर्ण होते हैं। विचार करने से ज्ञात होता है कि पदों के प्रत्येक वर्ण का कोई अर्थ नहीं होता। जैसे– 'राम' के र्, आ, म्, अ का अलग–अलग कोई अर्थ नहीं। इसी प्रकार वाक्य में प्रयोग के बिना पदों (राम, पुस्तक ,पढ़ना आदि) का भी कोई अर्थ नहीं। कोश ग्रंथों में दिए गए शब्द, तब तक सार्थक नहीं होते, जब तक उसका किसी वाक्य में प्रयोग नहीं होता है। केवल 'राम' या 'पुस्तक' कहने से कोई अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। 'राम पुस्तक पढ़ता है' यह वाक्य है। वाक्य में प्रयोग के कारण 'राम', 'पुस्तक' और 'पढ़ना' सार्थक होते हैं। इसलिए वाक्य को ही सार्थक इकाई माना जाता है। वाक्य में निहित पदों का विभाजन जन–साधारण को समझाने का एक उपाय है। वाक्यों से पदों को निकालकर समझाया जाता है कि यह कर्त्ता है, यह कर्म है, यह क्रिया है इत्यादि। इस विश्लेषण से ही वाक्य के प्रत्येक पद का अर्थ बताया जाता है और प्रत्येक पद में प्रकृति–प्रत्यय का बोध कराया जाता है।

6.4 पद और शब्द

पद या रूप (form) और शब्द (word) को सामान्यतया एकार्थक समझा जाता है, परन्तु यह सही नहीं है। वर्णों या ध्वनियों के सार्थक समुदाय को शब्द कहते हैं इसे संस्कृत में प्रातिपदिक या प्रकृति कहा जाता है। कोश ग्रंथों में ये सार्थक शब्द या प्रातिपदिक मिलते हैं। इनके द्वारा व्यक्ति, वस्तु या क्रिया का बोध कराया जाता है। जब कोई सार्थक शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है, तब उसे पद कहते हैं अर्थात् व्याकरण के नियमों के अनुसार विभक्ति, वचन, लिंग, काल आदि की योग्यता रखने वाले वर्णों का समूह पद कहलाता है। एक या अनेक वर्णों से बने अर्थपूर्ण समूह को शब्द कहते हैं और जब इन सार्थक या अर्थपूर्ण शब्द का वाक्य में प्रयोग किया जाता है, तो उस शब्द को पद कहते हैं। अब यह केवल शब्द नहीं रह जाता बल्कि यह शब्द वाक्य में विभक्ति, लिंग, वचन, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि दर्शाता है। जैसे 'मोहन' और 'सेब' एक–एक शब्द है। लेकिन 'मोहन सेब खाता है' इस वाक्य में 'मोहन' कर्ता कारक, एकवचन का और 'सेब' कर्म कारक, एकवचन का बोध करा रहा है, इन पर व्याकरणिक नियम लागू हो जाते हैं।

संस्कृत का एक शब्द है– 'बालक'। बालक शब्द के बालकः, बालकौ, बालकाः आदि रूप होते हैं। हिंदी में संस्कृत की तरह रूप नहीं चलते। लेकिन बिना 'रूप' के भाषा का तो कोई अर्थ नहीं है। हिंदी वियोगात्मक भाषा है। अतः इसके 'रूप' दूसरे ढंग के होंगे। लड़का एक शब्द है हिंदी का। 'लड़के, 'लड़कों', 'लड़कों ने', 'लड़कों को', 'लड़कों से' लड़का शब्द के अनेक रूप हुए। हिंदी शब्दों के रूप प्रत्यय, विभक्ति आदि लगाकर बनाये जाते हैं। पढ़् धातु में ना + ता + एगा + आ + ओ आदि प्रत्यय

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 94 8/18/2021 12:21:40 PM

लगाकर निम्नलिखित रूप बनेंगे–पढ़ना, पढ़ता, पढ़ेगा, पढ़ा, पढ़ो आदि। राम पढ़ता है, राम पढ़ेगा, राम पढ़ो, राम ने पढ़ा आदि। रूप को ही पद कहते हैं। रूप और पद अथवा पद और रूप में कोई अन्तर नहीं है। हमने देखा कि शब्द ही पद (रूप) बनते हैं। शब्द को प्रातिपदिक कहा जाता है। शब्द के लिए प्रकृति, अर्थतत्व, प्रातिपदिक और शब्द चारों प्रयोग चलते हैं। शब्द में जब सम्बन्ध तत्व (रचनातत्व) विभक्ति जुड़ता है तब पद की रचना होती है। ने + ता + ए , ओ + गा आदि उपरिलिखित सम्बन्ध तत्व ही हैं। सम्बन्ध तत्व के बदले विभक्ति का प्रयोग करते हैं। पद की परिभाषा पाणिनि ने की है–'सुप्तिङ्तंपद'' (पाणिनि–1/1/14) अर्थात् सुप् और तिङ जिनके अन्त में हों वे पद हैं। प्रश्न उठ सकता है किसके अन्त में? वाक्य में, शब्द में, किसके? उत्तर होगा जिस शब्द के अन्त में सुप् और तिङ् हो। सुप् विभक्ति संज्ञा में लगती है, तिङ् से निर्मित तिङ्न्त। सुबन्त और तिङ्न्त पद हुए। सारांश यह हुआ कि शब्द में विभक्ति जुड़ने से शब्द ही पद बन जाते हैं–

विभक्तियुक्त शब्द = पद

विभक्तिरहित शब्द = शब्द

महर्षि गौतम ने भी पद के लिए कहा है– ''ते विभक्त्यन्ताः पदम्'' अर्थात् जिसके अन्त में विभक्ति हो वे ही पद हैं। ने, को, से आदि को विभक्ति कहते हैं। इसका और प्रत्यय का महत्व भाषा में अर्थ अभिव्यंजन के लिए ही होता है। विभक्ति के बिना अर्थ अभिव्यंजित होता ही नहीं। विभक्ति अर्थ को विभक्त करती है, बाँटती है, निर्दिष्ट करती है। एक उदाहरण लेते हैं, ''पिता, लड़का, कहना– ये तीन शब्द हैं। इनसे कोई अर्थ अभिव्यंजित नहीं हो रहा है। कुछ पता नहीं चलता कि पिता, लड़का, कहना के माध्यम से 'वक्ता' श्रोता को क्या कहना चाहता है? अर्थात् ये शब्द हैं। वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता इनमें नहीं है। वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता शब्द में नहीं होती। जब इन शब्दों में विभक्ति (प्रत्यय) जोड़ते हैं तब इनमें अर्थ देने की शक्ति आ जाती है। अर्थात् ये पद बन जाते हैं। जैसे– पिता + ने + लड़के + से कह + आ = 'पिता ने लड़के से कहा'। पंतजलि ने कहा है–'नापिकेवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवल प्रत्यय।' वाक्य में अकेले न तो केवल प्रकृति का (शब्द का) प्रयोग हो सकता है, न केवल प्रत्यय का।' प्रकृति और प्रत्यय के योग से पद का निर्माण होता है। पद वाक्य में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं।

हिन्दी आदि वियोगात्मक भाषाओं के लिए पद के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि वाक्य में जिसका प्रयोग हो या वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता रखने वाले 'शब्द' 'पद' हैं। वाक्य एक पद का भी हो सकता है लेकिन तिङ् सुप का होना आवश्यक है। जैसे– 'जाओ, आओ, खाओ, पढ़ो, पढ़ जा, रह, गा, गाओ, आदि। सब में विभक्ति अर्थात् प्रत्यय द्रष्टव्य है। ओ + आ तिङ् प्रत्यय लगा है। जा + ओ, गा + ओ।' 'मोहन किताब पढ़ता है'। 'मोहन' वाक्य से अलग शब्द कहा जाएगा, वाक्य में प्रयुक्त होने के कारण पद। यही किताब के सम्बन्ध में भी सच है। 'पढ़ता है' में पढ़ + ता; पढ़ धातु और ता तिङ् प्रत्यय है।

सारांशतः पद का मूल लक्षण हुआ जिसका प्रयोग वाक्य में हो– वह पद है।

6.5 शब्द और पद में अन्तर

1. 'पद' शब्द पर आधारित हैं, जबकि 'शब्द' पद पर आधारित नहीं होते।
2. शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही पद बनता है अर्थात् पद की सत्ता वाक्य के अतिरिक्त नहीं है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 95 8/18/2021 12:21:40 PM

3. शब्द भाषा की लघुतम सार्थक इकाई है, परन्तु उसका प्रयोग अकेले नहीं होता क्योंकि शब्द वाक्य में प्रयुक्त होते ही पद का गौरव प्राप्त कर लेता है।
4. शब्द विभक्ति रहित होता है। पद विभक्ति सहित।
5. शब्दों का कोशीय अर्थ होता है, पदों का व्याकरणिक।
6. शब्द एकाधिक ध्वनियों से निर्मित होते हैं और पद एक या एकाधिक शब्दों से।
7. शब्द पद की प्रारम्भिक या प्रकृत मूल अवस्था को कहते हैं। शब्द भाषा की सार्थक लघुतम बाह्य इकाई होता है। शब्द में जब विभक्ति या कृदन्त प्रत्यय जुड़ जाता है और उसे व्याकरणिक प्रयोग में लाया जाता है, तो वह पद कहलाने लगता है।
8. 'सम्बन्धतत्व' के योग के बिना वाक्य में प्रयुक्त होने की क्षमता शब्द में नहीं होती। पद रचना ही सम्बन्धतत्व के योग से होता है, इसलिए पद को वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता होती है।
9. शब्द अर्थतत्व या प्रातिपदिक है, पद शब्द और सम्बन्धतत्व का योग।
10. शब्द का परिवर्तित रूप पद है। शब्द से अनेक रूप बनते हैं, मैं > मुझे > मुझको > मुझसे > मुझमें आदि।

बोध प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
    1. उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से............ ।
    2. ....के सार्थक समुदाय को शब्द कहते है।
    3. शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही........... बनता है।
    4. सार्थक ध्वनियों के समुच्चय को जब विभक्तियों, प्रत्ययों या परसर्गों से संयुक्त करके व्यवस्थित ढंग से एक वाक्य में व्यक्त किया जाए तब ये शब्द................... कहलाते हैं।
    5. रूपों का छोटा या बड़ा समूह............... कहलाता है।
    6. .... के योग से पद का निर्माण होता है।
    7. पद.........में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं।
    8. शब्दों का कोशीय अर्थ होता है, पदों का...............।
    9. शब्द अर्थतत्व या प्रातिपादिक है, पद शब्द और .... का योग।
    10. शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही पद बनता है अर्थात पद की सत्ता.... ...... के अतिरिक्त नहीं है।

6.6 शब्द के भेद

1. **नैयायिकों** ने शब्द के तीन भेद माने हैं– प्रकृति, प्रत्यय और निपात। प्रकृति से तात्पर्य उस शब्द से है, जो किसी अर्थ की प्रतीति कराने हेतु हो तथा अपने द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ का बोध कराने में निश्चित हो। जैसे– गुरु, राम, बालक, मीना आदि। प्रत्यय से तात्पर्य उन शब्दों से है, जो स्वयं तो अर्थ का बोध कराने में असमर्थ हों, किंतु किसी प्रकृति से युक्त होकर अर्थ का बोध करा सकें । जैसे– संस्कृत की सुप्, तिङ्, कृदन्त और तद्धित चार प्रकार के

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 96 8/18/2021 12:21:40 PM

प्रत्यय होते हैं उक्त शब्दों में भी 'ता', 'त्व', 'आई' आदि प्रत्यय लगने से क्रमशः गुरुता, स्वामित्व, भलाई शब्द बन जाते हैं, जो विशेष अर्थ के द्योतक होते हैं, जबकि 'ता', 'त्व' एवं 'आई' शब्द पृथक रहने पर पूर्णतया निरर्थक हैं। किसी भी बात पर अतिरिक्त भार देने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उसे निपात कहते हैं जैसे–तक, मत, क्या, हाँ, केवल, जी, नहीं, न, काश।

उदाहरणार्थ– तुम्हें आज रुकना **ही** पड़ेगा।

मोहन **तो** कल आने वाला था

कमला खाने के साथ पानी **भी** पीती है।

गांधी जी को बच्चे **तक** जानते हैं।

तुम अभी **तक** यहीं हो?

इसकी कीमत दस रुपए **मात्र** है।

बस इतनी **सी** बात?

निपात के बारे में विस्तार से आगे बताया जाएगा।

2. **पाणिनि** ने शब्द के चार भेद किए हैं– प्रातिपदिक, धातु, सुबन्त और तिड्न्त। राम, लता, श्याम, विद्या आदि प्रत्ययों के बिना ही अर्थ का बोध कराने वाले शब्द प्रातिपदिक कहलाते हैं। क्रियावाचक भू आदि शब्द धातु कहलाते हैं। सु, औ, जस् आदि विभक्तियाँ सुबन्त कहलाती हैं। तिप्, तस् झि आदि प्रत्यय जो धातु के आगे लगकर अर्थ का बोध कराते है, उन्हें तिड़्न्त कहते है। जैसे– भवति, भवत, भवन्ति आदि।

3. **अंग्रेज़ी के व्याकरण** की दृष्टि से शब्द के आठ भेद होते हैं– संज्ञा (गीता, राम, लड़का आदि), सर्वनाम (मैं, वह, तू), विशेषण (अच्छा, कम, बुरा, काला), क्रिया (सोना, उठना, आना, जाना), क्रियाविशेषण (आगे, पीछे, जल्दी), सम्बन्धबोधक अव्यय (को, से, के), समुच्चयबोधक अव्यय (और, लेकिन, अथवा), विस्मयादिबोधक (अरे!, ओह!)

4. **रचना की दृष्टि** से शब्द के तीन भेद होते हैं– रूढ़, यौगिक और योगरूढ़। जिन शब्दों के सार्थक खण्ड न हो सकें, वे रूढ़ होते हैं। जैसे–हाथ, पैर, घोड़ा, कमल आदि। ऐसे शब्द, जो दो शब्दों के मेल से बनते हैं और जिन शब्दों के सार्थक खण्ड हो सकें, वे यौगिक होते हैं। इन्हीं यौगिक शब्दों के अंतर्गत ही शब्द आ जाते हैं। जैसे–झटपट, घुड़साल, पाठशाला, विद्यालय आदि। शब्द के दो खण्ड हैं और दोनों सार्थक हैं। ऐसे शब्द जो यौगिक तो होते हैं, पर अर्थ के विचार से सामान्य अर्थ को छोडकर किसी विशेष अर्थ के परिचायक हैं, योगरूढ़ कहलाते हैं। मतलब यह कि यौगिक शब्द जब अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर विशेष अर्थ बताने लगे, तब वे योगरूढ़ कहलाते हैं। जैसे– लम्बोदर, पंकज, चक्रपाणि, चारपाई आदि। पंक+ज का अर्थ है–कीचड़ से उत्पन्न, पर यह शब्द केवल कमल के अर्थ में रूढ़ हो गया है। अतः यह, शब्द योगरूढ़ है। उसी तरह अन्य शब्दों को भी समझना चाहिए।

5. **रूपांतर की दृष्टि** से शब्द दो प्रकार के होते हैं– विकारी और अविकारी। जिस शब्द में विकार होता है, उसे विकारी कहते हैं। जैसे–बालक, बालकों आदि। जिस शब्द के रूप में विकार नहीं होता, उसे अविकारी शब्द कहते हैं, जैसे–परन्तु, अचानक, बहुधा, बिना, क्योंकि आदि। इस दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया सभी विकारी शब्द होते हैं क्योंकि इनके रूप लिंग, वचन

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 97 8/18/2021 12:21:40 PM

काल आदि के आधार पर बदल जाते हैं और क्रियाविशेषण, सम्बन्धसूचक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक अव्यय सभी अविकारी शब्द होते हैं।

6. **शब्द–शक्ति के आधार पर** शब्द के तीन भेद होते हैं– वाचक, लक्षक और व्यंजक। जो शब्द साक्षात संकेतित अर्थ का बोधक होता है, उसे 'वाचक' शब्द कहते हैं। ये वाचक शब्द चार प्रकार के होते हैं–जातिवाचक (आम, लड़की, पशु, पक्षी); गुणवाचक (पका, हरा, पीला, दुबला); क्रियावाचक (खाना, पीना, उठना, बैठना); और द्रव्यवाचक (चन्द्रमा, हिमालय, गंगा)। जो शब्द मुख्यार्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ को लक्षित करता है, उसे 'लक्षक' शब्द कहते हैं। जैसे यदि किसी व्यक्ति को कहा जाय कि 'तू शेर है' तो यहाँ शेर शब्द मुख्यार्थ पशु विशेष से भिन्न व्यक्ति की बहादुरी और साहस के अर्थ को लक्षित करता है। अतः यह लक्षक शब्द है। जो शब्द मुख्यार्थ लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ को व्यंजित करता है, तो उसे व्यंजक शब्द कहते हैं। जैसे– कोई कहे कि 'सुबह के आठ बज गए।' यहाँ वाक्य साधारण है। लेकिन इसका प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न अर्थ है। जैसे एक ऐसा व्यक्ति जिसका कार्य रात के समय पहरेदारी करना है तो वह इस अर्थ लेगा कि उसकी अब छुट्टी हो गयी है। एक साधारण कार्यालय जानेवाला व्यक्ति इसका अर्थ लेगा कि उसके कार्यालय जाने का वक्त हो गया है। बच्चे इसका अर्थ अपने विद्यालय जाने के समय के रूप में लेंगे। गृहिणी इसका अर्थ अपने घर के कार्यों से जोड़कर देखेगी। पुजारी इसका अर्थ अपने सुबह के पूजा–पाठ से जोड़कर देखेगा। इस प्रकार वाक्य एक है लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग–अलग अर्थ व्यंजित हो रहा है।

7. **ऐतिहासिक दृष्टि** से अथवा व्युत्पत्ति की दृष्टि से विचार करने पर शब्द के पाँच भेद होते हैं– तत्सम, तद्भव, देशज, संकर और आगत। किसी भाषा के मूल शब्द को 'तत्सम' कहते हैं। तत्सम का अर्थ ही है– 'उसके समान' या ज्यों का त्यों (तत् अर्थात उसके, सम अर्थात समान)। यहाँ संस्कृत के उन तत्समों की सूची दी जा रही है, जो संस्कृत के होते हुए भी हिन्दी में ज्यों का त्यों प्रयुक्त होते हैं–जैसे– अग्नि, कृपा, पृथ्वी, क्षमा, दारिद्र्य, शत, क्षीर, वत्स, पुष्प, मयूर, वचन, मध्य आदि। ऐसे शब्द संस्कृत और प्रकृत से विकृत होकर हिन्दी में आए हैं, 'तद्भव' कहलाते हैं। तत्+भव का अर्थ है–उससे (संस्कृत से) उत्पन्न। जैसे–आग, फूल, छमा, दरिद्दर, सौ, खीर, बेटा, मोर आदि। जिन शब्दों की व्युत्पत्ति का पता नहीं चलता और जो लोकभाषाओं में प्रचलित रहते हैं, उन्हें 'देशज' शब्द कहते हैं। जैसे– तेंदुआ, खिड़की, चिड़िया, ठेठ, खसरा, फुनगी, लोटा, डोंगा, कटोरा आदि। जो शब्द दो भाषाओं के योग से बनते हैं, उन्हें 'द्विज या संकर' कहते हैं। जैसे– रेलगाड़ी–यहाँ रेल अंग्रजी का शब्द है और गाड़ी हिन्दी का शब्द है। 'अजायबघर'–यहाँ अजायब फारसी का शब्द है औ घर हिंदी का।' अमनसभा'–यहा 'अमन' अरबी फारसी का शब्द है और 'सभा' संस्कृत का। अतः ये सभी शब्द द्विज या संकर हैं। इसके अतिरिक्त जो शब्द विदेशी भाषाओं के होते हैं, और किसी भाषा में आकर प्रचलित हो जाते हैं, वे 'आगत' कहलाते हैं। जैसे– कोट, पैंट, टिकट, आल्मारी, ग़रीब, तनख्वाह, आमदनी आदि शब्द हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होते हैं, जबकि ये सभी विदेशी भाषाओं के शब्द हैं।

8. **अर्थ की दृष्टि** से विचार करने पर शब्द के चार भेद होते हैं– एकार्थवाची, अनेकार्थवाची पर्यायवाची या समानार्थी और विलोम। जो शब्द एक ही अर्थ का द्योतक होता है, उसे एकार्थवाची कहते हैं। जैसे– आँख, नाक, कान, खाट

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 98 8/18/2021 12:21:40 PM

आदि। जो शब्द अनेक अर्थ के द्योतक होते हैं, वे 'अनेकार्थवाची' शब्द होते हैं। जैसे– सारंग शब्द मोर, हिरन, चातक, हंस, खंजन, कोयल, भौंरा, कमल, बादल, हाथी, शिव, कामदेव आदि अनेक अर्थ होते हैं। ऐसे ही 'ईश' शब्द पति, स्वामी, राजा, ईश्वर, शंकर आदि का द्योतक होता है। इसी प्रकार 'केसर' शब्द जाफरान, सिंह की गर्दन के बाल, अयाल, नागकेसर, मौलसिरी, सोना, कुमकुम आदि अनेक अर्थों का द्योतक है। ये सभी शब्द अनेकार्थवाची हैं। अनेकार्थी शब्द एक से अधिक अर्थ बताते हैं तो पयार्यवाची शब्द वे हैं जो कई शब्दों द्वारा एक अर्थ का बोध कराते हैं। जैसे आग, अनल, पावक वह्नि ये सभी शब्द अग्नि के पर्यायवाची हैं। कुछ शब्द परस्पर विपरीत अर्थ बताते हैं। ऐसे शब्दों को विलोम शब्द कहा जाता है, जैसे– अंधकार का विलोम, प्रकाश और कठोर का विलोम, कोमल।

6.7 पद के भेद या पद–विभाग

यास्क ने निरूक्त में पद को चार भागों में विभक्त किया है–नाम, आख्यात उपसर्ग और निपात। इनमें से नाम से अभिप्राय संज्ञा शब्द से है, जैसे– बालक, राम, लड़की, सीता, बकरी, गाय, पशु आदि। आख्यात से अभिप्राय क्रिया शब्दों से है। जैसे– करना, खाना, पीना, सोना, आना, जाना आदि। उपसर्ग से अभिप्राय उन शब्दों से है जो संज्ञा (नाम) या क्रिया (आख्यात) के आरम्भ में सम्बद्ध होकर विशिष्ट अर्थों का बोध कराते हैं। जैसे– प्र, परा, अप, सम, निर् ,निस्, दुर्, वि, आ, सम आदि। ये सब जब हृ धातु से बनी क्रिया 'हार' में सम्बद्ध होते हैं, तो विहार, संहार, आहार, अनुहार, प्रहार, निराहार, उपहार आदि अनेकार्थवाची शब्दों का निर्माण कर डालते हैं। निपात से तात्पर्य उन शब्दों से है, जो किसी भी अन्य अर्थ के साथ तादात्म्य करके अपना अन्वय–बोध कराने में समर्थ नहीं होता। निपातों का प्रयोग निश्चित शब्द, शब्द–समुदाय या पूरे वाक्य को अन्य भावार्थ प्रदान करने के लिए होता है।

यास्क के इस विभाग का क्रम महत्वपूर्ण है। नाम और आख्यात अर्थात् संज्ञा और क्रिया को उन्होंने अधिक महत्वपूर्ण समझकर एक साथ रखा और उपसर्ग और निपात को कम महत्वपूर्ण समझकर एकसाथ। आगे चलकर पाणिनि ने नाम और आख्यात यानी सुबन्त और तिङ्न्त को ही पद–विभाग के रूप में स्वीकार किया। उपसर्ग के सम्बन्ध में अपनी तरफ से कुछ न कहकर यास्क के अनुसार कि नाम और आख्यात से अलग उपसर्ग अर्थ का निश्चित बोध नहीं कराते। इसीलिए इन्हें निर्बद्ध अव्यय कहा गया, क्योंकि ये अपने आप में सार्थक और अर्थ–बोध में समर्थ नहीं हैं। इसीलिए उपसर्गों को अर्थ का वाचक नहीं द्योतक या प्रकाशक माना गया। उपसर्ग संज्ञा या क्रिया के साथ मिलकर ही सार्थक होता है, इसीलिए यह निर्बद्ध अव्यय है। इनका अलग से प्रयोग नहीं होता और अव्यय इसलिए क्योंकि इनके रूप में परिवर्तन नहीं होता। उपसर्ग से निपात का अन्तर इस दृष्टि से है कि निपात का स्वतंत्र प्रयोग हो सकता है। हिन्दी के वैयाकरण कामताप्रसाद गुरु ने हिन्दी के आठ पद–विभाग किये हैं– संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, सम्बन्धबोधक, विस्मयादिबोधक। ये आठों भेद अंग्रेजी के रूपांतर हैं। सूक्ष्मता से विचार करने पर इन आठों का अन्तर्भाव वस्तुतः तीन में ही हो जाता है। संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण– ये तीन संज्ञा के ही रूप –भेद हैं। यास्क ने संज्ञा के लिए 'नाम' शब्द का प्रयोग किया है। इसी 'नाम' में 'सर्व' लगाकर 'सर्वनाम' बना है, अर्थात् वह नाम जो सबके लिए प्रयुक्त हो सकता हो। 'मैं','हम' आदि सर्वनाम किसी एक व्यक्ति का बोध नहीं कराते, जो भी उनका प्रयोग करे, उसके वे बोधक हो जाते हैं। मैं भी अपने को 'मैं' कह सकता हूँ, आप भी और तीसरा व्यक्ति भी। इस प्रकार 'मैं' किसी व्यक्ति विशेष का नहीं वह 'सर्वनाम'

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 99 8/18/2021 12:21:40 PM

है। इसी तरह विशेषण की भी अलग सत्ता नहीं है, क्योंकि इसका उद्‌देश्य संज्ञा का ही वैशिष्ट्य बताना है। इसलिए विशेषण की भी अलग सत्ता अकल्पनीय है। संज्ञा नहीं तो विशेषण भी नहीं, संज्ञा के रहने पर ही विशेषण का प्रयोग हो सकता है। दूसरी बात यह है कि संज्ञा और विशेषण परस्पर परिवर्तनीय हैं। संज्ञा से विशेषण बन जाता है जैसे– धर्म से धार्मिक; नीति से नैतिक; राष्ट्र से राष्ट्रीय; आलस्य से आलसी आदि। इसी तरह विशेषण से संज्ञा बन जाता है; जैसे– सुन्दर से सुन्दरता, कोमल से कोमलता आदि। यही नहीं एक ही संज्ञा से विशेषण और फिर विशेषण से भी संज्ञा बन जाती है, जैसे मनु से मानव; मानव से मानवीय, मनुष्यता, मानवीयता आदि। इसलिए विशेषण को अलग से करने के स्थान पर पाणिनि ने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक तीनों को एकसाथ 'सुबन्त' में डाल दिया। व्यापार प्रधान होने के कारण क्रिया को अलग रखा। शेष चार विभाग –क्रिया विशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक अव्यय ही हैं। इसलिए इन्हें चार अलग विभाग मानने के स्थान पर एक अव्यय के अंतर्गत रखना उचित ही है। इस तरह पदों को मोटे तौर पर संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय में बाँटा गया है।

पद विभाग की संक्षिप्त जानकारी आपको यहाँ दी जा रही है।

नाम– समय के साथ–साथ भाषा के प्रचीन रूपों में विकार और विकास होता रहता है। यह विकास संज्ञा, सर्वनाम विशेषण, क्रिया आदि के विविध रूपों में दृष्टिगोचर होता है। जिसका विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

6.7.1 संज्ञा

क– संज्ञा का संक्षिप्त परिचय – 'किसी व्यक्ति, वस्तु स्थान, स्थिति, गुण अथवा भाव के नाम का बोध कराने वाले शब्दों को संज्ञा कहते हैं।' संज्ञा के तीन प्रमुख भेद किए जाते हैं–व्यक्तिवाचक संज्ञा, जातिवाचक संज्ञा और भाववाचक संज्ञा। जो संज्ञा किसी विशेष व्यक्ति, प्राणी, वस्तु या स्थान का बोध कराए, उन्हें **व्यक्तिवाचक संज्ञा** कहते हैं। जेसे–

मनुष्यों के नाम– शीला, मदन, उर्मिला, गीता

प्राणियों के नाम– एरावत, कामधेनु

वस्तुओं के नाम– गाण्डीव, हल्दी

स्थानों के नाम–लखनऊ, दिल्ली, आगरा, भारत, जर्मनी

जो संज्ञा शब्द किसी जाति, पदार्थ, प्राणी, समूह आदि का बोध कराते हैं, **जातिवाचक संज्ञा** कहलाते हैं। जातिवाचक संज्ञा के दो उपभेद हैं– द्रव्यवाचक संज्ञा और समूहवाचक संज्ञा। जो संज्ञा शब्द ऐसे द्रव्य या पदार्थों का बोध कराते हैं, जिनसे अनेक वस्तुएं बनतीं हैं, उन्हें **द्रव्यवाचक संज्ञा** कहते हैं। जैसे– स्टील, लोहा, प्लास्टिक, लकड़ी, ऊन, सोना–चाँदी। जो संज्ञा शब्द किसी समुदाय या समूह का बोध कराते हैं, **समूहवाचक संज्ञा** कहलाते हैं। जैसे– दरबार, सभा, कक्षा, सेना, टीम, भीड़, दल आदि। जिन संज्ञा शब्दों से किसी व्यक्ति या वस्तु के गुण–धर्म, दोष, शील–स्वभाव, अवस्था, भाव आदि का बोध होता है, वे **भाववाचक संज्ञा** कहलाते हैं। हिन्दी के भाववाचक संज्ञा शब्दों में मूल शब्द भी मिलते हैं तथा यौगिक भी। सुख, दुख, क्षमा, दया, सत्य, जन्म, मृत्यु, प्रेम, घृणा आदि मूल भाववाचक संज्ञाएँ हैं। यौगिक भाववाचक संज्ञाएँ जातिवाचक संज्ञाओ से, सर्वनामों से, विशेषणों से, क्रियाओं से तथा अव्ययों से बनती है। जैसे– जातिवाचक संज्ञा 'नारी' से 'नारीत्व', संस्कृति से संस्कार, सर्वनाम निज से निजता, विशेषण 'कमजोर' से 'कमजोरी', 'सुंदर' से 'सुंदरता', क्रिया 'मारना' से 'मार', लिखना से लिखावट; अव्यय 'दूर' से 'दूरी' आदि।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 100 8/18/2021 12:21:41 PM

6.7.2 सर्वनाम

वाक्यों में संज्ञा की पुनरावृत्ति बचाने के लिए संज्ञा के स्थान पर जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वे सर्वनाम कहे जाते हैं। 'नाम' तथा 'संज्ञा' समान अर्थ वाले शब्द हैं। 'सर्व' का अर्थ है 'सबका'; अर्थात् जो शब्द सब नामों (संज्ञाओं) के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हैं, वे सर्वनाम कहे जाते हैं। सर्वनाम शब्दों का अपना कोई अर्थ नहीं होता। यदि कोई लड़का कहता है कि 'मैं खना ख रहा हूँ' तो यहाँ 'मैं' सर्वनाम का अर्थ होगा 'वह लड़का' और यदि यही वाक्य कोई लड़की कहती तो 'मैं' का अर्थ हो जाता 'वह लड़की'। सर्वनाम के छः भेद होते हैं–

पुरुषवाचक सर्वनाम– मैं/हम, तू/तुम/आप, वह/वे

निश्चयवाचक सर्वनाम– यह (समीपवर्ती), वह (दूरवर्ती)

अनिश्चयवाचक सर्वनाम– कोई (प्राणीवाचक), कुछ (अप्राणीवाचक)

प्रश्नवाचक सर्वनाम– कौन (प्राणीवाचक), क्या (अप्राणीवाचक)

सम्बन्धवाचक सर्वनाम– जो....सो

निजवाचक सर्वनाम– आप (स्वयं, खुद)

6.7.3 विशेषण

जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता (गुण, संख्या, मात्रा या परिमाण आदि) बताते हैं, **विशेषण** कहे जाते हैं। तथा जिन संज्ञाओं की विशेषता बताई जाती है, उनको **विशेष्य** कहते हैं। हिन्दी में विशेषण के चार भेद किए गए हैं– गुणवाचक विशेषण, परिमाण वाचक विशेषण, संख्यावाचक विशेषण और सार्वनामिक विशेषण। वे विशेषण जो अपने 'विशेष्य' के गुणों की विशेषता का बोध कराते हैं **'गुणवाचक विशेषण'** कहे जाते हैं। 'गुण' से तात्पर्य किसी व्यक्ति या वस्तु के रूप, रंग, आकार, स्वभाव, अवस्था, दशा, स्थिति, शील आदि का वर्णन करना। विशेष्य (संज्ञा) से आप कैसा/कैसी प्रश्न कीजिए। उत्तर में जो विशेषण मिलता है, वह गुणवाचक विशेषण होता है। जैसे– कैसा कुत्ता? काला कुत्ता। कैसी कमीज? सफेद कमीज। कैसा फल? ताजा फल आदि।

परिमाणवाचक–विशेषण वे हैं, जो विशेषण अपने विशेष्य की मात्रा या परिमाण के विषय में जानकारी देते हैं। इसके दो भेद होते हैं–**निश्चित परिमाणवाचक और अनिश्चित परिमाणवाचक**। विशेष्य की मात्रा का ठीक–ठीक या निश्चित बोध करानेवाले निश्चित परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं– तीन किलो, डेढ़ मीटर, दस क्विंटल आदि। जिन विशेषणों से विशेष्य की मात्रा का ज्ञान तो होता है, पर यह ज्ञान ठीक–ठीक नापा–तौला हुआ नहीं रहता, ऐसे विशेषणों को अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे– थोड़ा, इतना, बहुत, ज्यादा, कुछ आदि।

संख्यावाचक विशेषण विशेष्य की संख्या से सम्बधित विशेषता को बताते हैं। जैसे– पंद्रह लोग, प्रथम स्थान, बहुत लोग। इसके भी **निश्चित संख्यावाचक और अनिश्चित संख्यावाचक**– ये दो भेद होते हैं। दो ,पाँच, पहला, चौथा, इकहरा, चौगुना, तीनों, चारों, सतसई, दर्जन, चारों, पाँचों, शताब्दी आदि निश्चित संख्यावाचक विशेषण के उदाहरण हैं तथा कुछ, बहुत, कई, काफी आदि अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण के उदाहरण।

6.7.4 आख्यात या क्रिया

कामताप्रसाद गुरु के अनुसार "जिस विकारी शब्द के प्रयोग से हम किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान करते हैं, उसे क्रिया कहते हैं, जैसे– 'हिरण भागा', 'राजा नगर में आए', 'मैं जाऊँगा', 'घास हरी होती है।' पहले वाक्य में हिरण के विषय में –भागा' शब्द के द्वारा विधान किया गया है इसलिए 'भागा' शब्द क्रिया है। इसी प्रकार दूसरे

वाक्य में आए, तीसरे वाक्य में 'जाऊँगा' और चौथे वाक्य में 'होती है' शब्द से विधान किया गया है; इसलिए 'आए', जाऊँगा' और 'होती है' शब्द क्रिया है। जिस मूल शब्द में विकार होने से क्रिया बनती है, उसे धातु कहते हैं। जैसे– 'भागा' क्रिया में 'आ' प्रत्यय है, जो 'भाग' मूल शब्द में लगा है। इसलिए 'भागा' क्रिया का धातु 'भाग' है। इसी तरह 'आए' क्रिया का धातु 'आ', 'जाऊँगा' क्रिया का धातु 'जा' और 'होती' क्रिया का धातु 'हो' है।" धातु के अंत में जब 'ना' लग जाता है, जैसे' चलना, फिरना, दौड़ना, भागना तो क्रिया का सामान्य रूप प्राप्त हो जाता है। इसमें 'चल', 'फिर', 'दौड़' आदि धातु रूप है। वस्तुतः धातु ही क्रिया का मुख्य अर्थ बताने वाला अंश (मुख्य क्रिया) होता है। क्रिया पदबंध में से धातु के अलावा जो भी अंश शेष रहता है, वह सहायक क्रिया का अंश होता है।

6.7.5 अव्यय

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया शब्द 'विकारी' कहे जाते हैं, क्योंकि इनके वाक्य में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न रूप मिलते हैं। अव्यय शब्द का अर्थ ही है जिस शब्द का कुछ भी व्यय न होता हो। अतः अव्यय वे शब्द हैं जिनके रूप में लिंग–वचन–पुरुष–काल आदि व्याकरणिक कोटियों के प्रभाव से कोई परिवर्तन नहीं होता। आज कल, तेज, धीरे, अरे, ओह, किंतु, पर आदि अव्यय शब्दों के उदाहरण हैं। अव्यय शब्दों के निम्नलिखित भेद हैं–क्रियाविशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादिबोधक, निपात।

6.7.5.1 क्रियाविशेषण

वे अविकारी शब्द जो क्रिया की विशेषता प्रकट करते हैं, क्रियाविशेषण कहे जाते हैं। निम्नलिखित वाक्यों को आप ध्यान से देखिए–

बच्चे **धीरे–धीरे** चल रहे हैं।

वे लोग **रात को** पंहुचे ।

आप **यहाँ** बैठिए।

बच्चा **बहुत** रोया।

इसमें बोल्ड किए गए शब्द क्रिया के पहले लगकर उसकी विशेषता प्रकट कर रहे हैं। ये ही क्रियाविशेषण शब्द हैं। क्रिया की विशेषता प्रायः चार प्रकार से बताई जाती है– क्रिया किस रीति से सम्पन्न हो रही है; जैसे– धीरे–धीरे, तेजी से; कहाँ घटित हो रही है, जैसे–यहाँ, वहाँ; कब घटित हो रही है, जैसे– शाम को, रात में आदि। इसके अलावा क्रिया की मात्रागत विशेषता भी थोड़ा, बहुत, काफी आदि शब्दों के द्वारा बताई जा सकती है। इन्हीं आधारों पर क्रियाविशेषण के चार भेद के चार भेद हो जाते हैं– रीतिवाचक, स्थानवाचक, कालवाचक और परिमाणवाचक।

6.7.5.2 संबंधबोधक

संबंधबोधक वे अविकारी शब्द हैं जो संज्ञा या सर्वनाम के बाद प्रयुक्त होकर वाक्य के अन्य संज्ञा/सर्वनाम शब्दों के साथ संबंध का बोध कराते हैं। जैसे–

बच्चे पिता के साथ मेला गए हैं।

पार्क के चारों ओर लोग इकट्ठा हो गए हैं।

वह घर के भीतर घुसकर बैठा हैं।

उसने पोस्ट ऑफिस के निकट बस खड़ी कर दी।

उपर्युक्त वाक्यों में आप देख रहे हैं कि 'के साथ', 'के चारों ओर', 'के भीतर', 'के निकट' आदि ऐसे शब्द रूप हैं जो वाक्य में आए दो संज्ञा/सर्वनाम रूपों के मध्य संबंध स्थापित कर रहे हैं। इनको ही संबंधबोधक अव्यय कहा जाता है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 102 8/18/2021 12:21:41 PM

6.7.5.3 समुच्चयबोधक

कुछ अव्यय शब्द दो शब्दों या पदबंधों या दो वाक्यों को जोड़ने का कार्य करते हैं। ऐसे योजक शब्दों को ही व्याकरण में समुच्चयबोधक अव्यय कहा जाता है। समुच्चयबोधक जोड़ने के अलावा कुछ अन्य कार्य भी करते हैं, जैसे–

(क) जोड़ने का कार्य– और, तथा, एवं (माताजी और पिताजी आदि)

(ख) विरोध बताने का कार्य–लेकिन, मगर, किंतु, परंतु (मैं आना चाहता था परंतु न आ सका।)

(ग) कारण परिणाम आदि बताने का कार्य–इसलिए, इस कारण, अतः, क्योंकि, ताकि (मैं आ नहीं पाऊँगा क्योंकि मेरे पास समय नही है। आदि)

(घ) विकल्प बताने का कार्य– या, अथवा, चाहे (तुम जाओगे या वह जाएगा)

6.7.5.4 विस्मयादिबोधक

विस्मयादिबोधक (विस्मय+आदि+बोधक) शब्द वे हैं जो आश्चर्य, विस्मय, हर्ष, दुःख पीड़ा आदि मनोभवों का बोध कराते हैं। जैसे– अरे, ओह, हाय, उफ आदि। इनसे किसी विशेष अर्थ की सूचना नहीं दी जाती बल्कि ये शब्द तो स्वतः ही किसी विशेष परिस्थिति में मुँह से निकल जाते हैं।

6.7.6 निपात

किसी भी बात पर अतिरिक्त बल देने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उसे निपात कहते हैं। निपात ऐसा सहायक शब्द भेद है, जिसमें वे शब्द आते हैं जिनके प्रायः अपनी शब्दावली सम्बन्धी तथा वस्तुपरक अर्थ नहीं होते हैं । यथा– तक, मत, क्या, हाँ, भी, केवल, जी, नहीं, काश आदि। अन्य शब्द भेदों से निपात का इस बात में अंतर है कि अन्य शब्द–भेद यानी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि का अपना अर्थ होता है किन्तु निपातों का नहीं। वाक्य को अतिरिक्त भावार्थ प्रदान करने के लिए निपातों का प्रयोग निश्चित शब्द, शब्द–समुदाय या पूरे वाक्य में होता है। ये सहायक शब्द होते हैं। वाक्य में इनके प्रयोग से वाक्य का अर्थ प्रभावित होता है। निपात वाक्य में निम्नलिखित कार्य करते हैं–

प्रश्न–**क्या** वह विद्यालय गया था?

अस्वीकृति– वह घर पर **नहीं** है।

विस्मयादिबोधक–**कैसा** सुहाना मौसम है।

किसी शब्द पर बल देना– मुझे **भी** इसका पता था।

निपात नौ प्रकार के होते हैं–

1. स्वीकारात्मक निपात–हाँ, जी, जी हाँ। ये निपात स्वीकृति को व्यक्त करते हैं तथा सदैव स्वीकारार्थक उत्तर के आरम्भ में आते हैं। जैसे–

   प्रश्न– आजकल तुम विद्यालय जा रहे हो?

   उत्तर–जी।

   प्रश्न–आप घर पर हैं?

   उत्तर– जी हाँ।

   जी तथा जी हाँ निपात आदरसूचक स्वीकारात्मक उत्तर के समय प्रयुक्त होते हैं।

2. नकारात्मक निपात–जैसे– नहीं, जी नहीं।

   उदाहरणार्थ–

   प्रश्न– तुम्हारे पास यह कलम है?

   उत्तर– नहीं।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 103 8/18/2021 12:21:41 PM

3. निषेधात्मक निपात–मत। जैसे – आज आप मत जाइए।
4. प्रश्नबोधक निपात– क्या? न। जैसे– आज तुम आओगे क्या? तुम ये काम नहीं करोगे न?
5. विस्मयादिबोधक निपात– क्या, काश, काश कि। जैसे– काश, वह यहाँ आ जाता।
6. बलदायक या सीमाबोधक निपात– तो, ही, तक, पर, सिर्फ, केवल। जैसे–मैंने उसे देखा तक नहीं।
7. तुलनाबोधक निपात– सा। जैसे– इस बालिका सा मेहनती होना दुर्लभ है।
8. अवधारणबोधक निपात– ठीक, लगभग, करीब, तकरीबन। मैं तकरीबन पाँच बजे पहुँचूँगा।
9. आदरबोधक निपात–जी। यह निपात व्यक्तिवाचक या जातिवाचक नाम तथा उपाधि तथा पद आदि सूचित करने वाले संज्ञा शब्दों के बाद प्रयुक्त होता है। जैसे – गाँधी जी, गुरु जी आदि।

6.8 सम्बन्धतत्व और अर्थतत्व

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल शब्द, प्रकृति, धातु या प्रातिपदिक तथा पद में यह अन्तर है कि मूलशब्द में वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता नहीं होती तथा पद में सम्बन्ध तत्व जुड़ने के कारण यह योग्यता आ जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं–

मूल शब्द + सम्बन्ध तत्व = पद या रूप

भाषा विज्ञान में इस मूलशब्द को ही अर्थतत्व कहा जाता है क्योंकि मूल शब्द में अर्थ चिपका रहता है, दूसरी तरफ सम्बन्ध तत्व का कार्य वाक्य में पदों का एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करता होता है। यथा– 'घोड़े ने घास को खाया' वाक्य के सम्बन्धतत्व 'ने', 'को' एवं 'आ' वाक्य में पदों से सन्निहित सम्बन्ध को अभिव्यक्त कर रहे हैं। 'घोड़ा', 'घास', 'खाना' पद 'ने' एवं 'को' के माध्यम से सम्पृक्त हो रहा है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सम्बन्ध तत्व भाषा की वह प्रक्रिया है जो अर्थतत्व (मूल शब्द) में पहले से विद्यमान अर्थ को प्रकाशित कर देता है। एक और उदाहरण द्वारा यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी यथा–

सुरेश मोहन मारा

यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि किसने किसे मारा। यदि इसे ही हम सम्बन्ध तत्वों से युक्त कर दें तो वाक्य होगा– 'सुरेश ने मोहन को मारा।'

यहाँ यह स्पष्ट हो गया है कि मारने की क्रिया करने वाला सुरेश है एवं क्रिया से प्रभावित मोहन है। प्रत्येक वाक्य में दो प्रकार के विशिष्ट तत्व होते हैं–पहला–भाव के प्रतिरूप एवं विषयानुभुति के तत्व और दूसरा इन भावों के परस्पर विशेष सम्बन्ध के संकेतक तत्व। जैसे– 'गुरु ने शिष्य से प्रश्न पूछा' इस वाक्य में गुरु, शिष्य, प्रश्न, पूछना–ये चार शब्द भाव–विशेष के बोधक हैं। इस प्रकार के भाव–विशेष–बोधक तत्वों को अर्थतत्व (semanteme) कहते हैं। दूसरे तत्व हैं– ने, से तथा भूतकाल का चिह्न 'आ'–ये सम्बन्ध तत्व हैं। इनको सम्बन्ध तत्व (morpheme) कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अर्थतत्व उन तत्वों को कहते हैं, जो मानसिक प्रतिमाओं के भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे पूर्वोक्त वाक्य में गुरु, शिष्य, प्रश्न, पूछना। सम्बन्धतत्व उन तत्वों को कहते हैं, जो उक्त प्रकार से व्यक्त भावों में परस्पर सम्बन्ध की अभिव्यक्ति करते हैं, जैसे–ने, से तथा भूतकाल का चिह्न आ। केवल अर्थतत्व पूरे

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 104 8/18/2021 12:21:41 PM

भाव की अभिव्यक्ति नहीं कर सकते, अतः सम्बन्ध तत्वों की आवश्यकता होती है। 'ने' लगाने से ज्ञात होता है कि गुरु कर्त्ता है, 'से' लगाने से ज्ञात होता है कि 'शिष्य' कर्म है, 'पूछना' से पूछा करने पर ज्ञात होता है कि भूतकाल की क्रिया है।

पद या रूप व्याकरणात्मक संरचना है। इस व्याकरणात्मक संरचना का आधार है सम्बन्ध तत्व। मूल शब्द या प्रातिपदिक में व्याकरणात्मक आवश्यकता के अनुरूप ही सम्बन्ध तत्व सम्पृक्त होता है। यथा–

मैं जाता हूँ।

मैं जाती हूँ।

वे जाते हैं।

वे जाती हैं।

उपर्युक्त चार वाक्यों में जाना क्रिया के चार रूप हमें मिलते हैं। इनमें जुड़े चार सम्बन्ध तत्व हैं– आ, ई, ए, ईं। 'आ' पुल्लिंग एकवचन का बोधक है, तो ई स्त्रीलिंग एकवचन की। 'ए' पुल्लिग बहुवचन का बोधक है तो 'ईं' स्त्रीलिंग बहुवचन की। उपर्युक्त उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि सम्बन्ध तत्व दो प्रकार के हैं। 1. अर्थतत्व से पृथक सत्ता रखने वाले जैसे– ने, से आदि 2. अर्थतत्त्व में समन्वित होकर एकरूप हो जाने वाले, जैसे – 'पूछा' का 'आ'। इसी प्रकार सम्बन्ध तत्त्व के कुछ अन्य भेद भी हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

6.9 सम्बन्धतत्व के प्रकार

सम्बन्ध तत्व केवल परसर्ग ही नहीं होते, अपितु किसी वाक्य में स्वतंत्र शब्द के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं, कभी शब्दांश बनकर आते हैं, कभी आगम के रूप में प्रयुक्त होते हैं, कभी विकरण बनकर आते हैं, कभी प्रकृति के साथ ही जुड़े रहते हैं और कभी शून्य प्रत्यय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार सम्बन्ध तत्व के अनेक भेद देखे जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से उन्हें निम्नलिखित भेदों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **शून्य तत्व (Zero Modificationm, Zero alternant)** वाक्यों में प्रयुक्त कुछ शब्द अपने अविकृत रूप में ही आ जाते हैं, इनमें विभक्ति या प्रत्यय नहीं लगते , फिर भी ये शब्द पद के रूप में वाक्य में कार्य किया करते हैं, इसी को Zero Element, Zero Inflection या शून्य तत्व कहते हैं। शून्य तत्व का अभिप्राय है कि शब्द या धातु अपने मूलरूप में रहते हुए व्याकरण के सम्बन्धों को बताते हैं। जैसे– बालिका, वारि, मधु, सरित्, जगत् आदि। ये प्रथमा एकवचन के रूप में हैं। कर्ता अर्थ बताते हैं, अन्त में कारक चिह्न ने आदि नहीं हैं, अतः इसे शून्य तत्व कहते हैं। हिन्दी में आज्ञा अर्थ में क्रियापद प्रायः मूलरूप में रहते हैं। जैसे– आ, जा, खा, चल, उठ, बैठ, पूछ, लिख, पढ, आदि। ये मध्यपुरुष एकवचन आज्ञा अर्थ के रूप है। तू आ, तू पढ़, तू लिख आदि। अंग्रेजी में एकवचन और बहुवचन में Sheep (शीप, भेड़, भेड़ें), Deer (डीयर, मृग) ही होता है। I go, We go, You go, They go में क्रिया go के साथ सम्बन्धतत्व नहीं है। अतः इसे शून्यतत्व कहते हैं। He goes, he walks में सम्बन्ध तत्व es, s है। यह प्रथमपुरुष एकवचन का अर्थ बताता है। अंग्रेजी में भूतकाल के ये रूप शून्यतत्व के उदाहरण हैं–Cut, put, bet, let, set, wed, spread आदि।

2. **स्वतंत्र शब्द**– विश्व की अनेक भाषाओं में स्वतंत्र शब्द सम्बन्धतत्व का काम करते हैं। जैसे–(क) संस्कृत में– इति, च, वा, कृते, अर्थम् आदि। 'इति' उद्धरण का काम करता है। न गमिष्यामि इत्युवाच ('नहीं जाऊँगा' ऐसा उसने कहा) स्नानस्य कृते, स्नानार्थम् (नहाने के लिए), रामः कृष्णश्च, रामः कृष्णो वा (च–और, वा–अथवा)।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 105 8/18/2021 12:21:41 PM

(ख) हिन्दी में– कारक चिह्न ने, को, से, द्वारा, का, पर आदि।

(ग) अंग्रेजी में– To (को), from (से), in (में), on (पर), upon (पर), with (से) आदि।

कभी–कभी दो स्वतंत्र शब्द सम्बन्धतत्व का बोध कराते है। अंग्रेजी में– If— then, Either...or, neither...nor आदि। संस्कृत में–यत्र....तत्र, (जहाँ...वहाँ), यथा....तथा, यदि. ..तर्हि। हिन्दी में–जयों....त्यों, यद्यपि....तथापि, यदि तो।

3. **पद–क्रम (शब्द–स्थान)**– संसार की विभिन्न भाषाओं में वाक्यों में पदों का क्रम निश्चित होता है। तदनुसार ही उसका अर्थ समझा जाता है। इस प्रकार वाक्य में पद–क्रम या शब्दों का निश्चित स्थान सम्बन्धतत्व का काम करता है। जैसे– संस्कृत और हिन्दी में वाक्य में पद–क्रम है– कर्ता, कर्म, क्रिया। किन्तु अंग्रेजी में क्रम है– कर्ता, क्रिया, कर्म। यदि पदों का क्रम बदल दिया जायेगा तो अर्थ में अन्तर हो जाएगा।

Ram killed Ravana. राम ने रावण को मारा।

Ravana killed Ram. रावण ने राम को मारा।

केवल स्थान बदलने से पूरा अर्थ बदल गया।

मुखं कमलम् इव सुन्दरम्। (मुख उपमेय, कमल उपमान)

कमलं मुखम् इव सुन्दरम्। (कमल उपमेय, मुख उपमान)

केवल स्थान बदल देने से उपमेय–उपमान में अन्तर हो गया। दूसरे वाक्य में मुख कमल के तुल्य सुन्दर नहीं रहा, अपितु कमल ही मुख के तुल्य सुन्दर हो गया। हिन्दी में स्थान–भेद से कर्ता कर्म हो जाता है।

घर गिर गया। (घर कर्ता)

मैं घर जाता हूँ। (घर कर्म)

संस्कृत और हिन्दी में समस्त (समास–युक्त) पदों में शब्दों का स्थान सम्बन्धतत्व का काम करता है। स्थान–भेद से अर्थ में अन्तर हो जाता है। जैसे–

राजपुत्र	–	राजा का पुत्र
पुत्रराज	–	पुत्रों में श्रेष्ठ
पतिगृह	–	पति का घर, ससुराल।
गृहपति	–	घर का स्वामी, गृह–स्वामी।
राजपण्डित	–	राजाओं का पण्डित।
पण्डितराज	–	पण्डितों का राजा
घनश्याम	–	बादल के तुल्य काला।
श्यामघनः	–	काला बादल।
राजगृह	–	राजा का घर, महल।
गृहराज	–	घरों का राजा, बड़ा घर।

संस्कृत और हिन्दी में अधिकारी का प्रयोग पहले होता है, बाद में अधिकृत वस्तु। जैसे– राजगृह, राजप्रसाद, राजभवन, राजकुमार, पतिगृह, श्वशुरालय (ससुराल)

4. **द्विरुक्ति (Reduplication)** अनेक भाषाओं में केवल एक ध्वनि की ही आवृत्ति नहीं होती, अपितु पूरा शब्द ही दो बार प्रयुक्त होता है। पूरे अंग या उसके अंश की द्विरुक्ति या आवृत्ति सम्बन्धतत्व का काम करती है। जैसे संस्कृत

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 106 8/18/2021 12:21:41 PM

में 'कारं कारम्', 'श्रावं श्रावम्', 'ग्रामं ग्रामम्'। हिन्दी में 'घर–घर', दिन–दिन', बात–बात','गाँव–गाँव',' नगर–नगर' आदि पदों में द्विरुक्ति के द्वारा बार–बार या प्रत्येक का अर्थ प्रकट हुआ है। इस प्रकार द्विरुक्ति भी एक प्रकार का सम्बन्ध तत्व होती है।

5. **आगम (Affixation, Addition)** शब्दों और धातुओं में उनसे पहले, मध्य में या अंत में कुछ सम्बन्धतत्व जुड़ जाते हैं, उन्हें आगम कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं:

(क) आदिसर्ग या पूर्वसर्ग (Prefix)

(ख) विकरण या मध्यसर्ग (Infix)

(ग) प्रत्यय या अन्तसर्ग (Suffix)

अंग्रेजी में इन तीनों के लिए एक शब्द है Affix (आगम, जो जुड़ता है)। इसी के तीन भेद हैं– (क) Prefix (Pre- पहले, fix-जुड़ना)। संस्कृत में इसे व्यापक अर्थ देकर उपसर्ग कह सकते हैं। हिंदी में इसको आदि योग, पूर्वसर्ग, आदि–सर्ग, पूर्व प्रत्यय आदि भी कहते हैं। (ख) In-fix (in- अन्दर, fix- जुड़ना।) संस्कृत में मध्य में जुड़ने वालों को 'विकरण' कहते हैं। हिन्दी में इसके लिए मध्य–योग, मध्यसर्ग शब्द भी आते हैं। (ग) Suffix (sub- बाद में, fix- जुड़ना)। संस्कृत में इसे प्रत्यय कहते हैं। हिन्दी में इसे अन्तयोग, अन्तसर्ग भी कहते हैं।

(क) **पूर्वसर्ग (Prefix)** (उपसर्ग आदि) के पहले लगने से अर्थ में अन्तर हो जाता है। हार से ही प्रहार, आहार, विहार, संहार आदि विभिन्न अर्थ वाले शब्द बन जाते हैं। अतः संस्कृत का सुभाषित है–

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते।

प्रहाराहार–संहार–विहार–परिहारवत्।। (लघुसिद्धांत कौमुदी)

इसी प्रकार भाव से आविर्भाव, तिरोभाव, प्रभाव, अनुभाव आदि। वि–जय, परा–जय; वि–धान, सं–वि–विधान, नि–धान; वि–कार, सं–स्कार आदि।

अंग्रेजी में पूर्वसर्ग या आदि योग के अनेक उदाहरण है। Re-, de, un, ex, per, com आदि अनेक पूर्वसर्ग हैं। जैसे–Re-ceive (रिसीव, पाना), de-ceive (डिसीव–धोखा देना), Per-ceive (परसीव–देखना), Conceive (कन्सीव–सोचना) इसी प्रकार Import, Ex-port, Pre-fer, Re-fer, Con-fer, आदि।

संस्कृत में लङ्, लुङ् आदि में प्रारम्भ में लगने वाला 'अ' भी आदि–योग या पूर्वसर्ग है। जैसे– पठ् > अपठत् (पढ़ा), अलिखित् (लिखा), अकरोत् (किया)। यह भूतकाल का अर्थ बताता है।

(ख) **विकरण या मध्य–सर्ग (Infix)** – कुछ भाषाओं में क्रिया के मध्य में कुछ ऐसे शब्द जुड़ा करते हैं जो उस क्रिया के काल, वाच्य आदि का बोध कराते हैं, उन्हें विकरण कहते हैं। जैसे संस्कृत में कर्मवाच्य और भाववाच्य बोधक गम्यते, क्रियते और प्रेरणार्थक पाठयति, कारयति, इच्छार्थक पठिष्यति, हिन्दी में लिखना > लिखवाना, करना > करवाना, उठना > उठवाना, गिरना > गिरवाना आदि प्रेरणार्थक शब्द मध्ययोग के ही उदाहरण हैं।

(ग) प्रत्यय या अन्तसर्ग (Suffix). शब्दों या धातुओं के अन्त में जुड़ने वाले प्रत्यय। पद–निर्माण में जिन प्रत्ययों का योग होता है, वे प्रत्यय भी एक प्रकार से सम्बन्ध तत्व ही होते हैं, क्योंकि इनसे भी पदों के व्याकरणिक सम्बन्ध का बोध होता है। जैसे– संस्कृत में तिङ्, सुप्, आदि। जैसे– देव > देवः, देवौ, देवाः, देवम् आदि। पठ् > पठति, पठतु, अपठत्, पठिष्यति आदि। कृत्, तद्धि

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 107 8/18/2021 12:21:41 PM

त, स्त्रीप्रत्यय आदि भी प्रत्यय या अन्तसर्ग है। कृ > कर्तव्य, भूत > भौतिक, ब्राह्मण > ब्राह्मणी आदि।

अंग्रेजी में बहुवचनसूचक– S, भूतकाल–सूचक– ed, निरन्तरता द्योतक–पदह अन्तसर्ग ही है। Boy > Boys, Walk > Walked, Go > going.

हिन्दी में कारक चिह्न ने, को, से, पर आदि तथा कालबोधक चिह्न– ता, गा, आ आदि अन्तसर्ग के उदाहरण हैं। राम > राम को, राम ने। पढ़ > पढ़ता है, पढ़ेगा, पढ़ा आदि। हिंदी का आ (मारा), अन्त (रटन्त), आई (खुदाई), आका (उड़ाका) आन (उठान), आपा (बुढ़ापा), आहट (चिकनाहट), आइन (पण्डिताइन) आदि प्रत्यय अर्थ–तत्व के साथ जुड़कर विविध सम्बन्ध तत्वों का बोध कराते हैं।

6. **आन्तरिक परिवर्तन (Internal Change)** – शब्दों और धातुओं में उनके अन्दर कुछ परिवर्तन कर देने से अर्थ में अन्तर हो जाता है। यह तीन प्रकार का है :– (क) स्वर–परिवर्तन, (ख) व्यंजन–परिवर्तन (ग) स्वर–व्यंजनपरिवर्तन।

(क) **स्वर–परिवर्तन** – गुण > गौण, देव > दैव, पुत्र–पौत्र, वसुदेव > वासुदेव, दशरथ > दाशरथि आदि। स्वर–परिवर्तन से पुत्र आदि अर्थ होते हैं। हिन्दी में स्वर–परिवर्तन से भूतकाल, प्रेरणा आदि अर्थ होते हैं– उठ > उठा, हँस > हँसा, पढ़ > पढ़ा, पढ़ना > पढ़ाना, करना >कराना, हँसना > हँसाना आदि।

अंग्रेजी में – Sing (गाना) ≥ Sang, Sung: Run (दौड़ना) > Ran, Come > Came, Mouse > Mice, Tooth > Teeth, Foot > Feet, Man > Men बहुवचन बनते हैं।

(ख) **व्यंजन–परिवर्तन** – व्यंजन–परिवर्तन से अर्थ में भेद हो जाता है। भुज् > भोज्य (भक्ष्य)– भोग्य (उपभोग योग्य)। अंग्रेजी में Advice (संज्ञा, परामर्श), Advise (एड्वाइज, परामर्श देना, क्रिया)। Send (भेजना)– Sent (भेजा)।

(ग) **स्वर–व्यंजन** – परिवर्तन– स्वर और व्यंजन दोनों बदलने से अर्थभेद। जैसे– संस्कृत में यज् > लुङ् परस्मैपद अयाक्षीत्, आत्मनेपद –अयष्ट (यज्ञ क्रिया), भज् (सेवा करना)– लुङ् प0 अभाक्षीत्, आ0 अभक्त (सेवा की), पच् (पकाना)– लुङ् अपाक्षीत्–अपक्त (पकाया)।

7. **आदेश (Supplection, replacement)**– मूल शब्द के बदले दूसरे शब्द का प्रयोग। आदेश का अर्थ है– परिवर्तन। पूर्ण परिवर्तन को आदेश कहते है। जैसे– दृश् धातु से पश्य, पश्यति (देखता है)। अस् धातु से भू, बभूव (हुआ)। ब्रू धातु से वच्, उवाच (बोला), अवोचत् (बोला)। ब्रू धातु से आह्, आह (कहता है)। आदि।

हिन्दी में 'जाना' से 'गया'। इसी प्रकार अंग्रेजी में भी Go से went (गया)। इसी प्रकार Be (होना) से Is, are, am, was, were आदि रूप आदेश के हैं।

8. **स्वराघात (Accent) और लय (Modulation)** – स्वराघात, लय और तान भी सम्बन्धतत्व का काम देते हैं। इनसे अर्थ–भेद हो जाता है। जैसे

हिन्दी में– उ'ठा (उठा)– उठा' (उठाओ)। भोजपुरी में– जाबऽ? (तुम जाओगे?)– जा ऽ ब (मैं जाऊँगा)। इसी प्रकार लेब ऽ ? लेऽब, देब ऽ?– दे ऽ ब।

अंग्रेजी में बलाघात अर्थभेदक होता है। एक ही शब्द संज्ञा और क्रिया दोनों होता है। संज्ञा में प्रथम स्वर पर बलाघात होगा और क्रिया में अन्तिम स्वर पर। जैसे– Im'port (संज्ञा), Import' (क्रिया), Trans'fer (सं0) – Transfer' (क्रि0), Con'tact (सं0)– Contact' (क्रि0), Pro'ject (सं0)– Project' (क्रि0)।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 108 8/18/2021 12:21:41 PM

6.10 अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का संयोग

अर्थतत्व (Semanteme) और सम्बन्धतत्व (Morpheme) का संयोग सभी भाषाओं में एक प्रकार का नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों को ध्यान में रखते हुए इनके तीन प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं:–

(क) **पूर्ण संयोग**– कुछ भाषाओं में अर्थतत्व और संबन्धतत्व इस प्रकार मिल जाते है कि दोनों को पृथक् दिखाना संभव नहीं हैं। जैसे–

संस्कृत – भूत > भौतिक, आत्मन् > आत्मिक, नदी > नद्यः।

अंग्रेजी– Run > Ran, Bring > Brought, Get > Got आदि।

अरबी– क् त् व् > किताब, कातिब, मकतब, कुतुब, किताबत।

भारोपीय परिवार की भाषाओं में पूर्ण संयोग का बाहुल्य है।

(ख) **अपूर्ण संयोग**– कुछ भाषाओं में अर्थतत्व और संबन्धतत्व इस प्रकार मिले रहते है कि वे एक होने पर भी अलग–अलग देखे जा सकते है। इसे 'तिलतण्डुलन्याय' कहना चाहिए। जैसे– तिलों में चावल अलग दिखाई देते है, उसी तरह अर्थतत्व और संबन्धतत्व पृथक् दिखाई देते हैं। जैसे–

संस्कृत – देव + त्व > देवत्व, मानवता–मानव + ता, सिंहवत्–सिंह + वत्, धनवान्–धन + वान्, आयुष्मान्–आयुष् + मान्।

हिन्दी– उसको– उस + को, कृति–कृ + ति, भूत + त, जीवन–जीव् + अन, मैंने–मैं + ने, गाड़ीवान–गाड़ी + वान।

अंग्रेजी– Boys-Boy + S, Walked-walk + ed, Manly-Man + ly, Playing-Play + ing, Chlidish-Child + ish.

(ग) दोनों स्वतंत्र– कुछ भाषाओं में अर्थतत्व और संबन्धतत्व की स्वतंत्र स्थिति रहती है। इनको पृथक् किया जा सकता है। जैसे–

चीनी भाषा में दो प्रकार के शब्द होते है– पूर्ण शब्द, रिक्त शब्द। अर्थतत्व को पूर्णशब्द कहते है, संबन्धतत्व को रिक्त शब्द। रिक्त शब्दों पर कभी उदात्त स्वर (Accent) नहीं होता है। संबन्धतत्व के रूप में 'ति' का अर्थ है– का, मेन– बहुवचन चिह्न, लि–भूतकाल का चिह्न।

बोध प्रश्न

2. सही विकल्प चुनिए।

   1. वर्णों या ध्वनियों के सार्थक समुदाय को क्या कहते है?

      क) ध्वनि ख) शब्द ग) पद घ) रूप

   2. रूपांतर की दृष्टि से शब्द के दो प्रकार होते हैं?

      क) उपसर्ग और प्रत्यय ख) लक्षणा और व्यंजना

      ग) पद और रूप घ) विकारी और अविकारी।

3. रचना की दृष्टि से शब्द के तीन भेद होते हैं?

   क) रूढ़, यौगिक और योगरूढ़

   ख) अभिधा, लक्षणा और व्यंजना

   ग) उपसर्ग, प्रत्यय और विकरण

   घ) इनमें से कोई नहीं

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 109 8/18/2021 12:21:41 PM

4. शब्दों और धातुओं में उनसे पहले, मध्य में या अन्त में कुछ सम्बन्ध तत्व जुड़ जाते हैं, उन्हें कहते हैं ?

   क) पद   ख) आगम   ग) निगम   घ) द्विरुक्ति

5. रूप विज्ञान के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है ?

   क) उपसर्ग   ख) प्रत्यय   ग) विभक्ति   घ) उपर्युक्त सभी

6. आविर्भाव, तिरोभाव, प्रभाव, अनुभाव शब्द उदाहरण है ?

   क) प्रत्यय के   ख) उपसर्ग के   ग) विकार के   घ) आगम के

7. कृ > कर्तव्य, भूत > भौतिक, ब्राह्मण > ब्राह्मणी आदि उदाहरण हैं?

   क) प्रत्यय के   ख) उपसर्ग के   ग) विकार के   घ) आगम के

8. सुप् विभक्ति किसमें लगती है ?

   क) सर्वनाम   ख) संज्ञा   ग) क्रिया   घ) विशेषण

9. विभक्तियुक्त शब्द क्या कहलाता है ?

   क) शब्द   ख) वाक्य   ग) पद   घ) संधि

बोध प्रश्न

3. निम्नलिखित कथनों में से सही–गलत छाँटिए।

   1. रूप या पद पर्यायवाची शब्द नहीं हैं।
   2. वाक्य में पद और पदों में वर्ण होते हैं।
   3. एक या अनेक वर्णों से बने अर्थपूर्ण समूह को शब्द कहते हैं और जब इन सार्थक या अर्थपूर्ण शब्द का वाक्य में प्रयोग किया जाता है, तो उस शब्द को पद कहते हैं।
   4. जब शब्दों में विभक्ति (प्रत्यय) जोड़ते हैं तब इनमें अर्थ देने की शक्ति नहीं रह जाती है।
   5. सम्बन्धतत्व' के योग के बिना वाक्य में प्रयुक्त होने की क्षमता शब्द में होती है।
   6. संसार की विभिन्न भाषाओं में वाक्यों में पदों का क्रम एक–सा होता है।
   7. कारक चिह्न ने, को, से, द्वारा, का, पर आदि स्वतंत्र सम्बन्ध तत्व हैं।
   8. शब्दों और धातुओं में उनसे पहले, मध्य में या अन्त में कुछ सम्बन्धतत्व जुड़ जाते हैं, उन्हें आगम कहते हैं।
   9. यास्क ने निरूक्त में पद को चार भागों में विभक्त किया है–नाम, आख्यात उपसर्ग और निपात।
   10. अर्थतत्व (Semanteme) और सम्बन्धतत्व (Morpheme) का संयोग सभी भाषाओं में एक प्रकार का नहीं है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

1. शब्द की परिभाषा देते हुए शब्दों का वर्गीकरण कीजिए।
2. पद का तात्पर्य समझाते हुए सम्बन्ध तत्व के विभिन्न प्रकार समझाइए।
3. अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का संयोग कितने प्रकार से होता है?

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 110   8/18/2021 12:21:41 PM

4. रूढ़, यौगिक और योगरूढ़ शब्दों से आप क्या समझते हैं? प्रत्येक के दो–दो उदाहरण दीजिए।
5. रचना के आधार पर शब्द के कितने भेद किए जाते हैं?

6.11 सारांश

भाषा विज्ञान में दो संरचनाओं को स्वीकार किया गया है : ध्वन्यात्मक संरचना और व्याकरणात्मक संरचना। ध्वन्यात्मक संरचना के अन्तर्गत स्वन विज्ञान व स्वनिम विज्ञान की चर्चा हो चुकी है। भाषा की व्याकरणत्मक संरचना भी दो प्रकार की होती है– रूपात्मक संरचना और वाक्यात्मक संरचना। तात्पर्य यह है कि रूप या पद भाषा की व्याकरणात्मक अभिव्यक्ति का लघुतम माध्यम है। भाषा की ध्वनि या स्वनिम में अर्थ की अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं होती। यह क्षमता रूपों या वाक्यों में होती है। रूप या पद ध्वनियों का वह सार्थक युग्म है, जो व्याकरण के अनुरूप परिवर्तित होकर कथन में व्यवहृत होता है। रूप सार्थक ध्वनियों का समुच्चय है, जो किसी एक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए, एक लगाव या विचार की अभिव्यंजना के लिए प्रयोग में लायी जाती है। राम, रावण, बाण, मारना शब्द है। जब ये सार्थक ध्वनियाँ प्रत्ययों या परसर्गों का आश्रय ग्रहण करके किसी एक विचार या भाव को व्यक्त करने लगती हैं तो इन्हें पद कहा जाता है। उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द। शब्द शब्द–कोशों में होते हैं–जैसे– 'पढ़ना' एक शब्द है, वाक्य में प्रयुक्त होने पर ये पद या रूप हो जाते हैं। पढ़ रहा है, पढ़ता है, पढ़ रहा होगा, पढ़ेगा, पढ़ेगी, पढ़ा होगा, पढ़ रहा होगा, पढ़ा, पढ़ता था, पढ़ती थी, पढ़ा था, पढ़ो, पढ़े, पढ़कर, पढ़ने आदि विभिन्न रूप एक पढ़ना शब्द से बन जाते हैं। इन्हीं रूपों का छोटा या बड़ा रूप वाक्य कहलाता है। रूप ही पद कहलाता है। वस्तुतः रूप व पद पर्यायवाची है। शब्द के अनेक रूप जिस प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं, उसी का अध्ययन रूपविज्ञान है। शब्द विभक्तिहीन होते हैं और पद विभक्ति–सहित। शब्द और पद का भेदक तत्व है– विभक्ति। विभक्ति का अर्थ ही है–विभाजन करने वाला। विभक्ति के कारण ही मुझको, मुझमें, मुझसे, मुझे में फर्क है। 'मुझ' शब्द विभक्तियों के प्रयोग के बाद वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। इसी को दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अर्थतत्व में रचनातत्व के योग से पद की निष्पत्ति होती है। भाषा की व्याकरणात्मक संरचना दो प्रकार की होती है–रूपात्मक संरचना और वाक्यात्मक संरचना। रूप भाषा की व्याकरणात्मक संरचना का लघुतम माध्यम है। ध्वनियों का अर्थ नहीं होता। यह क्षमता रूपों एवं वाक्यों में होती है। इन्हीं रूपों का छोटा या बड़ा समूह वाक्य कहलाता है। राम एक प्रातिपदिक या शब्द है, जिसके रामः रामौ रामाः आदि 21 रूप बनते हैं औ इन्हीं का वाक्यों में प्रयोग होता है। इसी तरह पठ् या गम् धातु है जिसके पठति पठतः पठन्ति या गच्छति गच्छतः गच्छन्ति रूप बनते हैं, जिनका वाक्य में प्रयोग होता है। राम, पठ् या गम् मूल शब्द हैं जिन्हें प्रातिपदिक भी कहते हैं। प्रातिपदिक अर्थात् मूल शब्द से बनने वाले प्रत्येक पद में विद्यमान रहने वाला। ये मूल शब्द प्रकृति या प्रातिपदिक किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया का बोध कराते हैं जिनमें काल, वृत्ति, वचन, लिंग, वाच्य आदि का बोध कराने वाले परसर्ग या प्रत्यय जुड़कर इन्हें पद बनाते हैं और वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बनाते हैं। प्रत्येक वाक्य में दो प्रकार के तत्व होते हैं– पहला, भावों के प्रतिरूप या विषयानुभूति के तत्व और दूसरे इन भावों के परस्पर विशेष सम्बन्ध के संकेतक तत्व। इनमें से प्रथम को यानी भावों के प्रतिरूप या विषयानुभूति के तत्व को अर्थतत्व और दूसरे को यानी इन भावों के परस्पर विशेष सम्बन्ध के संकेतक तत्व सम्बन्ध ततव कहलाते हैं। केवल अर्थतत्व पूरे भाव को अभिव्यक्त नहीं कर सकते उनमें सम्बन्धतत्व का योग अनिवार्य है। राम रावण बाण मारना – ये मूल भावों के प्रतिपादक शब्द हैं,

इनसे पूरे भावों की अभिव्यक्ति नहीं हो रही है। जब इसमें ने, को, से और आ प्रत्यय जुड़े, तब वाक्य बना– राम ने रावण को बाण से मारा। राम, रावण, बाण और मारना अर्थतत्व है और ने, को से तथा आ सम्बन्ध तत्व। इनमें से ने, को, से अर्थतत्व से पृथक स्वतंत्र रूप में दिखाई दे रहे हैं और 'आ' प्रत्यय मारना क्रिया में समाहित है। इसका मतलब ये है कि अर्थतत्व की भांति सम्बन्ध तत्व भी कई प्रकार के होते हैं। आपने इस अध्याय में शब्दों के प्रकार और सम्बन्धतत्वों के प्रकार का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया।

6.12 उपयोगी पुस्तकें

1. हिन्दी भाषा का विकास – देवेन्द्रनाथ शर्मा
2. हिन्दी व्याकरण–कामता प्रसाद गुरु
3. भाषा विज्ञान– भोलानाथ तिवारी
4. भाषा विज्ञान की भूमिका– देवेन्द्रनाथ शर्मा

6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1)
1. शब्द
2. वर्णों या ध्वनियों
3. पद
4. 'रूप' या 'पद'
5. वाक्य
6. प्रकृति और प्रत्यय
7. वाक्य
8. व्याकरणिक
9. सम्बन्धतत्व
10. वाक्य

(2)
1. ख) शब्द
2. घ) विकारी और अविकारी
3. क) रूढ़, यौगिक और योगरूढ़
4. ख) आगम
5. घ) उपर्युक्त सभी
6. ख) उपसर्ग के
7. क) प्रत्यय के
8. ख) संज्ञा
9. ग) पद

(3)

1. गलत	2. सही	3. सही	4. गलत
5. गलत	6. गलत	7. सही	8. सही
9. सही	10. सही		

अभ्यासों के उत्तर स्वयं लिखने का प्रयास कीजिए।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 112 8/18/2021 12:21:41 PM

इकाई 7 : रूपिम विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 स्वनिम, शब्द और रूपिम

7.3 रूपिम का अर्थ व परिभाषाएँ

7.4 रूपिम का स्वरूप

7.5 रूपिम के भेद

7.5.1 प्रयोग के आधार पर

7.5.2 रचना के आधार पर

7.5.3 अर्थतत्व एवं सम्बन्धतत्व के प्रदर्शन के आधार पर

7.5.4 खण्डीकरण के आधार पर

7.6 रूपिम के संरूप

7.7 सारांश

7.8 उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रूपिम का अर्थ और परिभाषाएँ जान सकेंगे;
- रूपिम का स्वरूप समझ सकेंगे;
- रूपिम के भेद बता सकेंगे;
- रूपिम के संरूप स्पष्ट कर सकेंगे; और
- स्वनिम, शब्द और रूपिम का संबंध समझा सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

भाषाविज्ञान की जिस इकाई में रूपिमों का अध्ययन किया जाता है, रूपिम विज्ञान कहलाता है। स्वनिम के बाद रूपिम भाषा का महत्वपूर्ण तत्व है। जिस प्रकार स्वन (Sound) के आधार पर स्वनिम विज्ञान नाम पड़ा, उसी प्रकार रूप या पद (Morph) के आधार पर रूपिम विज्ञान नाम पड़ा है। वाक्य में प्रयुक्त छोटी से छोटी सार्थक इकाई को रूपिम या रूपग्राम कहते हैं। ध्वनियाँ स्वयं अर्थहीन होती हैं परन्तु जब एक या एक से अधिक ध्वनियों का क्रम एक संकल्पना से जुड़कर अर्थवान हो जाता है तो अर्थ की ऐसी इकाई को, जिसे अल्पतर अर्थवान भागों में खण्डित न किया जा सके, उसे रूपिम कहते हैं। ऐसी ही अर्थवान इकाइयों की रचना का विश्लेषण, वर्णन आदि भाषा विज्ञान की रूपिम विज्ञान नामक शाखा में किया जाता है। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा में जल, फल, फूल, दुकान, कहानी, आदि ऐसे स्वनक्रम हैं, जो किसी न किसी अर्थ की संकल्पना के साथ प्रयोग किए जाते हैं। ये सभी इकाइयाँ खण्डित

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

होने पर अर्थ खो देती हैं। इन्हें ही रूपिम कहा जाता है। परन्तु इनका विभिन्न वाक्यों में प्रयोग देखा जाए तो इन शब्दों के कई रूप मिलते हैं।

जैसे– जल > सजल, जलाशय, जलज; फल > फलों, फलदार; फूल > फूलों, दुकान > दुकानें, कहानी > कहानियाँ; जा > जाता, जाएगा आदि। इन शब्दों को यदि खण्डित करके देखा जाए तो अधिकतर शब्दों में दो अर्थवान खण्ड मिलेंगे। जैसे– दुकान > दुकानें शब्दों में दूसरा शब्द पहले ही शब्द के अर्थ में प्रयुक्त है, अन्तर केवल इतना है कि 'एँ' ध्वनि जोड़कर इसे बहुवचन शब्द बना दिया गया है। इस प्रकार 'दुकानें' शब्द के दो सार्थक, खण्ड हो सकते हैं, 'दुकान' और 'एँ'। दोनों अर्थवान इकाइयाँ हैं अतः दोनों अलग–अलग रूपिम हैं। इनमें से 'एँ' को रूपिम मान लेने से प्रश्न उठता है कि क्या 'दुकान' को और सार्थक खण्डों में नहीं बाँटा जा सकता? यदि हम इसे दु+कान में विभक्त करें, हम पाएँगे कि 'कान' एक सार्थक शब्द तो है, पर इसका 'दुकान' शब्द के अर्थ के साथ कोई संबंध नहीं है। अतः 'कान' अपने आप में अलग रूपिम है और 'दुकान' अलग रूपिम है। लेकिन दुकानें, दुकानों, दुकानदार आदि शब्दों में प्रयुक्त स्वन क्रम द्+उ+क्+आ+न् को दक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है, इसलिए यह एक रूपिम है। इसी तरह दुकान शब्द में जुड़े एँ, ओ, दार तीन अलग–अलग रूपिम कहलाएँगे। अर्थात उच्चारण के वे अंश जो एक दूसरे से पूर्ण रूप से स्वाधीन होते हैं तथा एक ही अर्थ एवं एक ही प्रकार्य के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इन्हें पुनः लघुतर भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

रूपिम विज्ञान का आधार रूप या पद है। इसमें प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त पदों के सार्थक अवयवों का विभाजन करके रूपिम (Morpheme) और संरूप (Allomorph) का निर्धारण किया जाता है। रूपिम सामान्यतया चार रूपों में प्राप्त होता है–मुक्त रूपिम, बद्ध रूपिम, संयुक्त रूपिम और मिश्रित रूपिम। एक ही रूपिम के समानार्थक विभिन्न रूपों को संरूप कहते हैं। संरूपों में जो अधिक प्रचलित होता है, उसे रूपिम मान लेते है, शेष को संरूप। इस प्रकार रूपिम विज्ञान के विषय हैं– रूपिम और संरूप ।

7.2 स्वनिम, शब्द और रूपिम

भाषा या वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को रूपिम कहते हैं। रूपिम और स्वनिम में मुख्य अंतर यह है कि स्वनिम का सार्थक होना अनिवार्य नहीं है, जबकि रूपिम का सार्थक होना अनिवार्य है। 'राम' में र्, आ् म् अ –ये चार स्वनिम हैं, इन चारों का कोई अर्थ नहीं है। जबकि 'राम' एक सार्थक इकाई है, यह एक रूपिम है। यदि किसी भाषा का उच्चारण केवल स्वनिमों की रचना है तो उसे बोलने और सुनने की कोई उपयोगिता नहीं। किंतु लोग बोलते और सुनते हैं, परस्पर विचारों का आदान प्रदान करते हैं। क्योंकि उनकी भाषा में स्वनिम के अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार की संरचना भी मौजूद है। इसी संरचना को रूपिम कहते हैं। यह संरचना अर्थ (meaning) से जुड़ी होती है। अतः रूपिम भाषा उच्चारण की लघुतम अर्थवान इकाई है। वस्तुतः रूपिम स्वनिमों का ऐसा न्यूनतम उपक्रम है, जो व्याकरणिक दृष्टि से सार्थक होता है। इसलिए रूपिम को अर्थवान इकाई कहा जाता है। व्याकरणिक विश्लेषण में 'रूपिम' सबसे छोटी इकाई है। हिन्दी में रूपिम ही पदग्राम या रूपग्राम कहलाता है। व्याकरणिक विश्लेषण की न्यूनतम इकाई रूपिम ही क्यों, शब्द क्यों नहीं? वाक्य–रचना तो शब्दों से होती है। ऐसी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। इसका उत्तर यह है कि अगर शब्द को ही व्याकरण की न्यूनतम इकाई मान लिया जाए तो प्रत्यय–परसर्ग आदि का क्या स्थान होगा? प्रत्यय–परसर्ग स्वतः तो अर्थवान नहीं हैं, किंतु इन्हें अर्थहीन भी नहीं कहा जा सकता। सार्थक शब्दों के साथ जब प्रत्यय–परसर्ग का योग होता है, तो इन प्रत्यय परसर्गों के रूप और अर्थ पूर्णतः स्पष्ट हो जाते हैं। परम्परागत व्याकरण में दो तरह

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 114 8/18/2021 12:21:42 PM

के शब्द मिलते हैं– निरर्थक और सार्थक। व्याकरण में निरर्थक के उदाहरण स्वरूप फट–फट, खट–खट, ठक–ठक आदि अनुकरणवाची संज्ञा शब्द हैं। इन्हें निरर्थक नहीं कहा जा सकता। इनमें भाव अभिव्यक्त करने की यथेष्ट क्षमता है। अब सार्थक शब्दों को देखिए। परम्परागत व्याकरण के अनुसार घर, सुंदरता, सपूत, प्राणप्रिय आदि शब्द हैं। चूँकि ये सारे शब्द हैं और इन्हें सबसे छोटी इकाई मान लें तो एक कठिनाई तत्काल उत्पन्न होगी। प्रश्न होगा कि क्या इन सारे शब्दों की रूपरचना समान ढंग से हुई है? 'घर' शब्द को यदि खण्डित किया जाय तो उसके अर्थवान खण्ड नहीं किए जा सकते; किन्तु 'घर' के अतिरिक्त शेष तीनों शब्दों को सरलता से विभाजित किया जा सकता है। इन शब्दों का विभाजन इस प्रकार होगा–

1. घर
2. सुन्दरता (सुन्दर+ता)
3. सपूत (स+पूत)
4. प्राणप्रिय (प्राण+प्रिय)

ऊपर के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो गयी कि शब्द तो सभी हैं, किन्तु सबकी रूप–रचना समान ढंग से नहीं हुई है। 'घर' एक स्वतंत्र शब्द है। 'सुन्दरता' में 'सुन्दर' शब्द तो अर्थवान है, किन्तु इसका उत्तरांश 'ता' स्वतः अर्थवान नहीं है। इसके विपरीत 'सपूत' का उत्तरांश 'पूत' अर्थवान है। किन्तु पूर्वांश 'स' स्वतः अर्थवान नहीं है। 'प्राणप्रिय' एक शब्द है, किन्तु यह एक सामासिक शब्द है। इसकी रचना दो स्वतंत्र शब्दों के योग से हुई है और दोनों अलग–अलग अर्थवान ही नहीं, अपने आप में पूर्ण भी हैं। इसलिए यदि शब्द को व्याकरण की सबसे छोटी इकाई मान लें तो ऊपर के विश्लेषण में दिए गए रूप 'ता' और 'स' को किस कोटि में रखा जाएगा? फिर एक शब्द होने के कारण 'प्राणप्रिय' को ही यदि व्याकरण की न्यूनतम इकाई माना जाए तो फिर उसके छोटे अंश 'प्राण' और 'प्रिय' के लिए व्याकरण में कौन सी संज्ञा निर्धारित होगी? इसलिए शब्द की अपेक्षा रूपिम को व्याकरण की सबसे छोटी इकाई मान लेने पर इन सारी समस्याओं का सहज समाधान हो जाता है।

7.3 रूपिम का अर्थ व परिभाषाएँ

उच्चारण की न्यूनतम अर्थवान इकाई रूपिम कहलाती हैं। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने रूपिम की अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, जिन्हें यहाँ जानना आपके लिए आवश्यक है।

भारतीय विद्वानों द्वारा रूपिम की परिभाषाएँ–

डॉ उदय नारायण तिवारी के अनुसार– "रूपिम वस्तुतः परिपूरक वितरण या मुक्त वितरण में आए हुए सहपदों का समूह है।"

डॉ भोलानाथ तिवारी के अनुसार– "भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रूपिम है।"

डॉ रत्न शर्मा के अनुसार– ''वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को, जिसका सम्बन्ध भाषा के रूप पक्ष से रहता है और अर्थ पक्ष से भी, रूपिम कहा जाता है।''

डॉ कर्ण सिंह के अनुसार– ''वाक्य में प्रयुक्त छोटी से छोटी सार्थक इकाई रूपग्राम या रूपिम होती है।''

डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार– ''वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को रूपिम कहते हैं।"

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 115 8/18/2021 12:21:42 PM

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा रूपिम की परिभाषाएँ–

ब्लॉक एण्ड ट्रेगर के अनुसार–

Any form whether bound or free, which can not be divided into smaller meaning full parts is a morpheme. अर्थात् कोई भी भाषाई रूप, चाहे मुक्त हो या आबद्ध, जिसे और लघुतर अर्थवान रूपों में खण्डित न किया जा सके, रूपिम होता है।

ब्लूमफील्ड के अनुसार–

A linguistic form which bears no partial phonetic sementic resemblence to any other form in a language is a morpheme. अर्थात् रूपिम वह भाषाई रूप है, जिसकी भाषा विशेष के किसी अन्य रूप से किसी प्रकार की ध्वन्यात्मक और अर्थगत समानता नहीं होती।

एडम्स के अनुसार–

A morpheme may be defined as a unit representing one or more morphs, which occuer indifferent context which exactaly the same meaning and function. अर्थात् रूपिम एक या एक से अधिक ऐसे रूपों का समूह है, जो भिन्न संदर्भों में (भिन्न शब्दों में) एक ही अर्थ एवं एक ही प्रकार्य के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

हॉकेट के अनुसार–

Morphemes are smallest individually meaning full elements in the utterrances of a language. अर्थात् किसी भाषा के उच्चार में रूपिम न्यूनतम स्वतः अर्थवान तत्व होते हैं।

ग्लीसन के अनुसार–

The morpheme is the smallest unit grammitically partinent. रूपिम परिपूरक क्रिया की इकाइयों का समूह है।

इन परिभाषाओं में आपने परिपूरक वितरण शब्द को अनेक बार सुना। अतः परिपूरक वितरण क्या है? यह जानना आपके लिए आवश्यक है। वितरण एक पद्धति है जिसका प्रयोग रूपिम और संरूप के निर्धारण के लिए किया जाता है। जब दो या दो से अधिक रूपों में कुछ ध्वन्यात्मक विभेद होता है किन्तु उनका कोशीय अर्थ या व्याकरणिक प्रकार्य समान होता है तो वे आपस में परिपूरक वितरण में होते हैं। ऐसे रूपिम आपस में उपरूप होते हैं। जैसे– 'चिड़ियाँ' और 'रातें' शब्दों में बहुवचन क्रमशः 'ँ ' और 'एं' द्वारा व्यक्त हो रहा है। उक्त ध्वन्यात्मक विभेद के बावजूद दोनों का प्रकार्य अर्थ एक ही है और इनमें से कोई भी एक दूसरे के परिवेश में नहीं आता। इसे ही परिपूरक वितरण कहते हैं। जब दो या दो से अधिक रूप इस प्रकार होते हैं कि दोनों का एक दूसरे के स्थान पर कहीं भी प्रयोग किया जा सकता है, तो वे आपस में मुक्त वितरण में होते हैं। जैसे– ख़राब और खराब दोनों का अर्थ एक ही है। दोनों का प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जा सकता है।

7.4 रूपिम का स्वरूप

1. रूपिम शुद्ध रूप से स्वनिमों का समूह है। रूपिम की संरचना एक या एक से अधिक स्वनिमों से होती है। 'तू आ' एक वाक्य है, जिसमें त्, ऊ, आ– ये तीन स्वनिम हैं। लेकिन रूपिम दो हैं– 'तू' और 'आ'। रूपिम में विभिन्न स्वनिमों का प्रयोग पूर्ण व्यवस्थित रूप में होता है। जैसे– 'नहर' शब्द में तीन स्वनिमों की क्रमिक व्यवस्था है। इसके विपरीत कोई भी व्यवस्था अनुपयोगी होगी। 'हरन' या 'रहन' आदि संरचनाओं में वह क्रमिक व्यवस्था नहीं है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 116 8/18/2021 12:21:42 PM

2. रूपिम भाषा की लघुतम अर्थवान इकाई है। अतः इसके अर्थयुक्त खण्ड सम्भव नहीं। यथा– 'नहर' रूपिम का न+हर अथवा न+ह+र में कोई खण्ड सम्भव नहीं है।

3. रूपिम भाषा की लघुतम अर्थवान इकाई है। रूपिम के स्वरूप को उसकी अर्थभेदक संरचना के आधार पर निर्धारित कर सकते हैं। प्रत्येक भाषा में रूपिम व्यवस्था उसकी अर्थ–प्रवृत्ति के आधार पर होती है, इसलिए भिन्न–भिन्न भाषाओं के रूपिमों में भिन्नता होती है। मानक हिन्दी में प्रयुक्त 'पढ़वाऊँगा' शब्द पर विचार करें तो इसमें निम्नलिखित अर्थवान इकाइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं–

   पढ़– धातु रूपिम

   वा– प्रेरणार्थक रूपिम

   ऊँ– उत्तम पुरुष एकवचन रूपिम

   ग– भविष्यतकाल रूपिम

   आ– पुल्लिंग रूपिम

इस प्रकार 'पढ़वाऊँगा' शब्द में कुल पाँच रूपिम हैं। इन्हीं रूपिमों से अन्य शब्दों की रचना भी होती है। जैसे–

   पढ़– पढ़ना, पढ़ा, पढ़ता

   वा– चलवाता, मरवाना, लिखवाएगा

   ऊँ– मिलवाऊँ, पढ़ाऊँ, आऊँ

   ग– जाएगी, हँसेगा, दौड़ाएगा

   आ– पढ़ता, पढ़ा, पढ़ेगा

इन अर्थपूर्ण खण्डों के विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि रूपिम विवेचन के लघुतम खण्डों में अर्थ सुरक्षित होना अनिवार्य है, इसके साथ ही खण्डों में अन्य शब्दों की रचना हो सकने की शक्ति होती है। ऊपर आपने एक शब्द 'पढ़वाऊँगा' का रूपिम विश्लेषण देखा, जिसमें कुल पाँच रूपिम थे। अब आप एक वाक्य का रूपिम विश्लेषण देखिए– वाक्य है– 'फूलों की सुंदरता किसका मन नहीं हर लेती' । ऊपर से देखने पर इसमें कुल आठ शब्द दिखाई दे रहे हैं, किन्तु इस वाक्य में कुल बारह रूपिम हैं। रूपिम को अर्थिम का पर्यायवाची नहीं माना जा सकता, यथा 'परमेश्वर' एक अर्थिम है, जबकि इसमें 'परम' और 'ईश्वर' दो रूपिम हैं। निष्कर्षतः रूपिम के स्वरूप को उसकी अर्थभेदक संरचना के आधार पर निर्धारित कर सकते हैं।

1. फूल
2. ों (बहुवचन प्रत्यय)
3. की (कारक प्रत्यय)
4. सुन्दर
5. ता (भाववाचक प्रत्यय)
6. किस
7. का (कारक प्रत्यय)
8. मन
9. नहीं

10. हर
11. लेना
12. ी (ई) स्त्री प्रत्यय

ऊपर कही गयी बात को और स्पष्ट करना है, तो हम उसका विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं– सार्थक ध्वनियों के समूह को 'शब्द' कहते हैं और जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता धारण करने के लिए परसर्ग, विभक्तियों या प्रत्यय का सहारा लेता है, तब उसे रूप या पद कहते हैं। जैसे– 'राम', 'रावण', 'बाण', 'मारना' आदि केवल सार्थक ध्वनि–सम्पन्न 'शब्द' हैं, किन्तु जब इनका सम्बन्ध क्रमशः 'ने', 'से', 'को' , 'आ' आदि परसर्ग या प्रत्यय होता है, तब ये 'रूप' बन जाते हैं और एक सार्थक वाक्य का निर्माण कर देते हैं। जैसे– 'राम ने रावण को बाण से मारा।' अब यदि उक्त वाक्य का विभाजन अर्थ के आधार पर किया जाए, तो इसमें 'राम', 'ने', 'रावण', 'को', 'बाण', ' से', 'मार', 'आ'–ये आठ सार्थक खण्ड दिखाई देंगे। अब यदि हम इस वाक्य के शब्दों को और खण्डों में विभाजित करें, तो 'रा','म', 'ने', 'रा', 'व', 'ण', 'को', 'बा', 'ण' आदि अनेक खण्ड हो सकते हैं, किन्तु ये खण्ड निरर्थक हैं, इनका कोई अर्थ नहीं है। इनमें से अकेले 'रा' या 'म' अकेले 'बा' या 'ण' का कुछ भी अर्थ नहीं, जबकि 'राम', 'बाण' आदि का अर्थ है। इसमें से 'राम' व्यक्ति है, तो वाक्य का कर्त्ता कारक है, 'ने' कर्त्ता कारक का द्योतक है, बाण वह साधन है जिससे मारने का कार्य हुआ है, 'से' करण कारक का चिह्न है, 'रावण' एक व्यक्ति है, 'को' कर्म कारक का चिह्न है, 'मार' क्रिया है और 'आ' भूतकाल की क्रिया का चिह्न है। इसप्रकार वाक्य में आठ सार्थक खण्ड हैं, जो भाषा विज्ञान की दृष्टि से वाक्य की लघुतम सार्थक इकाइयाँ हैं, इन्हीं वाक्य की सबसे छोटी सार्थक इकाइयों को रूपिम कहा जाता है। 'राम ने रावण को बाण से मारा।' इस वाक्य में चार रूप या पद हैं (1. राम ने 2. रावण को 3. बाण से 4. मारा) और 'राम', 'ने', 'रावण', 'को', 'बाण', 'से', 'मार', 'आ'–ये आठ रूपिम हैं।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित में से सही विकल्प चुनिए।
   1. "भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रूपिम है।" किसका कथन है?
      - क) भोलानाथ तिवारी
      - ख) ब्लॉक एण्ड ट्रेगर
      - ग) द्वारिका प्रसाद सक्सेना
      - घ) कर्ण सिंह
   2. 'पढ़वाऊँगा' में कितने रूपिम हैं?
      - क) 4
      - ख) 5
      - ग) 3
      - घ) 6

7.5 रूपिम के भेद

साधारणतया रूपिमों को उनकी रचना, उनके प्रयोग, अर्थ अवं उनकी खण्डता या अखण्डता के आधर पर किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूपिम को चार आधार पर विभक्त किया जा सकता है–

1. प्रयोग के आधार पर
2. रचना के आधार पर

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 118 8/18/2021 12:21:42 PM

3. अर्थतत्व एवं सम्बन्धतत्व के प्रदर्शन के आधार पर
4. खण्डीकरण के आधार पर

7.5.1 प्रयोग के आधार पर

प्रयोग के आधार पर रूपिम के तीन भेद हैं–

(क) **मुक्त रूपिम** (Free morpheme): जो रूपिम पूर्णतया स्वतंत्र अथवा मुक्त होकर वाक्य में प्रयुक्त होते हैं या हो सकते हैं, जिनके साथ किसी अन्य रूपिम का होना आवश्यक नहीं होता, उन्हें 'मुक्त रूपिम' कहते हैं। जैसे– 'मोहन रसोई घर में दूध पीता है।' इस वाक्य में 'मोहन' और 'दूध' सर्वथा मुक्त या स्वतंत्र रूपिम हैं, क्योंकि इनका प्रयोग बिना किसी अन्य रूपिम की सहायता के हुआ है। मुक्त रूपिम वाक्य में किसी भी शब्द का वह स्वतंत्र अर्थवान रूप है, जिसे लघुतर रूप में विभाजित करने पर उसका अस्तित्व सुरक्षित नहीं रह सकता। अपनी सत्ता चरितार्थ करने के लिए मुक्त रूपिम को किसी सहायता की आवश्यकता नहीं होती। जैसे–

हिन्दी में– तुम, घर, लिख, वृक्ष

अंग्रेजी में– girl, they, go, table

(ख) **बद्ध रूपिम** (Bound morpheme): वे रूपिम भाषा में जिनका प्रयोग किसी अन्य रूपिम पर निर्भर करता है, जिनका स्वतंत्र उच्चारण सम्भव है, किन्तु भाषा में एकाकी प्रयोग नहीं मिलता, उन्हें बद्ध रूपिम की संज्ञा दी जाती है। स्पष्ट है कि ये प्रयोग के लिए किसी अन्य तत्व की आकांक्षा करते हैं। यह अन्य तत्व मुक्त रूपिम भी हो सकता है और बद्ध भी और कभी–कभी मुक्त+बद्ध में पुनः बद्ध रूपिम संयुक्त होता है। बद्ध रूपिम विभक्ति अथवा प्रत्यय का रूप है जो किसी मुक्त रूप से मिलकर उसके अर्थगत विकार में परिवर्तन लाता है। बद्ध रूपिम अपने आप में पूर्ण नहीं होता, इसलिए वह स्वतः अर्थवान नहीं होता। यह तो नाम से ही स्पष्ट है कि बद्ध रूप बंधा सा होता है। उसकी सार्थकता के लिए रूपिम का मुक्त रूप अथवा विशेष परिस्थिति में किसी दूसरे बद्ध रूप का योग आवश्यक है। स्वतंत्र इकाई के रूप में बद्ध रूपिम का प्रयोग नहीं होता। यह रूप का वह अंश है, जो दूसरों के सहारे अर्थवान होता है क्योंकि व्यावहारिक रूप से वह कभी भी किसी उच्चरित रूप का स्वतः निर्माण नहीं कर सकता । प्रत्यय–परसर्ग के रूप में बद्ध रूपिम के उदाहरण भरे पड़े हैं। यथा– लड़कियाँ, बचपन, भावुक, ऐतिहासिक, कुशलता, लिखावट, गुरुत्व आदि।

इन शब्दों के रूप की रचना इस प्रकार हुई है–

लड़कियाँ–	(लड़की+आँ)
बचपन–	(बच्चा+पन)
भावुक–	(भाव+उक)
ऐतिहासिक–	(इतिहास+इक)
कुशलता–	(कुशल+ता)
लिखावट–	(लिख्+आवट)
तरुणाई	(तरुण+आई)
गुरुत्व–	(गुरु+त्व)

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 119 8/18/2021 12:21:42 PM

इन शब्दों की रचना में 'लड़की', 'बच्चा', 'भाव', 'इतिहास', 'कुशल', 'लिख' तथा 'तरुण' तो स्वतः अर्थवान हैं, इनमें 'आँ', 'पन', 'उक', 'इक', 'ता', 'आवट', 'आई तथा 'त्व' ऐसे रूप हैं जिनका स्वतः कोई अर्थ नहीं होता। हाँ, जब ये मुक्त रूपिम क्रमशः 'लड़की', 'बच्चा' ,'भाव', 'इतिहास', 'कुशल', 'लिख्' तथा 'तरुण' में मिलते हैं तो इनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है और इनकी उपयोगिता भी चरितार्थ हो जाती है। इस प्रकार 'आँ', 'पन', 'उक', 'इक', 'ता', 'आवट', 'आई तथा 'त्व' बद्ध रूपिम हैं। इन उदाहरणों में मुक्त रूप में बद्ध रूप संयुक्त हुए हैं।

pre + fer

re + fer

re + cieve

de + cieve

in + clude

ex + clude

in + port

ex + port

अंग्रेजी के ये शब्द बद्ध रूपिम में मुक्त रूपिम के योग के द्वारा निर्मित हुए हैं। इनमें pre, re, de, in, ex शब्द के आदि में जुड़ने वाले उपसर्ग (prefix), तथा s, ed, ing, al आदि अन्तसर्ग (suffix) रूपिम है जैसे– boys, walked, going इनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं हो सकता। जैसे– तीसरी स्थिति वह है, जब मुक्त+बद्ध में पुनः बद्ध रूपिम संयुक्त होता है,

यथा–

हिन्दी में– बैठकें (बैठना+अक+एं) अव्यावहारिक (अ+व्यवहार+इक) मानसिकता (मन+इक+ता)

अंग्रेजी में– nationlality- nation+al+ty

बद्ध रूपिम को हम इस तरह विभाजित कर सकते हैं–

लिंग प्रत्यय पर आधारित रूपिम

लड़का + ई = लड़की

धोबी + इन = धोबिन

शेर + नी = शेरनी

दूबे + आइन = दुबाइन

शिक्षक + इका = शिक्षिका

नौकर + आनी = नौकरानी

गुण + वान = गुणवान

शक्ति + मान = शक्तिमान

वचन प्रत्यय पर आधारित रूपिम

लड़का + ए = लड़कें

पुस्तक + एँ = पुस्तकें

नदी + इयाँ = नदियाँ

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 120 8/18/2021 12:21:43 PM

भाववाचक प्रत्यय पर आधारित रूपिम

बच्चा + पन=बचपन

भला + ई=भलाई

सुन्दर + ता=सुन्दरता

मम + त्व=ममत्व

राष्ट्र + ईयता=राष्ट्रीयता

गुणवाचक प्रत्यय पर आधारित रूपिम

भूख + आ=भूखा

रंग + ईला=रंगीला

स्थानवाचक प्रत्यय पर आधारित रूपिम

इलाहाबाद+ई=इलाहाबादी

मारवाड़+ई=मारवाड़ी

बाराबंकी+वी=बाराबंकवी

जयपुर+इया=जयपुरिया

उपसर्ग आश्रित रूपिम

आ+हार

वि+हार

सं+हार=हार

(ग) **मुक्त–बद्ध रूपिम** (Free Bound morpheme)

जो रूपिम देखने में तो सर्वथा स्वतंत्र या मुक्त होते हैं, किन्तु वाक्य में सदैव किसी न किसी शब्द के आश्रित होकर ही प्रयुक्त होते हैं, वे मुक्त बद्ध रूपिम कहलाते है। जैसे हिन्दी के 'का', 'ने', 'से', 'को', 'में' आदि परसर्ग स्वतंत्र लिखे जाते हैं, किन्तु किसी न किसी शब्द के आश्रित प्रयुक्त होते हैं। ये वाक्य में स्वतंत्र और मुक्त तो जरूर दिखते हैं पर वाक्य में बिना आश्रय के इनका प्रयोंग नहीं हो पाता। यथा–

राम ने कहा।

वह बस से गया।

मोहन को हनुमान चालीसा चाहिए।

मीनू आफिस में है।

अंग्रेज़ी के on, into,in, at, from, with आदि भी ऐसे ही रूपिम हैं, जो स्वतंत्र दिखाई देते हैं, किन्तु किसी न किसी शब्द के आश्रित होकर वाक्य में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–

Radhika is coming from office.

Shyam lives with his brother.

They lives in Delhi.

The watch is on the table.

7.5.2 रचना के आधार पर

रचना के आधार पर रूपिम को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) **संयुक्त रूपिम** (Complex morpheme)

जिन रूपिमों की रचना दो या दो से अधिक ऐसे रूपिमों से होती है, जिनमें एक अर्थतत्व होता है, शेष सभी सम्बन्ध तत्व, उन्हें 'संयुक्त रूपिम' कहते हैं। जैसे– 'हमारे घरों की सफाई होगी'– इस वाक्य में चार संयुक्त रूपिम हैं। 'हमारे', 'घरों' 'सफाई' और 'होगी'–क्योंकि इनकी रचना में 'हम, 'घर' 'साफ' और 'होना' तो अर्थतत्व हैं, जिनमें सम्बन्धतत्व जुड़े हैं। यथा– हमारे–(हम+आ+रे), घरों– (घर+ओं), सफाई (साफ+आई), होगी (होना+गी)।

(ख) **मिश्रित रूपिम** (Compound morpheme)

जिन रूपिमों की रचना एक से अधिक स्वतंत्र अर्थतत्वों से होती है अथवा जिनकी रचना दो या दो से अधिक अर्थतत्वों से होती है, उन्हें मिश्रित रूपिम कहते हैं। यथा– राष्ट्रपति (राष्ट्र+पति), हिमालय (हिम+आलय), विधानसभाध्यक्ष (विधान+सभा+अध्यक्ष), नगरपालिका (नगर+पालिका)। ये ऐसे रूपिम हैं जिनकी रचना एक से अधिक अर्थतत्वों के मिश्रण से हुई है। अतः ये मिश्रित रूपिम कहलाते हैं।

7.5.3 अर्थतत्व एवं सम्बन्धतत्व के प्रदर्शन के आधार पर

अर्थतत्व एवं सम्बन्धतत्व के प्रदर्शन के आधार पर महज अर्थतत्व और सम्बन्ध तत्व का प्रतिपादन करने वाले रूपिम को उसी नाम से जाना जाता है। इस तरह इसके दो भेद किए गए हैं–

(क) अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम (Root morpheme)

(ख) सम्बन्ध तत्व प्रतिपादक रूपिम (Functional morpheme)

(क) **अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम** (Root morpheme)

वाक्य में महज अर्थतत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले रूपिम का नाम 'अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम' है। इस तरह के रूपिम भाषा में प्रभूत मात्रा में होते हैं। व्याकरण की भाषा में इन्हें Root, Stem प्रकृति, धातु आदि कहा जाता है। अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम या अर्थतत्व को धातु रूपिम और अंग रूपिम भी कहते हैं। भाषा का सीधा रिश्ता तो इनसे होता ही है, विचारों से भी ये बिना किसी माध्यम के जुड़े रहते हैं। प्रत्येक भाषा में अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम की संख्या हजारों में होती है। अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम शुद्ध कोशीय अर्थ देने वाले होते है, जो सरल अथवा मिश्रित रूप, धातु, रूढ़ शब्द और यौगिक शब्द सभी में निहित रहते हैं। किन्तु यौगिक और समस्त पदों में एक से अधिक सार्थक इकाइयाँ होती हैं। संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण आदि व्याकरणिक कोटियाँ अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम के अंतर्गत आती हैं– यथा–

संज्ञाएँ– राम, सीता, हनुमान, अयोध्या ,काशी

क्रियाएँ– पढ़ना, सोना, दौड़ना, गाना, बजाना

विशेषण– अच्छा, बुरा, लाल, पीला, सुन्दर, भद्दा

(ख) **सम्बन्ध तत्व प्रतिपादक रूपिम** (Functional morpheme)

वाक्य में महज सम्बन्ध तत्वों का ही प्रतिनिधित्व करने वाले रूपिम का नाम सम्बन्ध तत्व प्रतिपादक रूपिम है। संस्कृत के प्रत्यय और विभक्तियाँ इसी

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 122 8/18/2021 12:21:43 PM

रूपिम के अंतर्गत आते हैं। हिन्दी के ने, को, से, का, में, पर आदि परसर्ग आ (सूखा, जागा), अक्कड़ (पियक्कड़, भुलक्कड़), औता (समझौता), गा (आएगा, होगा), ता (आता, जाता), आऊ (बिकाऊ), आन (उड़ान), इया (घटिया, बढ़िया), ना (तुलना, वेदना), अनीय (माननीय), आई (सिलाई, चढ़ाई), उक (इच्छुक, भिक्षुक) आदि देशी प्रत्यय; दान(इत्रदान), वान (धनवान), खाना (जनानखाना), खोर (आदमखोर), गीरी (नेतागीरी), बाजी (चालबाजी), बाज (चालबाज), दार (ईमानदार,कर्जदार), नाक (खतरनाक, खौफनाक),बान (मेज़बान),गर (जादूगर), इश (फरमाइश), गाह (बन्दरगाह), गीर (राहगीर) आदि विदेशी प्रत्यय तथा अंग्रेजी के ed, ing, art, hood, ness, less, able, tive आदि suffixes (प्रत्यय) सम्बन्ध तत्व प्रदर्शक रूपिम हैं।

7.5.4 खण्डीकरण के आधार पर

खण्डता और अखण्डता के आधार पर भी रूपिमों का विभाजन किया जाता है। इस दृष्टि से रूपिम के दो भेद होते हैं–(क) खण्डात्मक रूपिम (Segmental morpheme) और (ख) अखण्डात्मक रूपिम (Supra Segmental morpheme)

(क) **खण्डात्मक रूपिम** (Segmental morpheme) जिन रूपिमों के खण्ड किए जा सकते हैं अथवा जो तोड़कर पृथक किए जा सकते हैं, उन्हें खण्डात्मक रूपिम (Segmental morpheme) कहते हैं। जैसे विद्यालय (विद्या+आलय), पुत्रों (पुत्र+ओं), शराबखाना (शराब+खाना), लड़ाई (लड़+आई) आदि।

(ख) **अखण्डात्मक रूपिम** (Supra Segmental morpheme) जिन रूपिमों के खण्ड नहीं हो सकते हैं अथवा जिनका पृथक–पृथक विभाजन करना सर्वथा असम्भव होता है, वे अखण्डात्मक रूपिम (Supra Segmental morpheme) कहलाते हैं। बलाघात (stress), सुर (tone, pitch) तथा सुरलहर (intonation) अखण्डात्मक रूपिम होते हैं।

क्रिया	संज्ञा
conduct	conduct
import	import
consort	consort
console	console
contact	contact
transfer	transfer

उपर्युक्त उदाहरण में स्थान विशेष पर दिया गया बलाघात पद विभाजक है। जब हम द्वितीय अक्षर पर बलाघात करते हैं तो क्रियापद निष्पन्न होते हैं और जब प्रथम अक्षर पर बलाघात करते हैं तो संज्ञा पद बने हैं। इसी तरह हिन्दी में

उ´ठा (मैं उठा)

उठा´ (उठाओ)

जाबऽ ?(जाओगे?)

जाऽब (जाऊँगा)

खाबऽ? (खाओगे?)

खाऽब (खाऊँगा)

इन पदों में स्थान विशेष पर बलाघात से अर्थपरिवर्तन हो रहा है।

बोध प्रश्न

2. निम्नलिखित में से सही विकल्प चुनिए।

1. 'सुर' किस रूपिम के अंतर्गत आता है?

   क) मूल रूपिम ख) खण्ड्येतर रूपिम

   ग) खण्ड्य रूपिम घ) संयुक्त रूपिम

2. जिन रूपिमों की रचना में सम्बन्ध तत्व की भूमिका नहीं होती, वे क्या कहलाते हैं?

   क) संयुक्त रूपिम ख) मिश्रित रूपिम

   ग) मूल रूपिम घ) मुक्तबद्ध रूपिम

3. 'लड़कियाँ' शब्द में प्रयुक्त प्रत्यय है?

   क) इयाँ ख) इया

   ग) या घ) आ

4. 'रमेश को' उदाहरण है?

   क) बद्ध रूपिम का ख) मुक्तबद्ध रूपिम का

   ग) संयुक्त रूपिम का घ) मिश्रित रूपिम का

5. जिन रूपिमों का प्रयोग संयुक्त रूप से नहीं होता, वो क्या कहलाते हैं?

   क) बद्ध रूपिम का ख) मुक्तबद्ध रूपिम का

   ग) संयुक्त रूपिम का घ) मिश्रित रूपिम का

6. 'मालगाड़ी' उदाहरण है?

   क) बद्ध रूपिम का ख) मुक्तबद्ध रूपिम का

   ग) संयुक्त रूपिम का घ) मिश्रित रूपिम का

7. 'अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम' के अन्य नाम क्या हैं?

   क) त्ववज ख) प्रकृति

   ग) धातु घ) इनमें से तीनों

8. पुत्रों (पुत्र+ओं), शराबखाना (शराब+खाना), लड़ाई (लड़+आई)– इन शब्दों में कौन सा रूपिम है?

   क) खण्डात्मक रूपिम ख) अखण्डात्मक रूपिम

   ग) अर्थतत्व प्रतिपादक रूपिम घ) सम्बन्धतत्व प्रतिपादक रूपिम

7.6 रूपिम के संरूप

अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व को अलग–अलग रूपिम कहते हैं– यह हम जान चुके हैं। यथा (प्राचीन + ता) में 'प्राचीन' (रूपिम) और 'ता' (रूपिम) 'प्राचीनता' के दो रूपिम हुए। प्राचीनता दो रूपिमों से निर्मित रूप (पद) हुआ। सारांशतः रूपिमों के मिलने से पद (रूप) बनते हैं और पद (रूप) को खंड करने से रूपिम की प्राप्ति होती है। जिसका प्रयोग परिपूरक वितरण में हो उसे ही संरूप कहते हैं। परिपूरक वितरण से तात्पर्य है कि एक ही रूप के (संरूप) रूपिम प्रयोग की दृष्टि से अलग–अलग बँटे होते हैं। बहुधा यह देखा जाता है कि कई रूपिम देखने में तो अलग–अलग जान

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 124 8/18/2021 12:21:43 PM

पड़ते हैं किंतु उनके अर्थ मे कोई अंतर नहीं होता, उनमें पारस्परिक कोई विरोध नहीं होता और वाक्य में उसके आने की स्थिति भी निश्चित रहती है। एक ही रूपिम के समानार्थक रूपों को संरूप कहते हैं। उन संरूपों में जो अधिक प्रचलित होता है, उसे रूपिम मान लेते हैं, शेष को संरूप। उदाहरण– हिन्दी में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए निम्नलिखित प्रत्यय अर्थात् रूपिम का प्रयोग करते हैं।

ओं–	घरों, घोड़ों, साधुओं, लड़कियों, औरतों, लड़कों	ओं
ओ–	कवियों, साधुओं, पर्वतों, सदियों	ओ
ए–	घोड़े, लड़के	ए
एँ–	माताएँ	एँ
ऑ–	जातियाँ, नदियाँ	यों
ऊ–	चिड़ियाँ	उ

सभी प्रत्ययों का कार्य बहुवचन बनाना है। इस दृष्टि से सब समान हैं। लेकिन सबों में स्थानिक भिन्नता है। एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग नहीं हो सकता, अर्थात् सभी प्रत्यय (रूपिम) परिपूरक वितरण में हैं। इनमें बहुवचन में 'ओं' सर्वाधिक प्रचलित है, अतः 'ओं' को बहुवचन सूचक रूपिम माना जाता है। अन्य बहुवचन–सूचक प्रत्यय 'ओं' के परिपूरक वितरण में आने के कारण संरूप माने जाते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी में संज्ञा के बहुवचन में स्, ज़, इज़, इन, रिन या शून्य प्रत्यय लगते है। जैसे– Book-Books, Eye-Eyes, Rose-Roses,Ox-Oxen,child-children,sheep-sheep। इनमें स् (s) सर्वाधिक प्रचलित है, अतः उसे रूपिम माना जाता है और अन्य पाँच को उसका संरूप माना जाता है। परिपूरक वितरण से अभिप्राय है जो प्रत्यय उसी अर्थ का बोध कराते हैं, और जिन परिस्थितियों एक का प्रयोग होता है, इन्हीं परिस्थितियों में दूसरे का प्रयोग नहीं होता। रूपिम और संरूप के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना आवश्क है। 1. समानार्थक हों। 2. एक प्रकार की रचना में प्रयोग आएँ। 3. विरोधी न हों।

4. परिपूरक वितरण में हों अर्थात प्रत्येक की आने की स्थिति स्पष्ट रूप से अलग हो, उनमें विरोध न हो, एक ही स्थिति में एक से अधिक प्रयोग में न आते हों।

इनके होने पर ही किसी रूपिम का संरूप होगा। इसे हम निम्न रूप से भी समझ सकते हैं:

क्र. स.	रूपिम	संरूप	परिपूरक वितरण	
1	ओं (सभी शब्दों के बहुवचन में।)	ओं	माताओं, पिताओं, भ्राताओं, साधुओं, वस्तुओ , गौओं	हिंदी में प्रायः देखा जाता है कि आकारांत, उकारांत, और औकारांत सपरसर्ग शब्दों का बहुवचन बनाते समय शब्दों के आगे 'ओं' लगाया जाता है।
2		ों	घरों, पुस्तकों, सड़कों	(हिन्दी के अकारांत शब्दों में 'ओं' न लगाकर केवल ओं की मात्रा (ों) का प्रयोग होता है।
3		यों	लड़कियों, साथियों, हाथियों थालियों	हिन्दी के ईकारांत शब्दों का बहुवचन बनाते समय पहले उस शब्द को इकारांत किया जाता है, फिर उसमें 'यों' संरूप जोड़ा जाता है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 125 8/18/2021 12:21:43 PM

4		ए	लड़के, घोड़े,बेटे, जोड़े,फोड़े	हिन्दी के आकारांत पुल्लिंग शब्दों के बहुवचन रूपों में अन्तिम 'आ' का लोप करके 'ए' संरूप लगाया जाता है।
5		एँ	माताएँ, शालाएँ , अप्सराएँ, बहुएँ,	हिन्दी के आकारांत स्त्रीलिंग रूपों का बहुवचन बनाने के लिए 'एँ' संरूप जोड़ा जाता है, साथ ही ऊकारांत स्त्रीलिंग रूपों का बहुवचन बनाते समय पहले उकारांत करके 'एँ' संरूप जोड़ देते हैं।
6		ें	आँखें, रातें, झीलें, बातें, गायें	हिन्दी के आकारांत स्त्रीलिंग रूपों में बहुवचन बनाने के लिए 'एँ' के स्थान पर 'एँ' की मात्रा (ें) का ही केवल प्रयोग होता है।
7		याँ	नदियाँ, थालियाँ, रानियाँ, शक्तियाँ, कृतियाँ, वृत्तियाँ	हिन्दी के ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन रूप बनाने के लिए पहले उन्हें ह्रस्व करके इकारांत बनाते हैं , फिर 'याँ' संरूप जोड़ा जाता है। या जो पहले से इकारांत होते हैं, उनमें बिना कुछ परिवर्तन किए 'याँ' जोड़ा जाता है।
8		ँ	बुढ़ियाँ, लुटियाँ, डिबियाँ, बिटियाँ	हिन्दी के उन स्त्रीलिंग रूपों के बहुवचन बनाते समय केवल चंद्रबिंदु (ँ) लगाया जाता है, जिनके अंत में 'या' होता है
9		शून्य	ये हमारे **'घर'** हैं। अबकी बार **'आम'** बहुत पैदा हुए।	हिन्दी के अपरसर्ग अकारांत (घर, दाम,, आम); इकारांत (कवि, मुनि); ईकारांत (हाथी, पक्षी) ऊकारांत (भालू, डाकू) आदि शब्दों में शून्य (0) संरूप का प्रयोग बहुवचन बनाते समय होता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दी में बहुवचन बनाने के लिए एक ही रूपिम के नौ संरूप मिलते हैं, जिनमें अर्थ की दृष्टि से कोई भिन्नता नहीं है, जो परस्पर तनिक भी विरोधी नहीं हैं, जिनके लगने की स्थिति निश्चित है, जिनमें से काई भी संरूप किसी अन्य के स्थान पर प्रयुक्त नहीं हो सकता, और जो सबके सब एक प्रकार की ही रचना में अर्थात् बहुवचन बनाने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। अतः उक्त सभी 'संरूप' एक ही रूपिम 'ओं' के हैं। अर्थात् एक ही रूपिम के समानार्थी एवं परिपूपक वितरण वाले ये सभी रूप संरूप की कोटि में आते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी में बहुवचन बनाने के लिए एक रूपिम के छः संरूपों का प्रयोग मिलता है।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 126 8/18/2021 12:21:43 PM

अंग्रेजी भाषा के एक बहुवचन–मूलक प्रत्यय का ध्वनिग्रामिक रूप /-s/ हैं, लेकिन विभिन्न अनुक्रमों में आने पर उनके ध्वन्यात्मक रूपों में गुणात्मक अन्तर दिखाई पड़ता है।

-s स्	→ Books, Shops, Hats, pots, schools, rats, mats, fans etc.
-z ज्	→ Days, Rows, Cows, eyes , flies, babies,toys,windows
-iz इज्	→ horses, oranges, Prizes, Slices, Judges, bridges
इन	→ oxen
रिन	→ children
शून्य	→ sheep, deer, swine, salmon

उपर्युक्त उदाहरणों पर ध्यान देने से एक बात स्पष्ट है कि परिवेशगत अन्तर के कारण बहुवचन–विधायक '-s' ध्वनिग्राम का उच्चारण सर्वत्र बदल गया है। निष्कर्ष–रूप में कहा जा सकता है कि–

1. अघोष स्पर्शो के बाद – 'स' स् ही उच्चरित होता है।
2. स्वरों और घोष–स्पर्शों के बाद– 'स' ज् उच्चरित होता है।
3. संघर्षी और स्पर्श–संघर्षी ध्वनियों के बाद– 'स' इज् उच्चरित होता है।

प्रस्तुत प्रसंग में 'स', 'ज'–इज पूरक–वितरण में हैं, अर्थात् जहाँ एक का व्यवहार संभव है, वहाँ दूसरे का व्यवहार संभव नहीं। बहुवचन–मूलक उक्त परिवर्तनों के पीछे एक तर्क है। ये सब परिवेश द्वारा नियंत्रित हैं। लेकिन, कतिपय ऐसे भी बहुवचन–विधायक प्रयोग हैं, जिन्हें रूढ़ि के अतिरिक्त किसी तर्क द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता। उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

एकवचन	बहुवचन	
Ox	Oxen	(-en)
Child	Children	(-ren)
Foot	Feet	ध्वन्यात्मक प्रतिस्थापन
Phenomenon	Phenomena	" "
Syllabus	Syllabi	" "
Sheep	Sheep	शून्य रूपग्राम (Zero morpheme)

अंग्रेजी के बहुवचन–विधायक रूपग्रामों के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कहीं तो रूपात्मक परिवर्तन के पीछे तर्क है, कहीं रूढ़ियाँ ही रूप–विधायिकाएँ हैं। वस्तुगत मूल्यांकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि–

/स/ रूपग्राम के (स्), (ज्), ज्, (इज्), (ऍन), (रेनॅ) (ध्वनि–प्रतिस्थापन) (–0 शून्य) संरूप हैं।

इनके रूप और उच्चारण भिन्न हैं। परन्तु सभी बहुवचन के घटक होने के कारण समानार्थ हैं और इनमें परस्पर कोई विरोध नहीं है। वाक्य में सभी की स्थिति समान है,परन्तु इनमें से कोई भी एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। एक ही रूपिम के समानार्थक रूपों को संरूप कहते हैं। उन संरूपों में जो अधिक प्रचलित होता है, उसे रूपिम मान लेते हैं, शेष को संरूप। अतः अंग्रेजी में (स) के उच्चारण को हम बहुवचन का रूपिम कहेंगे और अन्य उच्चारणों को बहुवचन 'स' के संरूप। इसी तरह हिन्दी में बहुवचन का रूपिम होगा 'ओं' और शेष उसके संरूप कहलाएंगे। जिस प्रकार स्वनिम के अवयव संस्वन होते हैं, उसी प्रकार रूपिम के अवयव अर्थात

उसी अर्थ को बताने वाले विभिन्न रूप संरूप कहे जाते हैं। संरूप के लिए आवश्यक है कि ध्वन्यात्मक रूप से भिन्न होते हुए भी उनमें अर्थ की एकता होनी चाहिए। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि पर्यायवाची शब्द या प्रत्यय संरूप के उदाहरण नहीं होते

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से रूपिम और संरूप को अंग्रेजी में इस तरह समझा जा सकता है–

Morpheme can be word or a part of word. Allomorphs are often a part of a word. Morpheme is the smallest morphological unit in a language. Allomorphe is a type of plant. The main difference between Morpheme and Allomorphe is that Morpheme refers to the meaning and structure of a word as for as Allomorphe is concrerned with sound.It can be describe as a unit of meaning that changes a sound without changing its meaning. Allomorphe is an alternative pronounciation of a moepheme in a particular context. Allomorphe is a varient form of a morpheme, ehen a unit opf meaning varies in sound without changing the meaning. For example in English language there are several morphemesthat varies in sound but not in meaning. such as plural morpheme ‘S’ consists following Allomorphs- Cats (as -s- l); dogs (as z -t+); boxes (as ez- , t+) and past tense Morpheme ‘ed’ consists these allomorphs. such as in word 'stoped'and 'finished' it is M ; in word ‘hunted’ and ‘banded’ it is ,M Morpheme is the minimal unit of meaning in a language. Allomorphe is unit of meanings that varies in sound without changing its meaning.

Morpheme is concerned with the structure and meaning of word. Allomorphs are concerned with the sound of words.

बोध प्रश्न

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   1. रूपिम को .... भी कहते हैं।
   2. वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होने वाले रूपिम को .... कहते है।
   3. जिस प्रकार स्वनिम के अवयव संस्वन होते हैं, उसी प्रकार रूपिम के अवयव अर्थात उसी अर्थ को बताने वाले विभिन्न रूप .... कहे जाते हैं।
   4. जिन रूपिमों की रचना दो या दो से अधिक ऐसे रूपिमों से होती है, जिनमें एक अर्थतत्व होता है, शेष सभी सम्बन्ध तत्व, उन्हें ....कहते हैं।
   5. वस्तुतः रूपिम स्वनिमों का ऐसा न्यूनतम उपक्रम है, जो व्याकरणिक दृष्टि से .... होता है। इसलिए रूपिम को अर्थवान इकाई कहा जाता है।
   6. रूपिम शुद्ध रूप से.......... का समूह है।
   7. जो रूपिम पूर्णतया स्वतंत्र अथवा मुक्त होकर वाक्य में प्रयुक्त होते हैं या हो सकते हैं, जिनके साथ किसी अन्य रूपिम का होना आवश्यक नहीं होता, उन्हें .... कहते हैं।
   8. जिन रूपिमों की रचना एक से अधिक स्वतंत्र अर्थतत्वों से होती है अथवा जिनकी रचना दो या दो से अधिक अर्थतत्वों से होती है, उन्हें .... कहते हैं।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 128 8/18/2021 12:21:43 PM

9. रूपिम विवेचन के लघुतम खण्डों में .... सुरक्षित होना अनिवार्य है, इसके साथ ही खण्डों में अन्य शब्दों की रचना हो सकने की शक्ति होती है।
10. एक ही रूपिम के समानार्थक रूपों को .... कहते हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

1. रूपिम से आप क्या समझते है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
2. रूपिम एवं स्वनिम में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. रूपिम को कितने आधारों पर विभाजित किया जाता है?
4. परिपूरक वितरण और मुक्त वितरण से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. प्रयोग के आधार पर रूपिम के कितने भेद होते हैं? उल्लेख कीजिए।
6. रूपिम और संरूप में अंतर स्पष्ट कीजिए।

7.7 सारांश

उपर्युक्त आधार पर हम कह सकते हैं कि वाक्य के लघुतम अर्थ–तत्व को रूपिम कहते हैं। रूपिम का सम्बन्ध रूप और अर्थ दोनों से होता है न्यूनतम उपयुक्त व्याकरणिक अर्थवान रूप ही रूपिम होता है, रूपिम सार्थक होता है, रूपिम के स्वनिम वियोजित किए जा सकते हैं तथा रूपिम का वर्गीकरण प्रयोग के आधार पर, अर्थतत्व और सम्बन्ध तत्व के आधार पर, संरचना के आधार पर, खण्डीकरण के आधार पर आदि अनेक आधारों पर किया जा सकता है। एक रूपग्राम के विभिन्न ध्वन्यात्मक रूप होते हैं। एक रूपिम का प्रतिनिधित्व करने वाले रूपों को संरूप कहा जाता है। रूपिम के समानार्थी पूरक वितरण वाले रूपों को संरूप कहते हैं। ये कभी व्यक्तिरेकी वितरण में नहीं होते। क) Books, Cats, Hats बुक्स, केट्स, हैट्स, (ख) eyes, dogs आइज, डॉग्ज। बुक्स, कैट्स, हैट्स, में ''स'' का स है। आइज, डॉग्ज में स का ''ज'' हो गया है। प्रथमतः जिसमें 'स' का 'स' रह गया है अन्त में अघोष व्यंजन है (क्/त्)। द्वितीय जहाँ 'स' का 'ज' हो गया है वहाँ शब्द के अन्त में या तो घोषस्वर है या घोषव्यंजन है (इ/ग)। इसका अर्थ है कि ये एक ही संरूप के (स) होते हुए भी भिन्न हैं। इसलिए परिपूरक वितरण में है। अतः 'स' के संरूप हुए। हिन्दी में संज्ञा शब्दों के बहुवचन में ओं, ओ, ए, एं आदि लगते हैं। जैसे– पुस्तकों, घोड़े, माताएँ, जातियाँ आदि। इनमें बहुवचन में 'ओं' सर्वाधिक प्रचलित है अतः उसे बहुवचन सूचक रूपिम माना जाता है। अन्य बहुवचन–सूचक प्रत्यय 'ओं' के परिपूरक वितरण में आने के कारण संरूप माने जाते हैं। संरूप के लिए आवश्यक है कि ध्वन्यात्मक रूप से भिन्न होते हुए भी उनमें अर्थ की एकता होनी चाहिए। जिस प्रकार स्वनिम के अवयव संस्वन होते हैं, उसी प्रकार रूपिम के अवयव अर्थात उसी अर्थ को बताने वाले विभिन्न रूप संरूप कहे जाते हैं।

7.8 उपयोगी पुस्तकें

1. रूपविज्ञान– डॉ लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा
2. भाषा विज्ञान की भूमिका–देवेन्द्रनाथ शर्मा

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 129 8/18/2021 12:21:43 PM

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. क) भोलानाथ तिवारी
2. ख) 5

बोध प्रश्न 2

1. ख) खण्ड्येतर रूपिम
2. ग) मूल रूपिम
3. क) इयाँ
4. ख) मुक्तबद्ध रूपिम का
5. क) बद्ध रूपिम का
6. घ) मिश्रित रूपिम का
7. घ) इनमें से तीनों
8. क) खण्डात्मक रूपिम

बोध प्रश्न 3

1. पदग्राम
2. मुक्त रूपिम
3. संरूप
4. संयुक्त रूपिम
5. सार्थक
6. स्वनिमों
7. मुक्त रूपिम
8. मिश्रित रूपिम
9. अर्थ
10. संरूप

अभ्यासों के उत्तर स्वयं लिखने का प्रयास कीजिए।

BHDC-108_Hindi_3rd Proof.indb 130 8/18/2021 12:21:43 PM